इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC-111
हिंदी नाटक एवं एकांकी

खंड

2

हिंदी नाटक एवं एकांकी–2

इकाई 11
हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य विधाएँ : स्वरूप और विकास 183

इकाई 12
विष्णु प्रभाकर और उनका साहित्य 207

इकाई 13
'और वह जा न सकी' का विश्लेषण और मूल्यांकन 224

इकाई 14
जगदीश चंद्र माथुर और उनके नाटक तथा एकांकी 244

इकाई 15
'भोर का तारा' का विश्लेषण और मूल्यांकन 259

इकाई 16
रामकुमार वर्मा और उनका साहित्य 274

इकाई 17
'दीपदान' का विश्लेषण और मूल्यांकन 290

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 2 का परिचय

प्रस्तुत खंड हिंदी एकांकी पर आधारित खंड है। इस खंड में आप तीन विशिष्ट एकांकियों का अध्ययन करेंगे। ये हैं– 'और वह जा न सकी' (विष्णु प्रभाकर); 'भोर का तारा' (जगदीश चंद्र माथुर) तथा 'दीपदान' (रामकुमार वर्मा)। ये तीनों एकांकी विशिष्ट विषयों तथा चरित्रों को लेकर रचित हैं। इन एकांकी के अध्ययन से पूर्व आप इकाई–11 में हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करने से आप एकांकी के स्वरूप से तो परिचित होंगे ही साथ ही एकांकी के विशिष्ट तत्वों को भी जानेंगे। एकांकी के मूल्यांकन और विश्लेषण करने की प्रक्रिया में ये तत्व आपके सहायक होंगे। खंड में कुल 7 इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं :

इकाई – 11 **हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य विधाएँ : स्वरूप और विकास**

इकाई – 12 **विष्णु प्रभाकर और उनका साहित्य**

इकाई – 13 **'और वह जा न सकी' का विश्लेषण और मूल्यांकन**

इकाई – 14 **जगदीश चंद्र माथुर और उनके नाटक तथा एकांकी**

इकाई – 15 **'भोर का तारा' का विश्लेषण और मूल्यांकन**

इकाई – 16 **रामकुमार वर्मा और उनका साहित्य**

इकाई – 17 **'दीपदान' का विश्लेषण और मूल्यांकन**

इकाई –11 में हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास की चर्चा की गई है। इकाई –12 में विष्णु प्रभाकर और उनके नाटक तथा एकांकी पर विचार किया गया है। इस इकाई में विष्णु प्रभाकर का परिचय देने के साथ–साथ उनके नाटकों और एकांकी पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इकाई – 13 में 'और वह जा न सकी' एकांकी का एकांकी के तत्वों के आधार पर विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है। इकाई – 14 'जगदीशचंद्र माथुर और उनके नाटक तथा एकांकी' है। इस इकाई में जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी साहित्य का अध्ययन कराया जाएगा। इकाई 15 में जगदीशचंद्र माथुर की एकांकी 'भोर का तारा' का विश्लेषण और मूल्यांकन है। इकाई – 16 'रामकुमार वर्मा और उनका साहित्य' है। इस इकाई में रामकुमार वर्मा के साहित्य से परिचित कराया गया है और विशेषरूप से उनके नाटक एवं एकांकी के संदर्भ में चर्चा की गई है। इकाई – 17 में रामकुमार वर्मा की महत्वपूर्ण एकांकी 'दीपदान' का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है। ऐतिहासिक घटना पर आधारित इस एकांकी के विशिष्ट चरित्रों की विशेषताएँ भी बताई गई हैं। इस प्रकार यह खंड संपन्न होता है।

खंड का अध्ययन करने से पूर्व आपसे यह अपेक्षा की जाती है कि आप इन तीनों एकांकी का वाचन अवश्य करें जिससे खंड में विश्लेषित विषयों को सुगमता से समझ सकें। इनका वाचन और अध्ययन में कठिनाई होने पर अपने अध्ययन केंद्र जाकर परामर्शदाता से संपर्क कर शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न करें।

शुभकामनाओं के साथ !

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 11: हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य विधाएँ : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 दृश्य विधा का विशिष्ट स्वरूप

11.3 एकांकी तथा अन्य दृश्य विधाओं का संरचनागत वैशिष्ट्य

- 11.3.1 कथानक
- 11.3.2 पात्र
- 11.3.3 संवाद तथा भाषा शैली
- 11.3.4 परिवेश अथवा देशकाल
- 11.3.5 अभिनेयता या मंचीयता
- 11.3.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

11.4 हिंदी एकांकी का विकास

11.5 एकांकी के भेद

11.6 रेडियो नाटक

- 11.6.1 रेडियो नाटक और एकांकी
- 11.6.2 रेडियो नाटक के प्रकार

11.7 कथा मंचन और कहानी का रंगमंच

11.8 नुक्कड़ नाटक

11.9 नाट्य–रूपांतर

11.10 सारांश

11.11 शब्दावली

11.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप के बारे में जान सकेंगे;
- एकांकी तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के बीच अंतर कर सकेंगे;
- एकांकी के रचना शिल्प का विवेचन कर सकेंगे;
- एकांकी के तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- हिंदी एकांकी के विकास क्रम के विभिन्न चरणों के बारे में बता सकेंगे;
- रेडियो नाटक की विशेषताएँ समझा सकेंगे तथा एकांकी और रेडियो नाटक का संबंध पहचान सकेंगे;
- साहित्य की अन्य विधाओं के मंचन के विषय में जानकारी दे सकेंगे; तथा
- नुक्कड़ नाटक के विषय में बता सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में एकांकी नाटक के विषय में जानकारी प्राप्त करने के साथ–साथ आप अन्य दृश्य, श्रव्य माध्यमों और उनके लिए लेखन के बारे में पढ़ेंगे। इस खंड में आप तीन एकांकियों का अध्ययन करेंगे। इन एकांकियों को पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि एकांकी क्या है और उसकी क्या विशेषताएँ हैं? उसका जन्म कैसे हुआ? और हिंदी में उसकी शुरूआत कब हुई? इसके साथ ही हिंदी एकांकी के विकासक्रम से परिचय भी आपके लिए जरूरी है। इससे आप हिंदी एकांकी के विविध रूपों का समुचित मूल्यांकन कर सकेंगे। साथ ही, रेडियो नाटक, छोटे या बड़े पर्दे के लिए लिखी जाने वाली पटकथा तथा नुक्कड़ नाटक के विषय में बता सकेंगे। साथ ही अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में एकांकी की विशिष्टता से भी आपका परिचय कराया जाएगा। एकांकी वस्तुतः नाटक का ही एक रूप है। एक अंक का नाटक एकांकी कहलाता है। नाटक की रचना दुनिया भर के साहित्य में आरंभ से ही काफी लोकप्रिय रही है किंतु एकांकी अपेक्षाकृत नई विधा है। हिंदी में तीस के दशक में शुरू होकर लगभग तीन–चार दशकों तक एकांकी काफी लोकप्रिय विधा रही। तत्पश्चात् श्रव्यदृश्य माध्यमों के विस्तार और लोकप्रियता के बाद इसमें थोड़ा ठहराव आया और इनका स्थान नाटक के अन्य रूपों जैसे नुक्कड़ नाटक, रेडियो नाटक, टीवी नाटक आदि ने ले लिया।

11.2 दृश्य विधा का विशिष्ट स्वरूप

एकांकी नाटक का ही एक रूप है। अतः एकांकी की चर्चा करने से पहले नाटक के बारे में थोड़ी सी जानकारी अपेक्षित है। साहित्य के दो प्रकार होते हैं, एक वह जिसे पढ़ा या सुना जा सकता है और दूसरा वह जिसे देखा जा सकता है। पहले प्रकार के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि आते हैं और दूसरे के अंतर्गत नाटक आता है। इस तरह साहित्य का वह रूप जिसे हम पढ़ भी सकते हैं और अपनी आँखों से देख भी सकते हैं, नाटक कहलाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इसे कैसे दिखाया जा सकता है? उत्तर होगा इसे अभिनय के माध्यम से देखा जा सकता है। अभिनय कौन करता है? उत्तर होगा अभिनेता। अभिनेता विभिन्न पात्रों का अभिनय करके नाटक की कथा को दृश्य रूप प्रदान करते हैं। इस तरह यहाँ कथा का वर्णन नहीं किया जाता, बल्कि उसे दृश्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अभिनेता पात्रों के रूप का अनुकरण करते हैं। इसीलिए नाटक को 'रूपक' भी कहा जाता है। पात्रों का यह अनुकरण, बाह्य तथा आंतरिक दोनों स्तरों पर किया जाता है। अर्थात् अभिनेता पात्रों के अनुरूप वेशभूषा, आचरण, हाव–भाव तथा भाषा का व्यवहार करते हैं और कथा को घटित होता हुआ दिखाते हैं। यह अभिनय जिस स्थल पर होता है उसे रंगमंच कहते हैं और इसे देखने वाले नाटक के दर्शक या प्रेक्षक कहलाते हैं। आपने कोई नाटक देखा होगा; रामलीला या रासलीला देखी होगी या अन्य किसी तरह का अभिनय अवश्य देखा होगा। क्या आपने कभी गौर किया है कि नाटक की क्या विशेषता होती है? आपने कहानी या उपन्यास पढ़े होंगे, नाटक भी पढ़े होंगे, कहानी सुनी होगी, क्या आपने ध्यान दिया कि जो कहानी आपने सुनी और जो नाटक आपने देखा उसमें कोई अन्तर है। आपने गौर किया है कि आप कहानी पढ़ते या सुनते हैं और नाटक देखते हैं। नाटक को कोई कहता या सुनता नहीं बल्कि अभिनेता प्रत्यक्ष रूप में इसे प्रस्तुत करते हैं। इस तरह यह दृश्य माध्यम है। यहाँ घटना का वर्णन नहीं होता, हम उसे घटित होते देखते हैं। नाटक में कार्य–व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता हैः पात्रों के बीच वार्तालाप द्वारा और उनके आचरण या कार्यों द्वारा। लेखक की रचना को अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। किंतु उनके अलावा बहुत

लोग नाट्य प्रस्तुति में सक्रिय भाग लेते हैं इनमें प्रमुख हैंः नाटक का/की निर्देशक, रंग–सज्जाकार, प्रकाश–व्यवस्थाकार, संगीत–वाद्य की व्यवस्था करने वाले आदि। नाटक की कथावस्तु कई अंकों में विभाजित होती है और अंक कई दृश्यों में विभाजित होता है।

बोध प्रश्न

1. नाटक में क्या खास बात होती है जो कहानी या उपन्यास में नहीं होती। प्रश्न के नीचे दिए स्थान पर अपना उत्तर लिखिए।

   ....

   ....

2. निम्नलिखित के लिए एक शब्द लिखिए :

   i) नाटक को मंच पर प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति।

   ii) वह स्थान जहाँ नाटक प्रस्तुत किया जाता है।

   iii) वह साहित्य–रूप जिसका आनंद देखकर लिया जा सके।

   iv) नाटक देखने वाले व्यक्ति।

11.3 एकांकी तथा अन्य दृश्य विधाओं का संरचनागत वैशिष्ट्य

नाटक की कथावस्तु कई अंकों और दृश्यों में विभाजित होती है। अंकों की संख्या अक्सर पाँच या तीन होती हैं। हालाँकि अंकों का कोई प्रतिबंध नहीं है। यह संख्या पाँच या तीन या कम या अधिक भी हो सकती है। अंकों को क्रमशः दृश्यों में विभाजित किया जाता है। दृश्यों की संख्या के बारे में भी कोई निश्चित नियम नहीं है। हाँ, दृश्यों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से मंच पर प्रस्तुति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। दृश्यों की योजना वस्तुतः नाटक की प्रस्तुति को दृष्टि में रख कर ही की जाती है। इसमें घटना के समय, स्थान, वातावरण आदि को प्रस्तुत किया जाता है। इस तरह नाटक का सारा कार्य–व्यापार अंकों और दृश्यों में सिमटा होता है।

आधुनिक युग में नाटक के भीतर से एक नई विधा का जन्म हुआ है। यह नई विधा एकांकी के नाम से विकसित हुई है। एकांकी का अर्थ है एक अंक का नाटक, एक से अधिक अंकों के नाटकों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि जब तीन या पाँच या दो या चार अंकों के नाटकों को एक समान ही समझा जाता है तो एक अंक के नाटक को एक नई विधा क्यों माना जाता है? आपका प्रश्न सही है। यदि केवल अंकों की संख्या के कारण ही एकांकी एक अलग विधा मानी जाए तब तो फिर अंकों के आधार पर कई तरह के नाटक हो सकते हैं। किंतु ऐसा नहीं है। कई अंकों के नाटक को कभी–कभी पूर्णकालिक नाटक भी कहते हैं। ऐसा अक्सर एकांकी का नाटक से भेद करने की दृष्टि से ही किया जाता है। यहाँ हम 'एकांकी' और 'नाटक' शब्दों का प्रयोग करेंगे। अतः 'नाटक' शब्द से हमारा तात्पर्य होगा एक से अधिक अंकों का नाटक। आधुनिक युग में एकांकी एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुआ है। इसका शिल्पगत स्वरूप नाटक से मिलता–जुलता होता है किंतु कलेवर कहानी की भाँति संक्षिप्त होता है। नाटक और एकांकी में न केवल आकार का ही अंतर होता है अपितु कथावस्तु, पात्र संख्या आदि का अंतर भी होता है। नाटक में जीवन का विस्तृत चित्रण होता है जबकि एकांकी उसके किसी एक खंड, स्थिति अथवा संवेदना को प्रस्तुत करता है। नाटक में मूल कथा के साथ–साथ गौण अथवा प्रासंगिक कथाएँ भी चल सकती हैं किंतु एकांकी में केवल एक मूल कथानक ही होता है। नाटक की कथावस्तु के विकास में शास्त्रीय ढंग की कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों

और संधियों का निर्वाह हो सकता है किंतु एकांकी में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है। यहाँ तो कथा आरंभ होकर तेजी से विकसित होती हुई चरम सीमा पर पहुँच जाती है। अतः इसमें प्रभाव की सघनता और तीव्रता अत्यावश्यक होती है। इसीलिए इसमें पात्रों की संख्या भी अधिक नहीं होती। कथा विकास में योग देने वाले प्रमुख पात्र होते हैं, गौण पात्र लगभग नहीं होते अथवा होते भी हैं तो बहुत कम। एकांकी में केवल एक दृश्य ही हो सकता है या एक से अधिक दृश्य भी बदले जा सकते हैं किंतु समय और स्थान की अधिक दूरी की गुंजाइश नहीं होती। बहुधा सारी घटना एक ही स्थान पर घटती है और यदि दृश्य बदलता भी है तो अक्सर स्थान परिवर्तन नहीं होता। नाटक में स्थान परिवर्तन किया जा सकता है। नाटक की घटना का विस्तार कभी–कभी काफी लंबे समय तक चलता है किंतु एकांकी में यह संभव नहीं। स्थान, कार्य और समय की एकता यहाँ आवश्यक है।

इसीलिए यह पारंपरिक लेखन पद्धति को अपनाने के लिए भी बाध्य नहीं है। इसमें जीवन के किसी एक पक्ष, किसी परिस्थिति विशेष, किसी महत्त्वपूर्ण घटना अथवा भाव को ऐसे ढंग से अभिव्यंजित किया जाता है कि प्रभाव की एकात्मकता और सघनता पाठक या प्रेक्षक के मन पर अमिट छाप छोड़ती है। इस तरह एकांकी की कथावस्तु इकहरी होती है कोई अप्रधान अथवा प्रासंगिक घटना या प्रसंग साथ नहीं चलता। प्रमुख कथा का विकास नाटकीय कौशल के साथ किया जाता है जिससे कुतूहल की सृष्टि होती है और कथा तेजी से चरम सीमा की ओर बढ़ती है। चरम सीमा पर पहुँचकर एकांकी का अंत हो जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है, ''विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिल कर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता की भाँति फैलने की विशृंखलता नहीं है।''

इस तरह एकांकी के लेखन में एक खास तरह की टेकनीक अथवा शिल्पविधि निहित होती है। यह टेकनीक नाटकीय कौशल के साथ आकस्मिकता और कार्य व्यापार की शीघ्रता के माध्यम से कुतूहल, जिज्ञासा और विस्मय की सृष्टि करती है। परिस्थितियों के टकराव द्वारा द्वंद्व या संघर्ष की सृष्टि करती हुई उसे चरम सीमा तक पहुँचाती है। द्वंद्व या संघर्ष बड़ा ही प्रबल और सघन होता है जिससे पाठक या दर्शक के मन में चरम परिणति जानने की तीव्र इच्छा पैदा हो जाती है। यह द्वन्द्व या संघर्ष दो तरह का हो सकता है। दो पात्रों के बीच किसी बात को लेकर संघर्ष या फिर किसी पात्र के मन में परस्पर विरोधी विचारों का संघर्ष। चरम सीमा पर पहुँचकर इस कुतूहल या जिज्ञासा का समाधान होता है और एकांकी का अंत हो जाता है।

एकांकी तथा श्रव्य दृश्य विधाओं के तत्त्व :

यद्यपि श्रेष्ठ साहित्यिक कृति की रचना पूरी तरह से नियमों के बंधनों में बंध कर नहीं की जाती फिर भी साहित्यिक विधा विशेष की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो उसे अन्य विधाओं से अलग करती है तथा अपना एक निश्चित स्वरूप प्रदान करती हैं। एकांकी तथा अन्य दृश्य विधाओं का स्वरूप निम्नलिखित तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है :

1. कथानक 2. पात्र या चरित्र–चित्रण, 3. संरचना–शिल्प–संवाद तथा भाषा–शैली, 4. देशकाल अथवा परिवेश, 5. अभिनेयता, 6. उद्देश्य या प्रतिपाद्य।

11.3.1 कथानक

एकांकी के घटना विधान को कथावस्तु या कथानक कहते हैं। कथानक का चयन जीवन के किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। कथा अतीत से संबंधित हो सकती है या वर्तमान से। अर्थात लेखक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या समसामयिक विषय को ले सकता है, उदाहरण के लिए इस खंड में जो एकांकी आप पढ़ेंगे उनमें 'दीपदान' की कथा प्राचीन भारतीय इतिहास से ली गई है। एकांकी 'और वह जा न सकीं' की कथा वर्तमान

सामाजिक जीवन से संबंधित हैं। वर्तमान अथवा समकालीन जीवन से ली गई कथा का विषय सामाजिक, राजनीतिक जीवन की समस्याओं से संबंधित हो सकता है या व्यक्ति और समाज के संघर्ष से संबंधित या मानवीय राग–विराग आदि से संबंधित। नुक्कड़ नाटक का कथानक वर्तमान से और आस–पास के जीवन से जुड़े प्रश्नों से संबंधित होता है। कथानक में जीवन का जितना सही प्रस्तुतीकरण होगा उतना ही वह सफल होगा। बड़े नाटकों में आधिकारिक (प्रमुख) कथा के साथ–साथ अनेक प्रासंगिक (गौण) कथा या कथाएँ भी चलती हैं किंतु एकांकी में केवल आधिकारिक कथा ही चलती है। एकांकी की कथावस्तु में इकहरापन होता है और कार्य–व्यापार तीव्रता से आगे बढ़कर अंत तक पहुँच जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एकांकी में कथा–प्रवाह उस निर्झर के सामान होता है जो किसी पहाड़ी से अकस्मात् फूटता है और कुछ दूर तक दिखाई पड़ने के बाद शीघ्र ही आँखों से ओझल हो जाता है।

कथानक का अर्थ है– घटनाओं अथवा कार्य–व्यापार की योजना। यह योजना इस तरह की जाती है कि कथा आरंभ होकर विकसित होती हुई अंत तक पहुँच जाए। इस तरह कथावस्तु के तीन चरण होते हैं–

1) आरंभ, 2) विकास, और 3) अंत।

कथानक का प्रारंभ किसी घटना के मार्मिक स्थल से होता है। फिर घटनाओं के घात–प्रतिघात से जिज्ञासा, विस्मय और कुतूहलपूर्ण संघर्ष की सृष्टि द्वारा कथानक का विकास किया जाता है और चरम सीमा पर पहुँच कर उसका अंत हो जाता है। घटनाओं के विकास में जिज्ञासा या कुतूहल की सृष्टि दो विरोधी परिस्थितियों या असंगत भावनाओं के द्वंद्व अथवा संघर्ष द्वारा की जाती है।

इसलिए कथानक का आरंभ अत्यंत सशक्त, आकर्षक और प्रभावी होना चाहिए जिससे शुरू से ही दर्शक के ध्यान को पूरी तरह पकड़ ले। कथा का विकास संघर्ष के माध्यम से होता है इसीलिए संघर्ष को एकांकी की आत्मा कहा जाता है। संघर्ष दो तरह का हो सकता है–बाहरी और आंतरिक। बाहरी संघर्ष पात्रों के बीच विषम स्थितियों के कारण उत्पन्न होता है। आंतरिक संघर्ष मानसिक होता है। इसे अंतर्द्वंद्व भी कहा जाता है। इसमें दो विरोधी भावों की टकराहट होती है। इसके चित्रण के लिए मानवीय मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ अपेक्षित है। भली–भाँति विकसित होने पर आंतरिक संघर्ष बहुत ही प्रभावपूर्ण होता है। यह अंतर्द्वंद्व विचार और भावना का हो सकता है, कर्त्तव्य और प्रेम का हो सकता है, नैतिक दायित्व और महत्त्वाकांक्षा का हो सकता है, परंपरा और प्रयोगधर्मिता का हो सकता है। संघर्ष चाहे आंतरिक हो या बाह्य, परिस्थितियों की टकराहट अनिवार्य है। संघर्ष से ही कथानक में जिज्ञासा, कुतूहल और आकस्मिकता की सृष्टि होती है और दर्शक चरम परिणति जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।

जैसे–जैसे संघर्ष तीखा और गाढ़ा होता जाता है, पाठक या दर्शक की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और विरोधी भावनाओं या परिस्थितियों की टकराहट या द्वंद्व घना होता जाता है। संघर्ष और अंतर्द्वंद्व की समाप्ति अक्सर विरोधी स्थितियों में से किसी एक की जीत में होती है। उदाहरण के लिए, विष्णु प्रभाकर की एकांकी 'संस्कार और भावना' में माँ के संस्कारों पर भावना की विजय। संघर्ष की सघनता और समाप्ति का स्थल चरम सीमा (क्लाइमेक्स) कहलाता है। यहीं पर कथानक का अंत हो जाता है। यदि चरम सीमा पूर्णतया सक्षम और प्रभावपूर्ण है तो वहीं पर कथानक का अंत अनिवार्य है क्योंकि इसके बाद कथा को आगे बढ़ाना प्रभाव को कमजोर बना देता है। यदि एकांकी चरम सीमा पर समाप्त नहीं होता तो यह कथा विकास की कमी है। यदि संघर्ष एकांकी की आत्मा है तो संघर्ष कहीं न कहीं पराकाष्ठा पर पहुँचेगा ही। इसलिए श्रेष्ठ एकांकी चरम सीमा पर अवश्य पहुँचता है और चरम सीमा पर पहुँचना ही संघर्ष की परिणति है।

संकलन–त्रय : एकांकी या रेडियो नाटक में एक ही घटना, संवेदना या मनःस्थिति का चित्रण होता है अतः इसमें संकलन त्रय की अपेक्षा होती है। संकलन–त्रय का अर्थ है स्थान, कार्य और समय की एकता। कथा–विकास में स्थान, समय और कार्य की एकता के माध्यम से प्रभावान्विति उत्पन्न की जाती है। इन तीनों एकताओं के संकलन को संकलन–त्रय कहा जाता है। स्थान की एकता से तात्पर्य है नाटक में घटित होने वाली घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित हों। यदि घटनाएँ कई स्थलों पर घटित होगी तो रंगमंच पर दृश्य विधान बदलने की जरूरत हो सकती है इसके लिए समय और साधन दोनों ही जुटाने पड़ सकते हैं। समय की एकता से तात्पर्य है कि घटनाएँ एक ही समय में घटित हों। एकांकी में दृश्य अधिक हो सकते हैं किंतु उनमें समय का ज्यादा अंतराल नहीं होता। यह नहीं कि एक घटना आज घटे और दूसरी महीने भर बाद। इसी तरह कार्य की अन्विति अथवा एकता एकांकी के लिए जरूरी है। ऐसा कोई भी कार्य या घटना नहीं होनी चाहिए जो मूल कथ्य को उभारने में सहायक न हो। कथानक का आरंभ, मध्य और अंत इस ढंग से नियोजित होने चाहिए कि तीनों मिल कर एक इकाई की सृष्टि करें। यानी कथानक का अगला भाग पिछले भाग का प्रतिफलन होना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि कथा बँधे–बँधाए ढर्रे पर आगे बढ़े। कथानक में आकस्मिक मोड़ से वह रोचक और प्रभावपूर्ण बनती है। संकलन–त्रय के कई लाभ हैं। इससे एकांकी की प्रभावान्विति में वृद्धि होती है, मंचन सुविधाजनक होता है क्योंकि मंच सज्जा को ज्यादा बदलने में श्रम और समय नष्ट नहीं करना पड़ता।

11.3.2 पात्र

पात्र एकांकी का अनिवार्य अंग है क्योंकि कथानक का विकास पात्रों के माध्यम से होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि कथावस्तु की बनावट में पात्रों की अपरिहार्य भूमिका हो और पात्रों का चरित्र कथावस्तु के माध्यम से विकसित और प्रस्तुत हो। दूसरे शब्दों में कहें तो कथानक चरित्र का प्रतिफलन हो और चरित्र कार्य–व्यापार से विकसित हो। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि पात्र जीवन से जुड़े हों, उनके कार्यकलाप मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति हों। वह किसी काल्पनिक मायावी दुनिया के न होकर वास्तविक मानवीय दुनिया के हों। उनके गुण, स्वभाव, कार्य आदि सहज मानवीय होने चाहिए और यदि उनके व्यक्तित्व या व्यवहार में कोई आकस्मिक परिवर्तन आता है तो वह भी कार्य–कारण संबंध पर आधारित होना चाहिए। उनकी मनःस्थिति परिस्थितियों से उत्पन्न होनी चाहिए, ऊपर से आरोपित नहीं। पात्रों के सहज चारित्रिक विकास के लिए यह नितांत आवश्यक है।

जहाँ तक पात्र चयन का सवाल है वे किसी भी वर्ग से हो सकते हैं। प्राचीन नाट्य लेखन में रूढ़ि थी कि प्रधान पात्र उच्च वर्ग का तथा कुलीन होना चाहिए। किंतु आधुनिक नाटक इस तरह की कोई रूढ़ि स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह रचना के माध्यम से जीवन की यथासंभव यथार्थ प्रस्तुति करना चाहता है। एकांकी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती।

सामान्यतः पात्र संख्या चार–पाँच से ज्यादा नहीं होती जिनमें से एक या दो प्रधान पात्र होते हैं, शेष गौण। नाटक में बहुधा प्रधान पात्र का विरोधी पात्र होता है जिसे प्रतिनायक कहा जाता है। एकांकी में प्रतिनायक का होना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि संघर्ष दो पात्रों के बीच ही हो। परिस्थितियों अथवा मनःस्थिति का द्वंद्व भी हो सकता है। इसी तरह हास्य–व्यंग्य समावेश के लिए किसी पात्र का होना भी एकांकी में जरूरी नहीं है। हास्य–व्यंग्य की सृष्टि प्रमुख या गौण पात्रों के माध्यम से अथवा परिस्थितियों के माध्यम से भी की जा सकती है।

पात्रों के चरित्र का विकास उनकी स्थिति, मनोविज्ञान, संस्कार और परिवेश के अनुकूल होना चाहिए। पात्र मानवीय जीवन के हों, ऐसे काल्पनिक आदर्श नहीं कि जीवन में असंभव लगे। यदि वे किसी आदर्श को स्थापित भी करें तो स्वाभाविक ढंग से।

11.3.3 संवाद तथा भाषा शैली

संवाद एकांकी का अपरिहार्य तत्त्व है जिसके बिना एकांकी की रचना हो ही नहीं सकती। हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है जिसमें सब कुछ घटित होते दिखाया जाता है। कोई विवरण नहीं दिया जाता है। पात्रों द्वारा कही गई बातों के माध्यम से ही कथा का घटना व्यापार चलता है और पात्रों का चरित्र विकसित और व्यक्त होता है। इस तरह संवाद नाटक की कसौटी बन जाता है। पात्र स्वयं जो कुछ कहता है उससे तो उसके चरित्र के बारे में पता चलता ही है अन्य पात्रों की बातचीत भी उसके व्यक्तित्व को प्रकाशित करती है। अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक को अपनी ओर से कुछ भी कहने की छूट होती है क्योंकि अन्य विधाएँ वर्णानात्मक भी हो सकती हैं। वहाँ लेखक जितनी बात जरूरी समझता है उतनी पात्रों के मुख से कहलाता है शेष का बयान खुद कर देता है। ऐसा करते समय वह चाहे जितना विस्तार से कह सकता है स्थिति, समस्या, वातावरण या पात्र विशेष के संबंध में टिप्पणी कर सकता है। किंतु नाटक में सब कुछ संवादों के माध्यम से ही व्यक्त होना चाहिए। दृश्यों के आरंभ में तथा बीच–बीच में दिए गए रंग–निर्देश (लेखक द्वारा दिए गए रंगमंच तथा अभिनय संबंधी संकेत) प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक होते हैं किंतु प्रमुख भूमिका संवादों की ही होती है। कथावस्तु का विकास उसके उतार–चढ़ाव और चरम सीमा की अभिव्यक्ति संवादों के माध्यम से होती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि संवाद प्रभावपूर्ण, रोचक और स्वाभाविक तो हों ही, मर्मस्पर्शी, संक्षिप्त और वाक्पटुतापूर्ण भी हों। यदि संवाद मर्मस्पर्शी होंगे तो उनका प्रभावपूर्ण होना स्वाभाविक ही है। इसी तरह वाक्पटुतापूर्ण होने से उनमें रोचकता उत्पन्न होगी। संक्षिप्त होना इसलिए जरूरी है कि बोलचाल की बात आमतौर पर बहुत लंबी नहीं होती किसी गंभीर विषय पर वैचारिक वार्तालाप भी भाषण या वक्तव्य की भाँति बहुत बड़ा नहीं होगा। एकांकी का आकार छोटा होने के कारण संक्षिप्तता और भी अधिक अपेक्षित है। यहाँ अधिक विवेचन, विश्लेषण की गुंजाइश नहीं। अतः गंभीर और महत्त्वपूर्ण बात को भी संक्षिप्त किंतु प्रभावपूर्ण ढंग से कहना जरूरी है। उपर्युक्त सभी गुणों के समावेश के बावजूद संवाद स्वाभाविक होने चाहिए। स्वाभाविकता का अर्थ है सहजता। यह सहजता कई स्तरों पर हो सकती है। पहली बात तो यह कि संवाद पात्र के स्वभाव, व्यक्तित्व, शिक्षा–दीक्षा, आयु और मनःस्थिति के अनुकूल हों। दूसरे स्तर पर स्वाभाविकता से तात्पर्य है वास्तविक जीवन से निकटता। जीवन में विविध परिस्थितियों में हम जैसे आचरण–व्यवहार करते और बोलते हैं वैसी ही प्रतीति नाटक में होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि दिन–प्रतिदिन के वार्तालाप को एकांकी में ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत कर दिया जाए। ऐसा करने से वह जिज्ञासा अथवा कुतूहल उत्पन्न नहीं हो सकेगा जो एकांकी के लिए नितांत अपेक्षित है। अतः लेखक को चुनना होता है कि कथ्य का कौन–सा अंश दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सकेगा और पात्रों के संवादों के माध्यम से पाठक या दर्शक को सर्वाधिक संप्रेषणीय हो सकेगा। इसके लिए संवादों में स्वाभाविकता के साथ–साथ वाक् चातुर्य, बातचीत की कुशलता अपेक्षित है। पात्र से केवल उतना ही कहलाया जाए जितना कथा के विकास और पात्र के चरित्रोद्घाटन या मनोभावों के उद्घाटन के लिए अपेक्षित हो। लंबे और विचार बोझिल भाषणों से सदैव बचना चाहिए क्योंकि उनसे रोचकता कम होगी और वे दर्शकों को प्रभावित भी नहीं कर सकेंगे। वार्तालाप का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य स्थिति विशेष में अनिवार्य प्रतीत होना चाहिए। बात को इतनी सहजता और स्पष्टता से कहलाया जाना चाहिए कि पाठक या दर्शक को तुरंत समझ में आए। रंगमंच पर नाटक की सफलता या असफलता का आधार उसके संवाद ही होते हैं।

संवादों के प्रकार : संवाद कई प्रकार के होते हैं। इनमें दो पात्रों के बीच बातचीत तथा एकालाप या स्वगत कथन अधिक प्रचलित हैं। स्वगत कथन में पात्र किसी अन्य पात्र से बात नहीं करता वरन् अपने आप से ही कहता है। इसके द्वारा पात्र की मनःस्थिति उद्‌घाटित की जाती है, उसके मन में चल रहे द्वंद्व को व्यक्त किया जाता है।

भाषा : जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, इसे संवाद की कसौटी कहना चाहिए। पहले हम कह चुके हैं कि संवादों के माध्यम से भाषा ही नाट्य कथावस्तु को दृश्य बनाती है। दृश्य माध्यम होने के कारण यहाँ भाषा को अधिकाधिक संप्रेषणीय होना चाहिए। लिखित भाषा और उच्चारित भाषा में प्रभाव का अंतर होता है। नाटक में भाषा का मौखिक रूप प्रधान होता है। दर्शक उसे मंच पर देखता–सुनता है। पात्रों द्वारा कही गई बात दर्शक को तुरंत संप्रेषित होनी चाहिए क्योंकि सोचने–विचारने का समय नहीं होता। अतः लेखक को मौखिक शब्द की प्रभाव क्षमता पर ध्यान केंद्रित करना होता है। यहीं आकर दृश्य माध्यम की भाषा पाठ्य माध्यम की भाषा से विशिष्ट हो जाती है। भाषा का प्रयोग पात्रों की मनःस्थिति, गुण, स्वभाव, संस्कार, सामाजिक स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। एकांकी, रेडियो नाटक अथवा नुक्कड़ नाटक का आकार छोटा होने के कारण भाषा में संप्रेषणीयता की माँग और अधिक बढ़ जाती है।

शैली : शैली का अर्थ है कथ्य को प्रस्तुत करने का ढंग। कथ्य को प्रस्तुत करने के ढंग पर दो चीजों का खास असर होता है। सर्वप्रथम तो एकांकीकार के अपने व्यक्तित्व का। हर लेखक का अपनी बात को प्रस्तुत करने का एक खास ढंग होता है जो उसका अपना होता है। दूसरे वह अपने कथानक के लिए जिस विषय को चुनता है वह भी अपनी शैली को निर्धारित करता है। इस तरह शैली के कई रूप हो सकते हैं जैसे :

1) व्यंग्यात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, हास्यपरक शैली, विश्लेषणात्मक शैली आदि। नाटक में लेखक की अपनी शैली सीधे प्रस्तुत न होकर पात्रों के मुख से सामने आती है। अतः व्यंग्य, विवेचन, विश्लेषण, तर्क आदि सभी संवाद के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

2) पात्रों के मनोविज्ञान की प्रस्तुति के आधार पर मनोविश्लेषणपरक शैली या भावनात्मक शैली हो सकती है।

3) विषय की दृष्टि से गंभीर विवेचन की शैली या सहज बोलचाल की शैली हो सकती है।

अभिनेयता की दृष्टि से भाषा–शैली और संवाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक की भाषा का लिखित पक्ष जितना महत्त्वपूर्ण होता है उतना ही भाषा का मौखिक पक्ष। लिखित रूप में प्रभावपूर्ण होते हुए भी यदि भाषा तथा शैली दृश्य और उच्चारित रूप में स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण न लगी तो नाटककार का सारा उद्देश्य निष्फल रहेगा। उसमें बोलचाल की सहजता, स्वाभाविकता और प्रभाविष्णुता नितांत अपेक्षित है। लेखक ने यदि व्यंग्यात्मक या प्रतीकात्मक शैली अपनायी है तो यह व्यंग्य या प्रतीक दर्शक को सहज बोधगम्य होने चाहिए अन्यथा उसका अपेक्षित प्रभाव नहीं होगा। अतः संवाद पढ़ने में जितने प्रभावकारी और संप्रेषणीय हों, मंच पर प्रस्तुत होने पर भी उतने ही या उससे अधिक प्रभावकारी होने चाहिए, कम नहीं।

11.3.4 परिवेश अथवा देशकाल

कथानक जिस समय तथा स्थान से संबंधित हो उसके वातावरण की सृष्टि परिवेश की सृष्टि कहलाती है। पात्र जिस समय के हैं, जिस स्थान और जिस वर्ग के होते हैं उसका प्रभाव उनके रहन–सहन, वेशभूषा, भाषा, विचारों आदि पर दिखाया जाना चाहिए। यदि कथानक समसामयिक जीवन से संबद्ध है तो उसमें समसामयिक परिवेश होना चाहिए और यदि ऐतिहासिक है तो इतिहास का परिवेश। उदाहरण के लिए, हम पाठ्यक्रम में

निर्धारित एकांकियों तथा अन्य नाटकों को देखें तो 'दीपदान' ऐतिहासिक एकांकी है। अतः प्राचीन भारतीय जीवन, समय, राज्यव्यवस्था आदि का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। 'और वह जा न सकी' आधुनिक जीवन के मध्यवर्गीय परिवार को लेकर लिखा गया है। अतः भारतीय समाज के मध्य वर्ग के परिवार के रहन–सहन, आचार–व्यवहार, सोच–विचार आदि के परिवेश को प्रस्तुत करता है। नुक्कड़ नाटक राजनीतिक यथार्थ को असली रूप में उभारता है अतः उसमें छल–कपट अपराध की मानसिकता का परिवेश है। परिवेश से कथानक तथा पात्रों में विश्वसनीयता उत्पन्न होती है। परिवेश की सृष्टि जितनी वास्तविक और स्वाभाविक होगी नाटक उतना ही विश्वसनीय और सजीव होगा। जिस समय और स्थान को प्रस्तुत किया जा रहा है वह पाठक या दर्शक की कल्पना में सजीव हो उठना चाहिए।

देशकाल या परिवेश श्रव्य–दृश्य विधा के संपूर्ण कथा व्यापार में व्याप्त रहता है। कहानी, उपन्यास आदि वर्णनात्मक विधाओं में तो देशकाल या परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक अपनी ओर से टिप्पणी भी कर सकता है, विवरण भी दे सकता है किंतु नाट्य विधा में परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहता। इसकी सृष्टि वह दृश्य–विधान, रंग–सज्जा, पात्रों की वेशभूषा आदि के विषय में संकेत देकर तथा पात्रों की भाषा, विचार, रहन सहन के तौर–तरीके, बातचीत की शैली आदि के माध्यम से करता है। पूरी की पूरी नाट्य–प्रक्रिया मिलकर परिवेश की सृष्टि करती है। मंचन के समय निर्देशक को भी परिवेश का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। मंच–सज्जा, ध्वनि–प्रभाव, पात्रों के अभिनय आदि का भी परिवेश की सृष्टि में विशेष योगदान रहता है। परिवेश की सहज और स्वाभाविक सृष्टि के लिए आवश्यक है कि लेखक को समाज, संस्कृति, इतिहास, कला आदि की सूक्ष्म जानकारी हो। लेखक जीवन को जितनी सूक्ष्मता से देखेगा, उतनी ही सफलता से वह देशकाल की सृष्टि कर सकेगा। यदि वह इतिहास से अपना कथानक चुनता है तो उसे इतिहास के काल विशेष के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करके तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करना होगा। इतिहास का जो युग उसने लिया है उससे संबंधित यह जानकारी होनी चाहिए, उसमें लोग कैसे रहते थे, किस ढंग से जीवन यापन करते थे, मानवीय संबंधों का स्वरूप कैसा था, ज्ञान–विज्ञान के विकास की क्या स्थिति थी, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि का क्या रूप था, आर्थिक–सामाजिक संबंधों की स्थिति क्या थी। इन समस्त जानकारी के आधार पर ही वह अपने कथानक को सजीव, स्वाभाविक और विश्वसनीय बना सकता है। इसी तरह समसामयिक परिवेश की सृष्टि के लिए जीवन के विविध पक्षों की जानकारी आवश्यक है। कथानक यदि ग्रामीण जीवन का है या शहरी जीवन का है तो वहाँ के लोगों के रहन–सहन, आचार–विचार, मानवीय संबंधों के स्वरूप की जानकारी के आधार पर देशकाल की सृष्टि की जानी चाहिए।

11.3.5 अभिनेयता या मंचीयता

हम पहले कह चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है। उसे रंगमंच पर अभिनय द्वारा दृश्य बनाया जाता है और रेडियो पर आवाज और ध्वनि द्वारा और टेलीविज़न या सिनेमा के लिए स्टूडियो में अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह लेखक द्वारा लिख दिए जाने मात्र से पूरा या सफल नहीं हो जाता, मंच पर प्रस्तुत होकर पूर्ण होता है। अतः अभिनेयता नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यदि कोई नाटक अथवा एकांकी सफलतापूर्वक अभिनीत नहीं हो सकता तो उसे नाटक न कह कर संवादात्मक कथा मात्र कहा जाएगा। केवल संवादों के रूप में प्रस्तुत कर देने मात्र से कोई रचना नाटक नहीं बन जाती। यह जरूरी होता है कि संवाद अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर स्थिति को दृश्य बनाने में सक्षम हों। नाटककार चूँकि अपनी ओर से कुछ नहीं कहता अतः कथानक में निहित द्वंद्व और उसकी चरम परिणति की अभिव्यक्ति को रंगमंचीय प्रदर्शन

द्वारा अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए अभिनेता नाटक के पात्रों का रूप धारण करके अभिनय करते हैं। अभिनय का अर्थ केवल संवाद बोल देना भर नहीं होता। अभिनेता अपने हाव–भाव, शारीरिक चेष्टाओं, वेशभूषा आदि द्वारा संवादों को सजीव बनाता है।

अभिनय कई तरह से किया जाता है : 1) मुँह से बोलकर, 2) शारीरिक चेष्टाओं द्वारा 3) हाव भाव की अभिव्यक्ति द्वारा 4) वेश–भूषा और अलंकरण द्वारा। अभिनेता जिस पात्र का अभिनय कर रहा है उसके संवादों को बोलना वाणी द्वारा अभिनय होता है। किंतु अभिनेता का उद्देश्य किसी संवाद को बोल देना भर नहीं होता। वह संवाद द्वारा पात्र की मनःस्थिति प्रस्तुत करता है। अतः अभिनेता अपनी मुख–मुद्रा और हाव–भाव द्वारा भी पात्र का अनुकरण करता है। वाणी, शरीर, हाव–भाव आदि सभी तरह के अभिनय का प्रभाव तभी पूरा होता है जब अभिनेता पात्र की वेशभूषा तथा आकार–प्रकार का भी अनुकरण करता है। इस तरह वेशभूषा तथा अलंकरण द्वारा अभिनेता–पात्र के रूप का अनुकरण करता है। अभिनय जितना सजीव और स्वाभाविक होगा उतना ही सफल नाट्य प्रदर्शन होगा। सफल अभिनय वह अवस्था है जब दर्शक यह भूल जाए कि वह मंच पर प्रदर्शन देख रहा है या घटना को वास्तविक रूप में घटित होते देख रहा है। मंचीयता की दृष्टि से नाट्य लेखक से कई प्रकार की अपेक्षाएँ की जाती हैं। इनमें कुछ तो बाह्य हैं और कुछ आंतरिक। बाह्य अपेक्षाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है रंग–निर्देश (रंग संकेत)। लेखक रंग–निर्देश द्वारा नाटक में घटना के समय, घटना स्थल की मंच–सज्जा, दृश्य परिवर्तन, पात्रों के प्रवेश–प्रस्थान की सूचना, उनके रूपाकार, वेशभूषा, संवादों के बोलने के ढंग, लहजे आदि की सूचना देता है। यदि नाटक रेडियो के लिए लिखा हो तो ध्वनि संबंधी निर्देश और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। आंतरिक अपेक्षाएँ नाटक के वस्तु विधान, पात्र सृष्टि, भाषा और संवाद शिल्प में निहित होती हैं। नाटक जीवन की अनुकृति होता है। किंतु जीवन की घटनाओं को यथावत प्रस्तुत कर देने मात्र से नाट्य–सृजन पूरा नहीं हो जाता। उनको इस ढंग से प्रस्तुत किया जाना ज़रूरी होता है कि वे दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हों। अतः घटनाओं, स्थितियों और मनःस्थितियों को दृश्यात्मक परिप्रेक्ष्य में उभारना अपेक्षित होता है। दृश्य–विकास ऐसा न हो कि उसे मंच पर प्रस्तुत करना असंभव या अस्वाभाविक लगे। यदि एकांकी में एक ही दृश्य है फिर तो कोई दिक्कत नहीं, किंतु यदि दृश्यों की संख्या एक से अधिक हो तो दृश्य–परिवर्तन के अनुकूल मंच–सज्जा ऐसी हो जिसे आसानी से और कम समय में बदला जा सके। इसी दृष्टि से संकलन–त्रय की अपेक्षा की जाती है। संकलन–त्रय की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। संकलन–त्रय का मतलब है नाटक की कथा में स्थान, काल और कार्य की एकता, यानी एक घटना व्यापार एक स्थान पर एक समय में घटित हों। संकलन–त्रय होने पर एकांकी स्वाभाविक और प्रभावी रहेगा। इसी दृष्टि से बहुत से एकांकीकार एकांकी में दृश्य परिवर्तन को उपयुक्त नहीं समझते और एक ही दृश्य का एकांकी लिखते हैं। हालाँकि संकलन–त्रय का पालन रूढ़ि के रूप में न करके नाटक के कथा विकास की ज़रूरतों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

11.3.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

किसी भी साहित्यिक कृति की रचना के पीछे रचनाकार की कोई न कोई दृष्टि अवश्य निहित रहती है। कृति की रचना मनोरंजन के लिए भी हो सकती है किंतु मात्र मनोरंजन के अलावा भी कृतिकार का कोई न कोई प्रयोजन या उद्देश्य निहित होता है। एकांकी रचना जिस प्रयोजन या उद्देश्य को लेकर होती है या रचना में जो दृष्टि निहित दिखाई देती है वह उसका प्रतिपाद्य कहलाती है। इस तरह एकांकी के प्रतिपाद्य से तात्पर्य है कि एकांकी क्या संदेश प्रस्तुत करता है और उसके पीछे लेखक का आशय क्या है। प्रतिपाद्य के आधार पर ही कृति का महत्त्व निर्धारित होता है। कोई एकांकी यदि शिल्प की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ है किंतु किसी विशिष्ट रचना दृष्टि को उजागर नहीं करता तो केवल शिल्प के आधार पर वह पाठक या दर्शक को पसंद नहीं आ सकता। इसी

तरह यदि प्रतिपाद्य जीवनानुभवों, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की प्रतिष्ठा नहीं करता या उसमें निहित संदेश अत्यंत निकृष्ट और हीन दृष्टि को स्थापित करता है तो नाटक अच्छा नहीं कहला सकता।

नाटक हो या एकांकी उसमें जीवन से संबंधित कोई न कोई उद्देश्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौजूद रहता है क्योंकि उसकी सामाजिक उपयोगिता के लिए यह आवश्यक है। हाँ यह लेखक के ऊपर है कि वह अपने प्रतिपाद्य को किस तरह प्रस्तुत करता है। वह किसी समस्या को सीधे उभार कर समाधान दर्शक के ऊपर छोड़ सकता है, या फिर समाधान भी प्रस्तुत कर सकता है। ऐतिहासिक रचनाओं में प्रतिपाद्य और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्रश्न इस बात का होता है कि ऐतिहासिक प्रसंग की वर्तमान या भावी प्रासंगिकता क्या है? आधुनिक जीवन में वह किस दृष्टि से उपयोगी है? लेखक उसके माध्यम से क्या संदेश प्रस्तुत करना चाहता है? किसी भी मंचीय प्रस्तुति या श्रव्य–दृश्य माध्यम पर प्रस्तुति के प्रतिपाद्य को जानने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ना या प्रस्तुति को ध्यानपूर्वक देखना जरूरी है। ध्यानपूर्वक देखने या पढ़ने के बाद समझ सकेंगे कि उसमें क्या कहा गया है और लेखक उसके माध्यम से क्या संदेश देना चाहता है। लेखक के संदेश भली–भाँति समझ कर ही हम उसके साहित्यिक और सामाजिक महत्त्व का मूल्यांकन कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

3. एकांकी और नाटक में क्या अंतर होता है? चार–पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

4. निम्नलिखित में से एकांकी में क्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है?

   (i) प्रासंगिक कथा

   (ii) कथानक का लक्ष्यों में विभाजन

   (iii) चरम सीमा

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए कोष्ठक में से सही शब्दों को छाँटिए:

   (i) एकांकी में पात्रों की संख्या .... (का कोई बंधन नहीं है/ काफी होती है/कम होती है)।

   (ii) एकांकी में लेखक ....(अपनी ओर से टिप्पणी देता चलता है/पात्रों के वार्तालाप के साथ–साथ रंग–निर्देश भी प्रस्तुत करता है)।

   (iii) संवाद का एकांकी में .... (कोई खास महत्त्व नहीं होता/बहुत अधिक महत्त्व होता है)।

6. संकलन–त्रय से आप क्या समझते हैं? इससे क्या लाभ हैं?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

11.4 हिंदी एकांकी का विकास

हिंदी में एकांकी एक स्वतंत्र और सशक्त विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। यद्यपि संस्कृत में अंक, वीथी, भाण, प्रहसन, गोष्ठी, रासक, हल्लीश आदि एक अंक के रूपकों (नाटकों) का प्रचलन था किंतु वर्तमान हिंदी एकांकी अपने स्वरूप और तकनीक की दृष्टि से पश्चिम के One Act Play की देन है। पश्चिमी साहित्य में मध्यकाल में धार्मिक विषयों की प्रस्तुति के उद्देश्य से रहस्यपरक नाटक और नीतिपरक नाटक हुआ करते थे जिनकी कथा छोटी और पात्रों की संख्या सीमित होती थी। किंतु इनकी रचना साहित्यिक दृष्टि से न होकर धार्मिक दृष्टि से होती थी। अतः इन्हें साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है। पश्चिम में एकांकी वस्तुतः आधुनिक युग की विधा है जिसका जन्म एक विचित्र घटना के साथ हुआ है। पश्चिम में रंगमंच की बड़ी ही जीवंत परंपरा रही है। नाटक देखना काफी लोकप्रिय मनोरंजन था। किंतु नाटकों का अभिनय देखने के लिए सभी दर्शक अक्सर निश्चित समय पर प्रेक्षागृह नहीं पहुँच पाते थे। किंतु जो लोग समय से पहले या ठीक समय पर पहुँच जाते थे उनके मनोरंजन के लिए अक्सर कोई हास्य प्रधान या रोमांचकारी अभिनय प्रस्तुत किया जाता था। मूल नाटक शुरू होने से पहले प्रवेशिका के रूप में प्रस्तुत ये मनोरंजन प्रदर्शन पटोन्नायक या पटोत्थापक (curtain-raiser) कहलाते थे। आजकल सिनेमाघरों में जिस तरह सिनेमा शुरू होने से पहले कुछ समय समाचार (news real) और विज्ञापन आदि दिखाए जाते हैं उसी तरह ये पटोन्नायक दिखाए जाते थे। लंदन में वेस्ट एंड थिएटर में सन 1903 में W.W. Jacob की कहानी Monkey's paw का लुई पार्कर द्वारा नाट्य रूपांतर पटोन्नायक के रूप में दिखाया गया। इस पटोन्नायक प्रस्तुति ने दर्शकों को इतना प्रभावित किया कि वे जिस नाटक को देखने आए थे उसे देखे बगैर ही चले गये। इस तरह 'मंकीज़ पॉ' अपनी प्रभावान्विति की सघनता और तीव्रता में पूर्णकालिक नाटक के समकक्ष रहा। इसी घटना से एक नए नाट्य रूप एकांकी (one act play) का जन्म हुआ। नाटक कंपनी के व्यवस्थापकों ने इस घटना को नाटक पर प्रहार माना और आगे से पटोन्नायकों के प्रदर्शन का बहिष्कार किया। इस तरह पटोन्नायकों का प्रदर्शन समाप्त हो गया। किंतु यहीं से एक नई, जीवंत और विशिष्ट नाट्य विधा की शुरूआत हुई। अब एकांकी नाटक केवल हल्के मनोरंजन या रोमांचकारी घटना के प्रदर्शन का माध्यम नहीं रहे बल्कि इनमें बौद्धिकता, तार्किकता तथा नाटकीय सघनता का समावेश हुआ। तब से एकांकी अत्यंत लोकप्रिय नाट्य विधा बन गया।

एकांकी की लोकप्रियता के पीछे इसका प्रभावान्विति के साथ–साथ अन्य बाहरी कारण भी रहे हैं। औद्योगिक विकास के साथ–साथ मनुष्य का जीवन अधिकाधिक व्यस्त हो गया। ऐसी स्थिति में जहाँ वह लंबे उपन्यासों की तुलना में कहानी पढ़ना अधिक पसंद करता, वहीं बड़े नाटकों को स्थान पर थोड़े समय में ही प्रभाव की सघनता से अपील करने वाले एकांकियों को अधिक पसंद करने लगा। घटना व्यापार की एकाग्रता के कारण एकांकी ने जन रुचि को तेजी से प्रभावित किया। बनार्ड शॉ, गाल्सवर्दी, इब्सन, कॉकमैन, सिंज, लेसिंग, ऑस्कर वाइल्ड, चेखव, गोर्की, इलियट, सार्त्र, जॉन ड्रिंकवाटर, टॉलस्टाय आदि लेखकों ने इसे समर्थ विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। हिंदी में एक अंक के नाटकों का लेखन भारतेन्दु युग में ही शुरू हो गया था। भारतेन्दु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', बालकृष्ण भट्ट का 'बाल विवाह', प्रताप नारायण मिश्र का 'कलि कौतुक' आदि नाटक समस्या के एक पक्ष को केंद्रित करके लिखे गए हैं। किंतु एकांकी को स्वतंत्र नाट्य विधा मानकर नाट्य लेखन का प्रयास अभी शुरू नहीं हुआ था। अंक और दृश्य आदि शब्दों के प्रयोग में भी एकरूपता नहीं थी। हालाँकि प्रभाव की एकता की दृष्टि से एकांकी विधा के पूर्णतया अनुरूप न होने पर भी ये हिंदी एकांकी

की प्रारंभिक अवस्था के द्योतक माने जाते हैं। सन् 1929 में 'प्रसाद' के 'एक घूँट' का प्रकाशन हुआ। एक अंक और एक ही दृश्य, अंतर्द्वंद्व, इकहरे कथानक आदि के कारण यद्यपि इसे हिंदी का प्रथम एकांकी कहा गया है किंतु आधुनिक एकांकी की शुरूआत 'एक घूँट' से नहीं मानी जा सकती। कार्य–व्यापार की सघनता और क्षिप्रता के अभाव में इसे आधुनिक ढंग का एकांकी मानना उपयुक्त नहीं है।

स्वतंत्र साहित्य विधा के रूप में आधुनिक हिंदी एकांकी की शुरूआत डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'बादल की मृत्यु' (1930) के प्रकाशन के साथ हुई। इसमें वर्मा जी ने पश्चिमी एकांकी की टेकनीक को आधार बनाया है। इसके बाद अन्य एकांकी संकलनों 'दस मिनट', 'नहीं का रहस्य', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'चंपक', 'रेशमी टाई' आदि का प्रकाशन हुआ। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक, हास्यपरक एकांकी लिखे हैं। शिल्प की दृष्टि से पाश्चात्य एकांकी कला को अपनाने के साथ ही कथ्य की दृष्टि से वर्मा जी ने भारतीय आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है, हालाँकि उन्होंने प्राचीन भारतीय जीवन–दृष्टि और नाट्य–दृष्टि का रुढ़िबद्ध होकर पालन नहीं किया है। वे अक्सर पात्रों की चारित्रिक विलक्षणता का स्वाभाविक यथार्थ चित्रण करके अंत में उन्हें आदर्शपरक मोड़ दे देते हैं। पश्चिमी दुखांत और विस्मयजनक अंत को भी उन्होंने अपनाया है। अभिनेयता की दृष्टि से वर्मा जी के एकांकी काफी सफल हैं। स्वयं रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण वे नाट्य प्रस्तुति की अपेक्षाओं को समझते थे। कार्य–व्यापार की सक्रियता, घटनाओं का उतार–चढ़ाव, कुतूहलपूर्ण ढंग से चरम–सीमा की सृष्टि, संकलन–त्रय का निर्वाह, पात्रों के मनोभावों और मनःस्थितियों का सहज विकास, भाषा तथा संवादों की सहजता और संक्षिप्तता आदि उनके एकांकियों की विशेषताएँ हैं। भुवनेश्वर प्रसाद का एकांकी संग्रह ''कारवाँ'', 1935 में प्रकाशित हुआ। इनके एकांकियों में सामाजिक जीवन, विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन की विकृतियों, खोखलेपन और कृत्रिमता को उद्घाटित किया गया है। भुवनेश्वर ने जीवन और समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। ऊपरी आदर्श के दिखावे के नीचे छिपे कलुष को वे उघाड़ कर सामने रख देते हैं। उनका व्यंग्य तीखा, कड़वा और प्रत्यक्ष होता है जिससे पाठक या दर्शक तिलमिला उठता है। उन्होंने प्रमुखतया यौन संबंधों, प्रेम विवाह आदि की समस्याओं को उठाया है। वे स्थिति का चित्रण मात्र कर देते हैं। समस्याओं का समाधान देने में उनकी रुचि नहीं है। वे मानते हैं कि समाधान वे ही ढूँढेंगे जो रोगग्रस्त हैं। मनोविश्लेषकों और पश्चिमी नाटककारों – खासतौर पर इब्सन, शॉ, फ्रायड, डी.एच. लारेंस आदि का भुवनेश्वर पर काफी प्रभाव है। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'प्रतिभा का विवाह', 'श्यामा : एक वैवहिक विडंबना', 'एक साम्यहीन साम्यवादी', 'शैतान' 'ऊसर', 'लॉटरी', 'रोमांच–रोमांच' आदि। 'ताँबे के कीड़े' में भुवनेश्वर ने मनुष्य की धनलोलुपता को नग्न रूप में प्रस्तुत किया है। भुवनेश्वर ने 'सिकंदर', 'अकबर', 'आजादी की नींव' आदि ऐतिहासिक एकांकी भी लिखे हैं।

गणेश प्रसाद द्विवेदी ने भी मनोवैज्ञानिक एकांकी लिखे हैं। 'सोहाग बिंदी', 'वह फिर आई थी', 'परदे का अपर पार्श्व' आदि में असफल प्रेम या असंतुष्ट वैवाहिक जीवन आदि की समस्याओं को उठाया गया है। भाषा के प्रति लेखक की जागरूकता ऐसी है कि 'सोहाग बिंदी' में डॉक्टर, बंगला बोलता है, महाराज देहाती बोली और अन्य पात्र आम बोलचाल की हिंदी। नाटक में लंबे समय का घटना विस्तार है जिसकी सूचना रंग–संकेत के माध्यम से दी गई है।

उदयशंकर भट्ट का पहला एकांकी संग्रह 'अभिनव एकांकी नाटक' 1940 में प्रकाशित हुआ। भट्ट जी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक समस्या प्रधान तथा हास्यपरक एकांकी लिखे हैं। उनके एकांकी समाज के उच्च तथा मध्यवर्गीय जीवन की विषमताओं और विकृतियों पर लिखे गए हैं। सामाजिक समस्याओं के प्रति भट्ट जी का

दृष्टिकोण यथार्थपरक है। विषय के प्रस्तुतीकरण में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता है। उनके एकांकियों में 'स्त्री का हृदय', 'सेठ लाभचंद्र', 'दस हजार', 'एक ही कब्र में', 'बड़े आदमी की मृत्यु', 'नकली और असली', 'सत्य का मंदिर', 'आदिम युग', 'समस्या का अंत' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी के एकांकियों की भाषा सहज और प्रवाहपूर्ण तथा संवाद योजना स्वाभाविक है। शिल्प के संबंध में वे कृत्रिम बंधनों को अस्वीकार करते हैं इसीलिए संकलन–त्रय का बंधन भी नहीं मानते। पाश्चात्य एकांकी शिल्प का प्रभाव उन पर है। पात्रों में अंतर्द्वंद्व की सृष्टि करके वे उन्हें स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाते हैं। अधिकतर एकांकियों की समाप्ति अवसाद में होती है जिसका प्रभाव पाठक या दर्शक पर काफी तीखा और गहरा रहता है। गोविंद वल्लभ पंत ने सामाजिक व्यंग्य प्रधान ऐतिहासिक, पौराणिक एकांकी लिखे हैं। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को नग्न रूप में प्रदर्शित न करके मर्यादित रूप में सामने रखा है। जिज्ञासा और कुतूहल की सृष्टि के साथ कथानक विकास करके वे चरम सीमा पर एकांकी का अंत सुखांत या दुखांत रूप में करते हैं। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'अपराध मेरा है', 'साक्षात्कार', 'काला जादू', 'कपड़े का आदमी', 'पर्दा तोड़ क्लब' आदि।

सेठ गोविंददास ने बड़ी संख्या में एकांकी लिखे हैं। जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, एकपात्रीय आदि एकांकी शामिल हैं। एकपात्रीय एकांकियों में पात्र की आंतरिक गुत्थियों का विश्लेषण किया गया है। सामाजिक एकांकियों में मध्यवर्गीय तथा उच्चवर्गीय समाज की कमज़ोरियों और कुरीतियों को प्रस्तुत किया गया है तथा ऐतिहासिक एकांकियों में अतीत की गौरव गाथा है। इनके प्रमुख एकांकियों में 'शाप और वर', 'प्रलय की सृष्टि', 'कंगाल नहीं', 'स्पर्द्धा', 'अधिकार लिप्सा', 'वह मरा क्यों' आदि का नाम लिया जा सकता है। इनकी भाषा सरल और सुबोध है, किंतु उसमें संवाद–सौष्ठव प्रायः नहीं है। कथा विकास में जिज्ञासा और कुतूहल का अभाव है। उनके अधिकांश एकांकियों में नाटकीयता का अभाव है। वे संवादात्मक कथा मात्र हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने यथार्थवाद और बुद्धिवाद को अपनाते हुए शॉ और इब्सन का अनुकरण किया है। उन्होंने सामाजिक समस्यामूलक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है। उनके एकांकी तीन संग्रहों में संकलित हैं–'प्रलय के पंख पर', 'अशोक वन' और 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी'। मिश्र जी ने कल्पना और भावुकता का खुल कर विरोध किया है। उनके अधिकांश एकांकियों में पश्चिमी परंपरा का अतार्किक खंडन और भारतीय परंपरा का अतिरिक्त आग्रह मिलता है। उनके पात्र इतनी बहस और तर्क–वितर्क में उलझ जाते हैं कि एकांकी संवादात्मक कथा बन कर रह जाता है, उसकी अभिनेयता नष्ट हो जाती है।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने एकांकी लेखन 1937 में शुरू किया। उन्होंने आधुनिक भारतीय जीवन के यथार्थ को, उसके संघर्षों, विकृतियों और उलझाव को बड़ी ही ईमानदारी तथा सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज, खासतौर से मध्यवर्गीय समाज के जीवन को उन्होंने बड़ी ही निकटता से देखा और जाना है। उसकी विसंगतियों को प्रस्तुत करने के लिए तीखे व्यंग्य का सहारा लिया है। संपूर्ण परिस्थिति में निहित व्यंग्य को वे पात्रों के मनोविज्ञान के सूक्ष्म चित्रण द्वारा उभारते हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, सांकेतिक, प्रहसन आदि सभी तरह के एकांकी लिखे हैं। उनके प्रमुख एकांकियों में 'पापी', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'अधिकार का रक्षक', 'मैमूना', 'खिड़की', 'सूखी डाली', 'तौलिए', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'अंधी गली', 'साहब को जुकाम है' 'जोंक' आदि का नाम लिया जा सकता है। वे अधिकतर पारिवारिक जीवन की समस्याओं को उठाते हैं। अक्सर वे दो विरोधी विचारधाराओं के संघर्ष की प्रस्तुति करते हैं। भाषा, संवाद, मंचन और प्रभाव की दृष्टि से उनके अधिकांश एकांकी सफल हैं।

जगदीश चंद्र माथुर ने वर्तमान जीवन की गंभीर और सामान्य समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। उनके अधिकतर एकांकी आधुनिक सामाजिक जीवन पर लिखे गए हैं। जीवन की विषमताओं, पारंपारिक रूढ़ियों तथा आधुनिक नये परिवर्तनों की टकराहट से उत्पन्न जटिलता और संघर्ष को उन्होंने उभारा है। कुछ एकांकियों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लिया गया है। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'मेरी बाँसुरी', 'भोर का तारा', 'मकड़ी का जाला', 'कलिंग विजय', 'रीढ़ की हड्डी', 'खंडहर', 'शारदीया', 'भाषण', 'कबूतरखाना'। 'मकड़ी का जाला' में उन्होंने नई शिल्पविधि को अपनाया है। अतीत की घटनाओं तथा अर्द्ध चेतन मनःस्थिति को स्वप्न के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पात्रों के मनोविज्ञान को उभारने में माथुर अक्सर सफल रहते हैं। उनकी भाषा, विषय तथा स्थिति के अनुकूल कहीं कल्पना प्रधान तो कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य प्रधान है। संवाद सीधे, छोटे, बोधगम्य और मर्मस्पर्शी तथा प्रवाहपूर्ण हैं। स्वयं रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण माथुर अपने एकांकियों में रंगमंच के प्रति काफी सजग रहे हैं। उनके रंग–निर्देश पर्याप्त स्पष्ट और उपयोगी होते हैं। पार्श्व संगीत का वे बड़ा ही कलात्मक और प्रतीकात्मक उपयोग करते हैं। जगदीशचंद्र माथुर की एकांकी 'भोर का तारा' का अध्ययन आप इस खंड में करेंगे।

विष्णु प्रभाकर ने रेडियो के लिए लेखन के साथ एकांकी लेखन का आरंभ किया। आदर्श, यथार्थ और स्वाभाविकता का समन्वय करना उनके लेखन की विशेषता है। उन्होंने सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, व्यंग्यात्मक, रेडियो रूपक और बाल एकांकी लिखे हैं। इनमें 'बंधन मुक्त', 'प्रतिशोध', 'रक्त चंदन', 'माँ', 'किरण और कुहासा', 'संस्कार और भावना', 'दो किनारे', 'बीमार', 'शरीर का मोल', 'अशोक', 'झाँसी की रानी', 'सीमा रेखा', 'प्रकाश और परछाई', 'पूर्णाहुति', 'उपचेतना का छल', आदि प्रमुख हैं। पात्रों की मनःस्थिति के चित्रण पर उन्होंने ज़ोर दिया है। आधुनिक जीवन और समाज की आडंबरपूर्ण प्रदर्शन की प्रवृत्तियों को वे व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं तथा पात्रों के स्वभाव के बाहरी आडंबर पर रूढ़िग्रस्तता के पीछे निहित मानवीयता को उजागर करते हैं। गाँधीवाद में आस्था होने के कारण वह पात्रों के हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं। इन एकांकीकारों के अतिरिक्त प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीनारायण लाल, सद्‌गुरुशरण अवस्थी, चंद्रगुप्त, विद्यालंकार, चतुरसेन शास्त्री, धर्मवीर भारती आदि ने अच्छे एकांकी लिखे हैं। रेडियो एकांकीकारों में रामवृक्ष बेनीपुरी, रेवतीशरन शर्मा, हरिश्चंद्र खन्ना, चिरंजीत, विनोद रस्तोगी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न

7. हिंदी का पहला एकांकीकार कौन है और क्यों?

....

....

....

....

8. सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए।

(i) हिंदी में एकांकी एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित है। ( )

(ii) पूर्णकालिक नाटक का अंग है। ( )

(iii) संस्कृत नाटकों से आया है। ( )

(iv) पश्चिम से आया है। ( )

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

11.5 एकांकी के भेद

एकांकी का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है। विषय वस्तु की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से तथा शिल्प की दृष्टि से। विषय वस्तु की दृष्टि से एकांकी आधुनिक जीवन से संबंधित हो सकते हैं या अतीत के जीवन से संबंधित। इन दोनों में से जीवन के विविध क्षेत्रों में से कोई क्षेत्र चुना जा सकता है जैसे सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, पौराणिक, ऐतिहासिक। शैली की दृष्टि से भी एकांकी के भेद हो सकते हैं जैसे–व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक, हास्यपरक। वर्गीकरण का अन्य आधार है शिल्पविधि–अर्थात् लेखक ने एकांकी के शिल्प की किस विधि को अपनाया है। इस दृष्टि से एकांकी के कई वर्ग हो सकते हैं जैसे :

क) एक दृश्यीय एकांकी और बहुदृश्यीय एकांकी

ख) एकपात्रीय एकांकी और बहुपात्रीय एकांकी

ग) गद्य एकांकी और काव्य एकांकी।

एकपात्रीय एकांकी में सारा कार्य व्यापार एक ही पात्र द्वारा संपन्न होता है। इसलिए इसमें स्वगत भाषण (एकालाप) की पद्धति अपनाई जाती है। सेठ गोविंदास ने कई एकपात्रीय एकांकी लिखे हैं। काव्य एकांकी में पद्य का उपयोग किया है। इसमें काव्यात्मकता तथा गीति–तत्व की प्रधानता होती है।

11.6 रेडियो नाटक

रेडियो नाटक आधुनिक विज्ञान के युग की देन है। समय के साथ–साथ अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते हैं और अभिव्यक्ति माध्यमों में बदलाव से साहित्यिक अभिव्यक्ति में बदलाव आता है। नाटक को दृश्य काव्य अथवा देखने के लिए लिखी गई रचना माना जाता है। किंतु रेडियो के आविष्कार ने नाटक को श्रव्य भी बना दिया। रेडियो नाटक का माध्यम ध्वनि है इसलिए इसे ध्वनि एकांकी या ध्वनि नाटक या ध्वनि रूपक भी कहा जाता है। माध्यम के अनुरूप रेडियो नाटक की शिल्पविधि और टेकनीक भी रंगमंचीय नाटक से कई दृष्टियों से भिन्न होती है। मंच पर प्रदर्शन की कई तरह की ऐसी सीमाएँ होती हैं, जो रेडियो प्रस्तुति में सीमाएँ नहीं रहतीं। ध्वनि प्रभाव द्वारा उनकी सफल प्रस्तुति की जा सकती है। उदाहरण के लिए, गतिशील दृश्यों जैसे रेल, जहाज आदि का चलना, फैक्ट्री आदि में काम की आवाज, प्रकृति के विविध रूपों, समुद्र की लहरों की आवाज, समुद्री तूफान की आवाज, मेघ, गर्जन, वर्षा, पशु–पक्षियों आदि का पात्र के रूप में प्रवेश आदि आसानी से प्रस्तुत हो सकता है। इसी तरह समय या स्थान का अंतराल यहाँ दिखाया जा सकता है। संकलन–त्रय की यहाँ कोई बंदिश नहीं होती। दृश्य परिवर्तन की यहाँ बड़ी सुविधा होती है। इसके लिए पार्श्व संगीत की सहायता ली जाती है। पुरानी बीती घटनाओं को फ्लैश बैक पद्धति से प्रस्तुत करने की सुविधा भी रेडियो नाटक में होती है। मनोवैज्ञानिक स्थितियों की प्रस्तुति भी रेडियो नाटक में सफलतापूर्वक हो सकती है। स्वगत कथन रंगमंच पर बहुत स्वाभाविक नहीं लगते किंतु श्रव्य रूप में वे काफी स्वाभाविक लग सकते हैं। रेडियो नाटक वस्तुतः संकेत की कला है–कुछ शब्दों, ध्वनि प्रभावों या संगीत के माध्यम से संकेत दे कर श्रोता की कल्पना शक्ति को जगाया जाता है और श्रोता की कल्पना में बिंब या भाव चित्र उपस्थित कर दिया जाता है। विविध स्थितियों और भावों की अभिव्यक्ति के लिए विविध प्रकार का पार्श्व संगीत प्रस्तुत करके सफल प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इस तरह रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक की कई तरह की सीमाओं से मुक्त होता है। वह रंगमंचीय नाटक की तुलना में काफी स्वच्छन्द होता है।

दूसरी ओर रेडियो नाटक के शिल्प की अपनी कुछ विशिष्टताएँ और जटिलताएँ भी होती हैं। शारीरिक, वाणीपरक, भावनात्मक, और दृश्यविधान तथा वेशभूषापरक अभिनय (आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य) में से रेडियो नाटक में वाणी का अभिनय ही प्रमुख होता है। रेडियो नाटक का रंगमंच उसके शब्दों और ध्वनि प्रभावों में ही निहित होता है। पात्रों की रंगमंच पर उपस्थिति, उनके क्रियाकलाप, उनके प्रवेश–प्रस्थान आदि की जानकारी रंगमंच के दर्शक को स्वतः मिलती रहती है किंतु रेडियो पर इन सबकी जानकारी श्रोता को दिलाते रहना पड़ता है। इसी तरह पात्र संख्या यहाँ काफी सीमित होती है। उनके स्वर, लहजे, भाषा, भाव आदि में कई स्तरों पर पृथकता अपेक्षित होती है। रेडियो नाटक में वातावरण की सृष्टि ध्वनि–प्रभावों से होती है। दृश्यावली आदि की सुविधा न होने के कारण ध्वनि प्रभावों को जितनी कल्पनाशीलता और इंद्रिय ग्राह्य सूक्ष्मता से अपनाया जाएगा उतने ही वे सफल हो सकेंगे। इसलिए यहाँ विविध प्रकार के संगीत प्रभाव का प्रयोग होता है। संवाद नाटक की आत्मा होते हैं किंतु रेडियो नाटक का आधार वाचिक अभिनय होने के कारण यहाँ संवाद और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। भावाभिव्यक्ति का सारा दायित्व भाषा को वहन करना पड़ता है। अतः भाषा जितनी सहज, सुबोध, मार्मिक, प्रभावपूर्ण और संप्रेषणीय होगी नाटक उतना ही सफल होगा। संवाद जितने छोटे, तार्किक, संवेदनशील होंगे उतना ही उनका प्रभाव अधिक होगा।

11.6.1 रेडियो नाटक और एकांकी

प्रश्न यह उठता है कि रेडियो नाटकों को एकांकियों की श्रेणी में रखा जाए अथवा नहीं। रेडियो नाटक अक्सर 10–15 मिनट की अवधि से लेकर एक घंटे तक की अवधि के लिए होते हैं। अंक–संख्या का प्रश्न रेडियो में उठता ही नहीं। आवश्यकता के अनुसार दृश्य होते हैं जिनका परिवर्तन संगीत–ध्वनि के माध्यम से किया जाता है। इसे अंतराल संगीत कहते हैं। कभी–कभी पूरा रेडियो नाटक एक ही दृश्य का भी होता है। कभी–कभी पूर्णकालिक नाटकों या कहानियों और उपन्यासों के रेडियो रूपांतर भी प्रस्तुत किए जाते हैं। इन्हें मंचीय एकांकी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। रंगमंच और रेडियो कला की दृष्टि से दो अलग चीजें हैं। माध्यम में अंतर होने के कारण दोनों के स्वरूप और संरचना में अंतर होता है। रेडियो नाटक में अंक परिवर्तन आदि की चर्चा नहीं होती इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्हें ध्वनि–एकांकी कहा है। प्रश्न यह उठ सकता है कि जब एकांकी और रेडियो नाटक अलग–अलग चीजें हैं तो एकांकी के साथ इनकी चर्चा क्यों की जा रही है। इस संदर्भ में पहली बात तो यह है कि दोनों ही आधुनिक युग में बहुत लोकप्रिय और सशक्त माध्यम सिद्ध हुए हैं। रंगमंचीय एकांकी तथा रेडियो नाटकों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। अधिकतर एकांकीकारों ने दोनों तरह की विधाओं में लेखन किया है, जैसे उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर आदि के एकांकी रेडियो पर प्रसारित हुए हैं। दूसरी ओर रेडियो के लिए लिखित नाटकों को दृश्य रूप में परिणत करके एकांकी के रूप में भी प्रकाशित कराया गया है। विष्णु प्रभाकर का 'संस्कार और भावना', रामकुमार वर्मा का 'कौमुदी महोत्सव' ऐसे ही एकांकी हैं। हिंदी में प्रकाशित नाट्य–साहित्य में एकांकी नाटक और रेडियो नाटक का स्पष्ट भेद नहीं हुआ है। अतः हिंदी एकांकी का विवेचन रेडियो नाटक पर विचार किये बगैर पूरा नहीं होता।

11.6.2 रेडियो नाटक के प्रकार

रेडियो पर होने वाली नाट्य प्रस्तुतियों के कई रूप देखने में आते हैं। इनमें प्रमुख हैं–रेडियो नाटक, रेडियो रूपक, रेडियो रूपांतर, संगीत रूपक, प्रहसन, झलकी, रेडियो फीचर, मोनोलॉग आदि। ये भेद शिल्प की दृष्टि से हैं। विषय की दृष्टि से भी भेद हो सकते हैं। जैसे–सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, हास्यपरक, व्यंग्य प्रधान आदि।

प्रमुख रेडियो नाटककारों में कृष्णचंद्र, चंद्रकिशोर जैन, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, रेवतीशरन शर्मा, हरिशचंद्र खन्ना, प्रभाकर माचवे, चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, विश्वंभर मानव, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, भगवतशरण उपाध्याय, हंसकुमार तिवारी, सत्येंद्र शरद आदि का नाम लिया जा सकता है।

बोध प्रश्न

9. एकांकी में भेद किस–किस आधार पर किए जा सकते हैं।

....

....

10. रेडियो नाटक तथा एकांकी में क्या अंतर है?

....

....

....

....

11.7 कथा मंचन और कहानी का रंगमंच

पिछले करीब दो–ढाई दशकों से यानी अस्सी के दशक से कथा साहित्य– कहानी और उपन्यास– की नाट्य प्रस्तुति हिंदी रंगमंच की एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि रही है। इस दिशा में दो तरह की स्थितियाँ रही हैं – (1) किसी रचना यानी उपन्यास या कहानी का नाट्य रूपांतरण कर उसकी मंचीय प्रस्तुति की जाती है। (2) रचना में कोई परिवर्तन किए बगैर उसको यथावत रूप में ही मंच प्रस्तुति की जाती है। विष्णु प्रभाकर द्वारा 'गोदान' का 'होरी' नाम से नाट्य रूपांतर अथवा मन्नू भंडारी का अपने उपन्यास 'महाभोज' का स्वयं नाट्य रूपांतर पहली श्रेणी में आते हैं जबकि निर्मल वर्मा की कहानियाँ –'तीन एकांत' का मंचन दूसरी श्रेणी में। दोनों ही प्रकार की प्रस्तुतियाँ हिंदी रंगमंच की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं।

वैसे कथा मंचन पुराने समय से हमारी नाट्य परंपरा का अंग रहा है 'रासलीला' 'आंकिया नाट' 'यक्षगान' 'कथकली' आदि लोक नाट्य रूपों में रामकथा या कृष्णकथा का कोई एक अंश एक बार में प्रस्तुत किया जाता है। फिल्मों के आ जाने के बाद अनेक कहानियों, उपन्यासों, लोक कथाओं को दृश्य रूप प्रदान किया जाता रहा है और टेलीविज़न ने पुनः इस दृश्यात्मक रूपांतर को विस्तार दिया है। किंतु आज कथामंचन अपने आप में एक सशक्त नाट्य–शैली के रूप में खड़ा है। उपन्यास और कहानी का नाट्य रूपांतर और उसकी यथावत मंचीय प्रस्तुति की प्रक्रिया दोनों ही स्थिति में उसका माध्यम बदलता है। यह बदलाव न केवल लेखकीय पक्ष अथवा प्रस्तोता के पक्ष की दृष्टि बल्कि गृहीता के पक्ष की दृष्टि से भी होता है। जिस तरह रेडियो नाटक के जन्म से नाटक देखने की बजाय सुनने की चीज़ हो गया और नाट्य प्रस्तुति में ध्वनि पक्ष ही प्रमुख हो गया उसी तरह उपन्यास और कहानियाँ पढ़ी नहीं देखी जाती हैं। नाट्य रूपांतर के माध्यम से वे सजीव होकर साकार दिखाई देती हैं विवरण की जगह सक्रियता ले ली जाती है। पाठक की दर्शक में बदलने की इस प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ होती है कथा में निहित नाटकीयता की तलाश; अर्थात् स्थितियों, घटनाओं, भावाभिव्यक्तियों, मनः स्थितियों के उन बिंदुओं और पहलुओं की तलाश जो दर्शक के सामने प्रत्यक्ष होकर उसे प्रभावित कर सकें। कथा मंचन की इस पूरी प्रक्रिया में रूपांतरकार, निर्देशक और अभिनेतागण की पूरी–पूरी साझीदारी होती है। दोनों या

तीनों मिलकर प्रस्तुति को संभव और सफल बनाते हैं। मन्नू भंडारी का 'महाभोज' भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बाजार में', प्रेमचंद के 'गोदान' 'रंगभूमि' और अनेक कहानियाँ, हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट' की आत्मकथा', मनोहर श्याम जोशी का 'कुरु–कुरु स्वाहा', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', श्री लाल शुक्ल का 'रागदरबारी', अमृत लाल नागर का 'सुहाग के नूपुर' आदि अनेक उपन्यासों की नाट्य रूपांतर प्रस्तुतियों ने हिन्दी रंगमंच को वैविध्यपरक बनाया। तभी रंगमंच की दुनिया में एक नई घटना घटी। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक देवेंद्र राज अंकुर ने कहानी में कोई भी हेर फेर किए बगैर उसकी यथावत् रंग प्रस्तुति कर हिंदी रंगमंच को नया आयाम दिया। कहानी के विवरणात्मक अंशों के लिए नैरेटर का बहुत सशक्त इस्तेमाल करते हुए दृश्य बिम्बों के माध्यम से कहानी को साकार करते हुए 'कहानी का रंगमंच' नामक नई प्रस्तुति शैली विकसित की। छात्र अभिनेताओं से कथा में निहित दृश्यात्मकता को, नाटकीयता को तलाशने और अपने अभिनय द्वारा रूपायित करने की एक सशक्त पद्धति के माध्यम से उन्होंने प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, गोविंद मिश्र आदि अनेक कहानीकारों की कहानियाँ सजीव घटना के रूप में दर्शक तक पहुँचीं, तो रंगमंच की उर्वरता की नयी संभावनाएँ प्रकट हुईं और पठित साहित्य से रंगमंच के रिश्ते के नए पहलू उजागर हुए। कथा मंचन ने यह सिद्ध कर दिया कि नाटक के लिए अब तक अनिवार्य माने जाने वाले पात्रों की बातचीत और कार्यव्यापार के अलावा और भी कुछ है जो रचना को दृश्यात्मक रूप में सफल और सजीव बना सकता है। संवादों की अनिवार्यता के अलावा वर्णन अथवा नैरेशन (वर्णन) भी अभिनय का एक रूप हो सकता है यह बात स्थापित हुई। कहानी के रंगमंच ने वस्तुतः कई तरह के रूढ़ विश्वासों से हिंदी रंगमंच को मुक्त किया। एक तरफ तो मंचसज्जा के बहुत से तामझाम से हटकर अभिनेता के शरीर को केंद्र में स्थापित किया और अभिनय, मुख–मुद्राओं, शारीरिक चेष्टाओं से उत्पन्न गति, लय और अभिव्यक्ति से वह सब कुछ प्रस्तुत कर दिया जिसे अन्य साधनों से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता था। दूसरी तरफ नाटक को अन्य सभी साहित्यिक विधाओं – कथा साहित्य, कविता, आलेख, जीवनी से जीवंत संवाद की स्थिति में ला दिया।

विविध साहत्यिक विधाओं का मंचन :

मंचन की प्रविधि, शैली और स्वरूप में पिछले कुछ दशकों से जो नया बदलाव आया है उसने हर सृजनात्मक विधा में मौजूद दृश्य तत्व को उद्घाटित करने में अद्भुत सफलता पाई है। कहना चाहिए कि सर्जनात्मकता के भीतर नाट्यात्मकता की तलाश करते हुए कविता, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण सभी को बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से मंचित कर दर्शक को रचना के भीतर प्रवेश पाना सुगम बना दिया है। एक समय था जब यह खोजा जाता था कि किसी नाटक में मंचीयता के तत्व मौजूद हैं या नहीं और कहा जाता था कि हिंदी में अभिनय नाटकों की घोर कमी है। नाटक क्लासिक श्रेणी के तो हैं किंतु पठनीय हैं मंचीय नहीं। किंतु जब देवेंद्रराज अंकुर, राजिन्दरनाथ तथा अन्य निर्देशकों ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली के छात्रों को विभिन्न साहित्यिक रचनाओं में कोई भी पंक्ति बदले बगैर ज्यों की त्यों दृश्य रूप में उतार देने की कला में प्रवीण किया तो दृश्य माध्यमों की दुनिया ही बदल गई। कहानी शिवप्रसाद सिंह की हो या निर्मल वर्मा की, प्रेमचंद की हो या प्रसाद की, जैनेंद्र की हो या रवीन्द्रनाथ की, मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' हो या रमेशचन्द्र शाह की कविता, 'त्याग–पत्र' उपन्यास हो या 'बाणभट्ट की आत्मकथा', इनका नाट्य रूपांतर किए बगैर रचना को ज्यों का त्यों मंचन कर जीवंत बनाने की इस कला ने सिनेमा, टी.वी. पर उपन्यासों की प्रस्तुति को पीछे छोड़ दिया। इस शैली ने कथावाचन यानी किस्सागो से स्वर के उतार–चढ़ाव–लहजे द्वारा दर्शकों की कल्पना में बिम्ब जगाना सीखा और उसका सशक्त जीवंत प्रयोग

मंचीय प्रस्तुतियों के साथ किया। रचनाओं में मौजूद संवादों का पात्रों द्वारा और शेष विवरण को वाचक द्वारा प्रस्तुत कराते हुए पाठ्य को दृश्य बनाने का यह विधान मुख्यतः देहभाषा, प्रकाश व्यवस्था और ध्वनि प्रभावों पर केन्द्रित होता है। दृश्य सज्जा और स्टेज प्रॉपर्टी लगभग नहीं के बराबर या प्रतीकात्मक या न्यूनतम होती है। आंगिक, वाचिक, सात्विक अभिनय विधान से लिखित शब्द को जीवंत बनाते हुए संप्रेषण व्यापार सफल बनाया जाता है।

11.8 नुक्कड़ नाटक

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि नुक्कड़ नाटक के लिए किसी खास रंगमंच या ऑडिटोरियम की जरूरत नहीं। यह गली–मोहल्ले के नुक्कड़, सड़क, चौराहे कहीं पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। नुक्कड़ नाटक शब्द को अंग्रेजी के स्ट्रीट–प्ले का हिंदी पर्याय मात्र न समझना चाहिए क्योंकि हमारी लोक नाट्य परंपरा भवई, तमाशा, नौटंकी, भाँड़, बहरूपिया आदि ही नहीं यहाँ तक कि रामलीला और रासलीला की प्रस्तुतियाँ भी अक्सर गली–मोहल्ले के नुक्कड़ या चौक में होती रही हैं। हालाँकि आज हम जिसे नुक्कड़ नाटक नाम से जानते हैं वह पिछली शताब्दी के छठे–सातवें दशकों में एक विशेष रंग–आंदोलन के रूप में उभरा। स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार और मोहभंग स्थितियों से पैदा आक्रोश और अवसाद के कारण सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन बदलाव की चेतना जगाने के माध्यम के रूप में नुक्कड़ नाटक का आरंभ हुआ। 'जन नाट्य मंच' की तरह एक जन आंदोलन के रूप में नुक्कड़ नाटक हमारे सामने आया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' हिंदी का पहला नुक्कड़ नाटक माना जाता है। राजनेता, अफसर, पुलिस और दबंग वर्ग सभी मिल कर कितनी सरलता से गरीब आदमी का शोषण करके, बिना किसी अपराध बोध या नैतिक पश्चाताप के पनपते जाते हैं। इस तथ्य को गांधी जी की बकरी के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले इस नाटक को बिना किसी मंचीय सज्जा अथवा औपचारिकता के इतनी ज्यादा सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया कि यह अपने आप में एक मिसाल बन गया। इसकी अनेकानेक प्रस्तुतियों की लोकप्रियता ने जागरूकता और जन शिक्षा में नाटक की अहम् भूमिका को स्वतः सिद्ध कर दिया। अपने समय की माँग के रूप में उभरे नुक्कड़ नाटक ने नाटक और रंगमंच के पारंपरिक ढाँचे को, मान्य रूढ़ियों और अवधारणाओं को तोड़ते हुए एक रंग–क्रांति उत्पन्न कर दी जिसके चलते इसे एक अलग नाट्य रूप की पहचान मिली। पूरे देश में नुक्कड़ मंच और उसकी संस्थाएँ तेजी से उभरीं और आशु नाटक के रूप में नुक्कड़ नाटक ने जन जीवन की ज्वलंत समस्याओं, आम आदमी के साथ हो रहे अन्याय और छल प्रपंच को उघाड़ते हुए हमें उन पर सोचने और समाधान खोजने को मजबूर कर दिया। भूख, गरीबी, मजदूरों का शोषण, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, दहेज, बेरोजगारी, स्त्री–शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य, दलितों पर अत्याचार आदि हमारे सामने के ज्वलंत प्रश्नों पर तात्कालिक रूप से तैयार किए गए छोटे छोटे नाटकों ने सामाजिक जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रगतिशील नाटक संगठन इप्टा (भारतीय जन नाट्य संघ) और अन्य जनवादी नाट्य समूहों ने भी नुक्कड़ मंच को सफल और सशक्त बनाने में अहम् भूमिका निभायी। नुक्कड़ नाटक की विशेषता यह है कि यह हर तरह से लचीला नाट्य रूप है। इसकी लिखित स्क्रिप्ट होना जरूरी नहीं, पात्र को अपनी भूमिका जाननी है उसे प्रस्तुत करने के लिए जरूरत पड़ने पर वह संवादों में अपने ढंग से थोड़ी बहुत हेर–फेर कर सकता है लेकिन कथ्य का नितांत यथार्थ होना जरूरी है; इतना यथार्थ कि देखने वालों को लगे कि बिना किसी औपचारिकता के एक असलियत का सामना कर रहे हैं एक ऐसी

असलियत जो उन्हें चुभती रही है और जिसमें परिवर्तन की जरूरत वे महसूस कर रहे हैं। घंटे–आधा घंटे में जानी–पहचानी स्थितियों, घटनाओं के किसी पक्ष विशेष को बोलचाल की भाषा की तल्खी और प्रखरता के साथ, प्रस्तुत करने वाले नुक्कड़ नाटक के कलाकार प्रस्तुति से पहले दर्शक वर्ग का अंग होते हैं और प्रस्तुति के बाद भी। प्रस्तुति के समय वे दर्शकों की भीड़ के बीच में अभिनय करते हैं यानी चारों ओर दायरा बना कर खड़े दर्शकों के लिए उन्हें प्रस्तुति करनी होती है जबकि रंगमंच के अभिनेता केवल अपने सामने बैठे दर्शकों के लिए अभिनय करते हैं। अभिनेताओं की गति, समूहन और संचालन से उन सबको यह बोध कराना होता है कि अभिनय उनके सामने हो रहा है। दर्शक और अभिनेता के बीच यहाँ दूरी नहीं होती जबकि मंच पर होने वाली प्रस्तुतियों में दोनों के बीच औपचारिक दूरी तो होती ही है। प्रकाश–व्यवस्था के माध्यम से यह दूरी और अधिक प्रतीत कराई जाती है। प्रेक्षागृह में रंगमंच पर जरूरत के अनुसार अधिक प्रकाश, मध्यम प्रकाश अथवा अँधेरा रखा जाता है; प्रकाश को घटाया. बढ़ाया जाता है और दर्शक दीर्घा में बहुत मंद रोशनी कभी–कभी मंच के किसी हिस्से विशेष पर प्रकाश रखते हुए अन्य हिस्सों को अँधेरे में रखा जाता है। लेकिन नुक्कड़ नाटक में इसकी जरूरत नहीं। नुक्कड़ नाटक एक प्रभावपूर्ण नाट्य रूप है। इसे प्रस्तुत करने वाले सामाजिक जागरूकता और सुधार के लिए उपयुक्त विषय चुनकर नाट्य प्रस्तुति करते है। ज़रूरी नहीं कि ये सभी नाटक छपे हों। रंग–सज्जा, पात्रों की विशेष वेश–भूषा आदि की कमी नुक्कड़ नाटक में गुंजाइश ही नहीं होती।

नुक्कड़ नाटक के क्षेत्र में सफदर हाशमी, माला हाशमी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सफदर हाशमी ने 1973 में दिल्ली में जन नाट्य मंच (जनम) की शुरूआत की जिसके माध्यम से 'बकरी', 'भारत भाग्य विधाता' जैसे नाटक प्रस्तुत किए जो अपने लचीलेपन के कारण गली मोहल्ले–चौराहे के अलावा प्रेक्षागृह में भी सफल और प्रभावकारी थे। फिर जन–नाट्य मंच ने सामूहिक रूप से नुक्कड़ नाटक तैयार करके प्रस्तुत करने का सिलसिला शुरू किया और उसे अन्य पात्रों के सहयोग से प्रस्तुत किया। हर अभिनेता अपनी भूमिका स्वयं रचता है। 1978 में इस प्रक्रिया में तैयार 'मशीन' नुक्कड़ नाटक सफदर हाशमी के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया। यह नाटक काफी प्रसिद्ध हुआ। नुक्कड़ नाटक आंदोलन का देश भर में विस्तार हुआ है। जनम द्वारा प्रस्तुत नुक्कड़ नाटकों में 'मशीन', 'औरत', 'हल्ला बोल', 'नई बिरादरी', 'मुझे बोलने दो' आदि का नाम लिया जा सकता है।

अपनी सारी विशिष्टता और प्रभावपूर्णता के बावजूद नुक्कड़ नाटक ठहराव का शिकार हुआ। इसकी विषयगत और प्रस्तुतिगत पुनरावृत्तियों ने एकरसता पैदा की। वही कथा, वैसी ही प्रस्तुति, वही पुलिस दरोगा, हत्यारा, जल्लाद, नेता, मंत्री, जमींदार, मिल मालिक, स्त्री, किसान मज़दूर एक तरह की रूढ़ नाट्य संरचना में आते रहे। मदारी–जमूरे के रूपक में नारेबाजी, प्रचार और जुलूस एक सतही समसामयिकता से आगे मानवीय संवेदना तक नहीं पहुँच सके। इसी बीच भूमंडलीकरण के दौर में राजनीतिक, सामजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक बदलाव ने नुक्कड़ नाटक की जनाक्रोश और व्यवस्था विरोधी शक्ति में सेंध लगाई। शासन–तंत्र, मीडिया तथा बाजार ने उसे अपने उपयोग के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया। फिर भी आस्थावान प्रयासरत वर्ग इसे सामाजिक जागरण के उद्देश्य से सक्रिय रखे हुए हैं।

11.9 नाट्य–रूपांतर

पिछले भाग में कथा मंचन के विषय में पढ़ते समय आपने देखा कि कहानी और उपन्यास की मंच प्रस्तुति दो तरह से होती है – (1) रचना को यथावत मंचित करके (2) उसका नाट्य–रूपांतर करके। नाट्य–रूपांतर की प्रक्रिया में उसके विवरणों को

अलग निकाल दिया जाता है। उनके स्थान पर अपेक्षित संवादों द्वारा सूचना को दृश्य बनाया जाता है। कथा की समयगत और स्थानगत दूरी को भी नाटकीय युक्तियों द्वारा दृश्य–सूच्य बनाया जाता है। इस तरह रचना को एक विधा से दूसरी विधा में ढाल दिया जाता है। नाट्य–रूपांतर की प्रक्रिया एक तकनीकी प्रक्रिया है जो रूपांतरकार से नाटकीयता और दृश्यात्मकता की सूझबूझ की अपेक्षा रखती है। कहानियों, उपन्यासों के अलावा कविता, आलेख, संस्मरण, जीवनी आदि की भी नाट्य प्रस्तुतियाँ होने लगी हैं। मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में', श्रीकांत वर्मा की 'मगध', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'कुआनो नदी', भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' आदि की प्रस्तुतियों ने हिंदी रंगमंच को नई दिशा दी है। इसके अलावा किसी रचनाकार की सुप्रसिद्ध रचनाओं अथवा महापुरुष के सुप्रसिद्ध जीवन प्रसंगों के अंशों से कथ्य जोड़ते हुए आलेख तैयार कर एकल अभिनय ने रंग प्रस्तुति को नया आयाम दिया है। निराला की जन्मशती के अवसर पर निराला के जीवन प्रसंगों और उनकी रचनाओं को संबद्ध करते हुए 'महाप्राण निराला' की प्रस्तुति एक अभूतपूर्व अनुभव बन गई थी।

बोध प्रश्न

11. हिंदी के सात प्रमुख एकांकीकारों के नाम बताइए।

....

....

अभ्यास

1. भुवनेश्वर के एकांकियों की क्या विशेषताएँ हैं? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2. कहानी के रंगमंच से आप क्या समझते हैं?

....

....

3. नुक्कड़ नाटक पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

11.10 सारांश

इस इकाई में आपने हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ा है। अब आप साहित्य की दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप के बारे में जानते हैं। नाटक और एकांकी के संबंध और दोनों के बीच अंतर की जानकारी भी आपको मिल गई है। अब आप एकांकी के रचनागत वैशिष्ट्य की चर्चा कर सकते हैं तथा हिंदी एकांकी के विकास के बारे में भी बता सकते हैं। एकांकी के विभिन्न भेदों के बारे में भी आपने पढ़ा है और रेडियो

नाटक की सशक्त विधा से भी आपका परिचय हो गया है। इसके संरचनागत वैशिष्ट्य को भी आप अच्छी तरह पहचान गए हैं।

11.11 शब्दावली

निर्देशक : नाटक की प्रस्तुति कराने वाला व्यक्ति, जो अभिनेताओं तथा अन्य प्रस्तुति, सहयोगियों को दिशा–निर्देश देता है तथा पूरी व्यवस्था देखता है।

रंग सज्जाकार : नाटक में रंगमंच की सजावट करने वाला व्यक्ति।

कार्यावस्थाएँ : संस्कृत नाटक में कार्य व्यापार के विकास का पाँच अवस्थाओं की चर्चा की गई है–आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

संधियाँ : संस्कृत नाटक में कार्यावस्थाओं का अर्थ प्रकृतियों से जोड़ने के लिए संधियाँ होती थीं।

अर्थ प्रकृतियाँ : फल प्राप्ति के उद्देश्य से किए गए कार्य की दृष्टि से कथावस्तु को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है–बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य।

अपरिहार्य : अनिवार्य, अवश्यंभावी।

रंग निर्देश : नाटक की प्रस्तुति की दृष्टि से लेखक द्वारा दिए गए स्थान, समय, मंच–सज्जा, पात्रों की वेशभूषा, आवागमन आदि के संबंध में निर्देश।

प्रभावान्विति : प्रभाव की एकता।

प्रेक्षागृह : नाट्यशाला, थियेटर।

नाटकीयता : नाट्य प्रस्तुति के रूप में प्रभावपूर्ण होने की क्षमता।

आडंबर : अनावश्यक दिखावा।

एकालाप : एक ही पात्र का लंबा भाषण।

किस्सागो : कहानी सुनाने वाला।

11.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1. नाटक एक दृश्य माध्यम है जिसकी प्रस्तृति अभिनय के द्वारा होती है जबकि कहानी और उपन्यास का आस्वादन पढ़कर या सुनकर लिया जाता है।
2. i) अभिनेता, ii) रंगमंच, iii) नाटक, iv) दर्शक
3. देखें भाग 11.3
4. iii)
5. i) कम होती है,
   ii) पात्रों के वार्तालाप के साथ–साथ रंग निर्देश भी प्रस्तुत करता है।
   iii) बहुत अधिक महत्त्व होता है।
6. देखें भाग 11.3.1 का संकलन–त्रय अंश।

7. वैसे तो हिन्दी में एक अंक के नाटक भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद ने भी लिखे, लेकिन पश्चिम एकांकी तकनीक की तरह का पहला एकांकी नाटक रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' है जिसका रचना काल 1930 है।

8. i) (✓) ii) (×) iii) (×) iv) (✓)

9. देखें भाग 11.5

10. देखें भाग 11.6.1

11. देखें भाग 11.4

अभ्यास

1. देखें भाग 11.4

2. देखें भाग 11.7

3. देखें भाग 11.8

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12: विष्णु प्रभाकर और उनका साहित्य

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 विष्णु प्रभाकर का परिचय

12.3 विष्णु प्रभाकर का साहित्य

- 12.3.1 नाटक
- 12.3.2 एकांकी
- 12.3.3 अन्य साहित्य

12.4 विष्णु प्रभाकर की रचना दृष्टि

12.5 विष्णु प्रभाकर के साहित्य की विशेषताएँ

12.6 सारांश

12.7 उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

स्नातक प्रतिष्ठा हिंदी के पाठ्यक्रम में विष्णु प्रभाकर की एकांकी 'और वह जा न सकी' को सम्मिलित किया गया है। इनका विस्तृत विवेचन इकाई 12 एवं 13 में किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- विष्णु प्रभाकर और उनके साहित्य (विशेष रूप से नाटक तथा एकांकी)के कई पक्षों को समझ सकेंगे;
- एक लेखक का व्यक्तित्व केवल उनकी रचनाओं को पढ़कर ही नहीं, अपितु उनके समस्त कार्यों और व्यवहारों से जाना जाता है। इस पाठ के द्वारा आप विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के बारे में जान सकेंगे;
- विष्णु प्रभाकर के साहित्य और उनकी दृष्टि को जान सकेंगे;
- साथ ही आप हिंदी साहित्य जगत में विष्णु प्रभाकर के विशिष्ट अवदान को भी देख सकेंगे और साहित्येतर क्षेत्रों में उनके योगदान को समझ सकेंगे;
- साहित्य के प्रति विष्णु प्रभाकर के दृष्टिकोण का भी साक्षात्कार कर सकेंगे; और
- विष्णु प्रभाकर रचना–प्रक्रिया और उनकी रचनाओं पर उसके प्रभाव भी अवगत हो सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

विष्णु प्रभाकर हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जिनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। किसी की रचना को समझने के लिए रचनाकार के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक होता है। लेखक के जीवन और उनके जीवन की पारिस्थितिकी को भी जानना ज़रूरी होता है, ताकि लेखक की दृष्टि और दृष्टिकोण के संबंध में जानकारी मिल सके और उनकी रचनाओं को आसानी से समझा जा सके। यह सच है कि मनुष्य परिस्थिति की अग्नि में तपकर ही निखरता है। विष्णु प्रभाकर भी संघर्ष और कठिनाइयों के ताप के

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बीच अपने व्यक्तित्व का परिमार्जन करके अपनी रचनाशीलता में लगे रहे और साहित्य की कई विधाओं में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वे आकाशवाणी से भी जुड़े रहे और उनके नाटक और एकांकी रंगमंच की दृष्टि से भी काफ़ी सफल रहे हैं।

12.2 विष्णु प्रभाकर का परिचय

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के मीरापुर गाँव में हुआ। उनके पिता दुर्गा प्रसाद जी धार्मिक विचारों से प्रेरित थे और उनकी माता महादेवी जी पढ़ी–लिखी और आधुनिक विचारों वाली महिला थीं। उन्होंने पर्दा प्रथा का विरोध भी किया था। इनका आरंभिक नाम विष्णु दयाल था। वस्तुतः उनके नाम की भी एक कहानी है। इनके बड़े भाई का नाम ब्रह्मा, इनका नाम विष्णु और इनके छोटे भाई का नाम महेश रखा गया। प्यार से लोग इन्हें विष्णु दयाल या विष्णु सिंह कहकर पुकारते थे। प्राइमरी स्कूल में उनका यही नाम लिखाया गया लेकिन जब वे अपने आर्य समाजी मामा जी के पास हिसार पढ़ाई के लिए भेजे गए तो आर्यसमाजी स्कूल में नाम लिखते समय अध्यापक ने उनका 'वर्ण' पूछा और विष्णु प्रभाकर के 'वैश्य' कहने पर अध्यापक ने कहा कि तब तुम्हारा नाम विष्णु 'गुप्त' होना चाहिए। (मेरे साक्षात्कार, पृ.13) दसवीं कक्षा तक उनका यही नाम रहा। पर, आर्थिक तंगी के कारण जब इन्होंने सन् 1929 में हिसार के सरकारी फार्म में काफी छोटे पद पर नौकरी करनी शुरू की तो इनका नाम विष्णु गुप्त से विष्णु 'दत्त' कर दिया गया। नाम परिवर्तन का कारण क्लर्क महोदय ने बताया कि वहाँ पहले से ही कई गुप्त थे जिससे कई तरह की असुविधाएँ होतीं, जिसके कारण उनका नाम विष्णु दत्त कर दिया गया। एक संपादक महोदय ने इनका नाम विष्णु 'प्रभाकर' कर दिया लेकिन कालांतर में विष्णु 'प्रभाकर' की जगह विष्णु प्रभाकर हो गया। उस समय प्रभाकर माचवे और विष्णु प्रभाकर के नाम में भी लोगों को संशय होता था। कुछ लोगों ने उनका नाम विष्णु प्रभाकर माचवे तक कर दिया था।

होनहार बिरवान के होत चिकने पात वाली कहावत विष्णु प्रभाकर पर लागू होती थी। उनकी प्रतिभा बाल्यावस्था में ही प्रकट होने लगी। उनकी आरंभिक शिक्षा मीरापुर में ही हुई लेकिन बाद में वे अपने नानी घर हिसार चले गये, जो तब पंजाब का अंग था। विष्णु प्रभाकर जी के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, जिससे वे आगे की पढ़ाई ठीक तरह से नहीं कर पाए और उन्हें घर चलाने के लिए डी ग्रुप की सरकारी नौकरी करनी पड़ी। उस समय उन्हें 18 रुपये प्रति माह मिलते थे। पर इस नौकरी को उन्होंने साध्य नहीं, बल्कि साधन के रूप में अपनाया और आगे चलकर अपनी लगनशीलता और परिश्रम से उन्होंने हिंदी में प्रभाकर और हिंदी भूषण की उपाधि, संस्कृत में प्रज्ञा और अंग्रेजी में बी.ए. की डिग्री पंजाब विश्वविद्यालय से प्राप्त की। इसी प्रभाकर की उपाधि के कारण वे विष्णु प्रभाकर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

विष्णु प्रभाकर पर गाँधी जी के विचारों और सिद्धांतों का काफ़ी अधिक प्रभाव पड़ा। इनकी रचनाओं की आजादी की लड़ाई में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 'हत्या के बाद' उनका पहला नाटक है। हिसार में इन्होंने नाटक मंडली में भी काम किया। 1947 के बाद वे दिल्ली आ गए। सितंबर 1955 में नाट्य निर्देशक के पद पर वे आकाशवाणी में नियुक्त हुए। यहाँ इन्होंने 1957 तक कार्य किया। 26 वर्ष की उम्र में इनका विवाह हुआ इनकी पत्नी का नाम श्रीमती सुशीला था।

विष्णु प्रभाकर केवल कर्मठ और संवेदनशील ही नहीं थे, बल्कि अपने आत्मसम्मान के लिए भी काफ़ी सजग थे। 2005 में इनके साथ राष्ट्रपति भवन में दुर्व्यव्यवहार हुआ, जिससे इनके आत्मसम्मान को काफ़ी चोट पहुँची और इन्होंने पद्मभूषण सम्मान को लौटाने की घोषणा कर दी। एक लेखक का स्वाभिमान और आत्ममर्यादा बोध उसकी सृजनशीलता को भी प्रभावित करता है। विष्णु प्रभाकर ने नाथू राम शर्मा से प्रेरित

होकर 'आवारा मसीहा' जीवनी लिखी, जिससे उन्हें काफ़ी प्रतिष्ठा मिली और वे अखिल भारतीय रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हो गए। इस कृति के संबंध में वे कहते हैं– "चौदह साल जिया था मैं उस आवारा मसीहा के साथ जिसे मैंने कभी देखा नहीं था"। (मेरे साक्षात्कार)

रचनाकार की संवेदना सामाजिक सरोकार से जुड़ी होती है। वह सत्ता या व्यवस्था के प्रचारतंत्र से जुड़ा रहकर अपनी सृजनशीलता को समाजोपयोगी नहीं बना सकता है। विष्णु प्रभाकर का स्वभाव उन्मुक्त था, जिससे वे नौकरी से बँधकर नहीं रह पाए। 'मेरे साक्षात्कार' में वे स्पष्ट कहते हैं कि "साहित्यकार किसी व्यवस्था का प्रचारमंत्री नहीं बन सकता"। यही कारण है कि उन्होंने अपने सृजन कर्म को अपना सारा समय दिया। नाटक, कहानी, उपन्यास, जीवनी, संस्मरण, निबंध, यात्रा–वृतांत कविता और बाल साहित्य़ में इनके महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। आइए, हम उनकी कृतियों से परिचित होते हैं। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं :

उपन्यास– 'ढलती रात', 'स्वप्नमयी', 'क्षमादान', 'अर्धनारीश्वर', 'तट के बंधन', 'दर्पण का व्यक्तित्व', 'परछाईं', 'कोई तो'।

कहानी संग्रह– 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'मेरा वतन खिलौने', 'आदि और अंत', 'एक कहानी का जन्म', 'रहमान का बेटा', 'जिन्दगी के थपेड़े', 'सफर के साथी', 'खंडित पूजा', साँचे और कला', 'पुल टूटने से पहले', 'आपकी कृपा', 'एक और कुंती, 'जिन्दगी एक और रिहर्सल'।

नाटक–'हत्या के बाद', 'नव प्रभात', 'डॉक्टर', 'अशोक', 'अब और नहीं', 'टूटते परिवेश', 'कुहासा और किरण', 'बंदिनी', 'सत्ता के आर–पार', 'केरल का क्रांतिकारी', 'सीमा रेखा', 'श्वेत कमल', 'युग–युग क्रांति', 'समाधि'।

एकांकी–'प्रकाश और परछाइयाँ' बारह एकांकी, 'इन्सान', 'संघर्ष के बाद', 'क्या वह दोषी था', 'हमारा स्वाधीनता संग्राम','साँप और सीढ़ी'।

कविता संग्रह– 'चलता चला जाऊँगा'।

जीवनी– 'आवारा मसीहा', 'अमर शहीद भगत सिंह', 'सरदार बल्लभभाई पटेल', 'काका कालेलकर'।

संस्मरण– 'जाने–अनजाने', 'कुछ शब्द, कुछ रेखाएँ', 'यादों की तीर्थयात्रा',' मेरे अग्रजः मेरे मीत', 'समांतर रेखाएँ', 'मेरे हमसफर', 'राह चलते–चलते'।

निबंध– 'जन समाज और संस्कृतिः एक समग्र दृष्टि','क्या खोया क्या पाया'।

यात्रा वृतान्त– 'ज्योतिपुंज हिमालय', 'जमुना गंगा के नैहर में'।

आत्मकथा– 'पंखहीन' नाम से उनकी आत्मकथा तीन भागों में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुई है।

बाल साहित्य– मोटे लाल, कुंती के बेटे, रामू की होली, दादा की कचहरी, जब दीदी भूत बनी आदि। इन्होंने बाल साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

विष्णु प्रभाकर को उनके साहित्यिक अवदान के लिए कई सम्मानों और पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। जैसे मूर्ति देवी सम्मान (अर्धनारीश्वर उपन्यास के लिए), साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड, महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार, पद्मभूषण।

विष्णु प्रभाकर ने प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र और अज्ञेय जैसे रचनाकारों के सहयात्री रहकर भी अपनी अलग पहचान बनाई। इनकी पहली कहानी 'दीवाली के दिन' 1931 में 'हिंदी मिलाप' में प्रकाशित हुई। उसके बाद वे अपने सृजन कर्म में निरंतर सक्रिय रहे। विष्णु

प्रभाकर ने अपने वसीयत में अपने सभी अंगों के दान की इच्छा व्यक्त की थी, जिससे 19 अप्रैल, 2009 में मृत्योपरांत उनके पार्थिव शरीर को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को सौंप दिया गया। उनके परिवार में उनके दो बेटे और दो बेटियाँ हैं।

12.3 विष्णु प्रभाकर का साहित्य

अपने साहित्य लेखन के संबंध में विष्णु प्रभाकर कहते हैं– "परिवेश से प्रभावित होकर भी मेरे सृजन का मूल स्वर मनुष्य की पहचान और शोषण से मुक्ति है। मैंने चौथे दशक से लिखना शुरू किया था। जान–बूझकर कोई प्रयत्न नहीं किया, पर जिस परिप्रेक्ष्य में पला पनपा, वह मुझे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर ले जा सकता था, लेकिन मैं किसी दल या सिद्धांत का पक्षधर नहीं बन सका। स्वाधीनता से पूर्व स्वाधीनता से अवश्य जुड़ा था पर मार्क्सवादी बनकर नहीं। मैं तो यह मानता हूँ कि साहित्यकार स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। वह मूल्यों को परखता है और उनके आगे प्रश्नचिह्न लगाता है। यह उसकी नियति है। चूँकि वह संवेदनशील है और यह निरन्तर प्रवहमान प्रक्रिया है इसलिए वह किसी भी व्यवस्था का प्रचारमंत्री नहीं बन सकता"। ('क्या खोया क्या पाया')

विष्णु प्रभाकर के अनुसार "साहित्य मानव आत्मा की बंधनहीन अभिव्यक्ति है; बंधन अगर है तो वह अपने विश्वासों का आंतरिक बंधन है। वह बाहर से आरोपित नहीं किया जा सकता। व्यक्ति की संवेदना जब मानव की संज्ञा में रूपायित होती है तभी कोई रचना साहित्य की संज्ञा पाती है। साहित्य भाषा के माध्यम से संप्रेषित होता है। भाषा साहित्य को समाज से जोड़ती है, उसे सामाजिक बनाती है; पर साहित्य मात्र समाज का दर्पण नहीं है वह समाज को समझने, पहचानने की दृष्टि है"।

विष्णु प्रभाकर के साहित्य में विषयों की विविधता है। उन्होंने जीवन को साहित्य और साहित्य को जीवन से जोड़कर देखा है। समाज उनके लिए महत्त्वपूर्ण रहा, व्यक्ति को भी उन्होंने अपनी संपूर्ण संवेदना के साथ देखा है फिर भी वे समाज से अलग व्यक्ति को देखने और चित्रित करने के पक्ष में नहीं रहे। 'मेरे साक्षात्कार' में वे कहते हैं– "जीवन और साहित्य दोनों को अलग करके मानने की मेरी इच्छा नहीं है। जो सचमुच जीना चाहता है, वही साहित्य का साध्य है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा में मेरा विश्वास है, लेकिन समाज से अलग व्यक्ति की कल्पना मैं कभी नहीं कर सकता"। विष्णु प्रभाकर सह–अस्तित्व में अटूट विश्वास रखते थे। वे गाँधीवाद से प्रेरित थे और गाँधी जी की अहिंसा में उनकी आस्था थी। साहित्य–सृजन के लिए उन्होंने दो बार सरकारी नौकरी छोड़ दी, जबकि दूसरी बार वेतन भी काफी अच्छा था। वे साहित्य–सेवा को अपना कर्तव्य मानते थे। वे साहित्य को समाज और युग से जोड़कर देखते थे, लेकिन मानवता में भी विश्वास रखते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने साहित्य में शरतचन्द्र के व्यक्तित्व को भी महत्त्व दिया और बार–बार वे 'आवारा मसीहा' में उनका बचाव करते रहे। वे साहित्यकार की दृष्टि से व्यक्ति को देखते थे, सामाजिक किंवदंतियों के अनुरूप चरित्र को गढ़ते नहीं थे। यदि आप समग्रता में उनके साहित्य का अध्ययन और मूल्यांकन करेंगे तो यह देखेंगे कि उनमें मानवीय भावबोध, संवेदना, समाजोपयोगिता, करुणा, ईमानदारी, अहिंसा आदि के भाव काफी प्रबल हैं।

विष्णु प्रभाकर ने नारी–मुक्ति को भी संवेदनशील साहित्यकार के रूप में देखा है। वे साहित्यकारों की आपसी वैचारिक टकराहट को साहित्य के लिए बहुत शुभ नहीं मानते थे। नई कहानी के संदर्भ में वे कहते हैं–"नई कहानी को लेकर जो अप्रिय संघर्ष नये और पुराने लेखकों में पैदा हो गया है, वह दुर्भाग्यपूर्ण है"। (मेरे साक्षात्कार) वे अपने साहित्य के उद्देश्य और आदर्श के बारे में कहते हैं "...यदि उद्देश्य जैसी चीज मेरे साहित्य में ढूँढनी ही हो तो वह उत्कृष्ट मानवता की खोज है। आदर्श मुझे वहीं तक प्रिय है,

जहाँ तक वह यथार्थ का संबल है"। तात्पर्य यह है कि उनके लिए युग का यथार्थ महत्त्वपूर्ण था। यही कारण है कि उन्होंने कभी किसी विचारधारा के अनुरूप अपने को ढालने या उसके अनुरूप साहित्य को लिखने की कोशिश नहीं की।

विष्णु प्रभाकर का अंतर्मुखी व्यक्तित्व भी साहित्य–सृजन का कारण बना। कभी–कभी छोटी सी घटना मन पर इतना प्रभाव डालती है कि व्यक्ति अंतर्मुखी होने लगता है। विष्णु प्रभाकर के बाल मन को उस समय काफी चोट पहुँची जब उनके चाचा ने उनके छोटे भाई को गोद ले लिया और उनका भेदभाव का व्यवहार विष्णु प्रभाकर को आहत करने लगा। वे अपने को काफी छोटा महसूस करने लगे। वे कहते हैं–"आज भी यह मनोविज्ञान मेरे अंतर्मन के किसी कोने में साँप की तरह कुंडली मारकर बैठ गया है। मैं अंतर्मुखी हो उठा। जैसे कछुवा अपने अंग समेटकर खोल में घुसा रहाता है, वैसा ही कुछ मेरे साथ हुआ। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मुझे लेखक बनाने में इस घटना का बहुत बड़ा हाथ है"।

11 वर्ष की आयु में मामा के पास हिसार जाने से जब माँ का साथ छूट गया, तो विष्णु प्रभाकर माँ के अभाव को हर समय महसूस करने लगे और कभी–कभी भावुकता में काफी विचलित होने लगे। वे अंतर्मुखी होते गये और उन्हें मनुष्य की छाया से भी डर लगने लगा। यह विषमता और भावुकता धीरे–धीरे उनके लेखकीय व्यक्तित्व का निर्माण करने लगी। एक ओर मामा जी के घर का आर्य समाजी वातावरण और दूसरी ओर अभाव और संघर्ष उनके भीतर के साहित्यकार को नया रूप देने लगा।

विष्णु प्रभाकर की परिस्थितियाँ हमेशा उनके लिए विषम और प्रतिकूल रहीं। वे जीवन में जो करना चाहते थे, उसे नहीं कर पाए, जिसका दुख उनके साथ हमेशा बना रहा और वे अपनी रचनाओं के पात्रों के साथ संवेदनशील और करुण बने रहे। विष्णु प्रभाकर ने भ्रमण भी किया, जिससे उनका विज़न व्यापक हुआ। उनके अन्वेषक व्यक्तित्व, उनकी सूक्ष्म दृष्टि, किसी विचारधारा से न बँधने की प्रतिबद्धता और उनके मानवतावादी दृष्टिकोण ने उनके साहित्य को उनके समकालीन रचनाकारों से कुछ अलग ही भावभूमि से संबद्ध किया। विष्णु प्रभाकर ने भारतीय समाज, राजनीति, परंपरा, संस्कृति, इतिहास, पुराण आदि के साथ अपने युग के बदलाव का भी सूक्ष्म अवलोकन किया जिसकी अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न विधाओं की उनकी रचनाओं में आप देखेंगे।

12.3.1 नाटक

नाटककार की रचना–प्रक्रिया अन्य विधाओं से अलग होती है क्योंकि नाटककार की कल्पना में रंगमंच भी होता है। नाटककार के पास यदि रंगमंच, अभिनय और निर्देशन की जानकारी हो, तो उसके लिए रंगमंच की दृष्टि से सफल नाटक लिखना आसान हो जाता है। विष्णु प्रभाकर कथा लेखन से नाटक और एकांकी लेखन के क्षेत्र में कैसे आए इसके लिए भी एक कहानी है। एक बार प्रभाकर माचवे ने उनसे कहा कि उनकी कहानियों में संवाद अधिक और प्रभावशाली होते हैं, यदि वे नाटक लिखें तो सफलता मिलने की संभावना है। विष्णु प्रभाकर ने प्रभाकर माचवे की बातों को गंभीरता से लिया। संयोग से 1938 के आस–पास 'हंस' का एकांकी नाटक का अंक निकला। प्रभाकर माचवे की बात उनके अंतर्मन में बीज के रूप में पड़ी थी, जिससे उन्होंने 1939 में 'हत्या के बाद' एक नाटक लिखा। वह 'हंस' में प्रकाशित हुआ और 'साहित्य संदेश' में उसे बहुत अच्छा एकांकी माना गया। इनका दूसरा एकांकी था– 'माँ– बाप'। 'वीणा' के एकांकी नाटक अंक में वह प्रकाशित हुआ था। आप यह जान चुके हैं कि विष्णु प्रभाकर का 1931–32 में तत्कालीन रंगमंच से गहरा संबंध था जिससे उनके नाटक रंगमंचीय विशेषताओं से युक्त हैं।

आइए, अब हम विष्णु प्रभाकर के कुछ महत्त्वपूर्ण नाटकों के बारे में चर्चा करते हैं। विष्णु प्रभाकर के नाटकों को कई वर्गों में विभक्त करके उनका अध्ययन और मूल्यांकन किया जा सकता है। जैसे :

1. **ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक**–'नव प्रभात', 'सत्ता के आर पार', 'गान्धार की भिक्षुणी', 'केरल का क्रांतिकारी' आदि।
2. **मनोवैज्ञानिक नाटक**–'डॉक्टर'
3. **नारी जीवन की व्यथा पर आधारित सामाजिक नाटक**– 'अब और नहीं', 'श्वेत कमल' आदि।
4. **राजनीतिक विडंबनाओं पर आधारित नाटक**– 'कुहासा और किरण' आदि।

ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में आधार इतिहास या पुराण से लेकर युग की वैचारिकी का विश्लेषण किया जाता है। यह एक प्रकार से अतीत के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है जिसमें अच्छे भविष्य के निर्माण के लिए भी नाटककार की प्रतिबद्धता रहती है। साहित्यकार जब ऐतिहासिक घटनाओं, पौराणिक या ऐतिहासिक पात्रों आदि का आधार लेता है तो उसके सामने यही उद्देश्य रहता है कि किस तरह इनके द्वारा वर्तमान और भविष्य को प्रेरित किया जाए। ऐतिहासिक नाटककार एक साथ वर्तमान और अतीत में जीता है और अतीत की घटनाओं को वर्तमान के संदर्भों में देखकर कल्पना से उसका पुनर्निर्माण करता है। यही कारण है कि इतिहास या पुराण पर आधारित होते हुए भी नाटक में युगीन संवेदनाएँ और वैचारिकी दिखाई देती है। कोई भी ऐतिहासिक नाटक वर्तमान से जुड़ा होता ही है। यही कारण है कि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कल्पना का भी संयोजन होता है। विष्णु प्रभाकर इतिहास, पुराण, मनोविज्ञान आदि के सशक्त अध्येता थे। यही कारण है कि इनके नाटकों में ऐतिहासिक या पौराणिक घटनाएँ युगीन संदर्भों में गुंथी हुई दिखाई देती हैं और इनके पात्र नाटककार के युग में जीवन जीते हुए और विचारों को अभिव्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। इतिहास के तथ्यों को ग्रहण करने के संदर्भ में विष्णु प्रभाकर कहते हैं–"मैंने इतिहास का उपयोग बहुत ही कम किया है। वहीं किया है जहाँ वर्तमान के संदर्भ में वह कोई अर्थ रखता हो"। युद्ध के अनौचित्य को दर्शाने के लिए अनेक नाटक लिखे गए हैं। विष्णु प्रभाकर ने भी 'नव प्रभात' को इसी उद्देश्य से लिखा है। अशोक के कलिंग विजय को विषय बनाकर वंशीधर श्रीवास्तव ने भी 'अशोक का शस्त्र त्याग' एकांकी लिखा है। 'नव प्रभात' में अशोक का कलिंग पर आक्रमण, युद्ध का वर्णन, कलिंग के राजकुमार को बंदी बनाना, कुमार के सिर को झुकाने की निरर्थक कोशिश, कुमार के स्वाभिमान और आत्म मर्यादाबोध से अशोक के अहंकार को चोट पहुँचना, कुमार को मृत्युदंड की सजा, कुमार का उद्बोधन और अशोक की आत्मग्लानि आदि का युग सापेक्ष और मनोविज्ञान सापेक्ष वर्णन है। 'नव प्रभात' में अहंकार के अनौचित्य का चित्रण है, जो संघर्ष, हिंसा और वर्ग–संघर्ष का कारण है।

विष्णु प्रभाकर का उदेश्य मनुष्यता की खोज और मनुष्यता की प्रतिष्ठापना रही है, जिससे इस नाटक में इन्होंने अशोक के हृदय परिवर्तन और ग्लानि का चित्रण किया है। इस नाटक में हिंसा, रक्तपात, युद्ध, सत्ता के लिए षड्यंत्र और अंत में इनकी निरर्थकता को दर्शाकर विष्णु प्रभाकर ने मानवता, करुणा, सहानुभूति आदि के महत्त्व के प्रतिपादन के साथ यह सिद्ध किया है कि राजनीति में भी मनुष्यता सर्वोपरि है। मगध के महत्त्वाकांक्षी सम्राट अशोक ने कलिंग पर आक्रमण कर भीषण रक्तपात किया लेकिन वे कलिंग कुमार का सिर झुकाने में असमर्थ रहे, जिससे वे क्रुद्ध हो उठे। जब उनके अमात्य राधागुप्त ने कलिंग कुमार को बंदी बनाकर सम्राट अशोक के समक्ष प्रस्तुत किया, तो अशोक कलिंग कुमार की निर्भीकता और आत्माभिमान को सहन नहीं

कर सके। उन्होंने कलिंग कुमार को मृत्युदंड की सजा सुनाई जिसपर कलिंग कुमार ने उनसे कहा–"बस यही है तुम्हारी वीरता! यही है तुम्हारा शौर्य! इसी के बल पर सम्राट बने हो! एक बंदी का सिर भी नहीं झुका सके! खोपड़ियाँ ठुकराने के लिए तो अनेक गीदड़ श्मशान में घूमा करते हैं, लेकिन वह वीर पुरुषों का मार्ग नहीं है"।

कुमार की इन बातों से अशोक का अंतर्मन उसे धिक्कारने लगा। उसे ग्लानि हुई। उसी समय कुमार की बहन भी भिक्षुणी के वेश में वहाँ पहुँची। उसने अशोक को उद्‌बोधन दिया –"जो प्रतिशोध की भावना जगाता है, वह जीतकर भी हार जाता है। सम्राट शस्त्रों की जीत जीत नहीं होती। जहाँ लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देश निकाला हो, ऐसा जीतना न जीतने के बराबर है"।

कुमार और उसकी बहन की बातें अशोक का हृदय परिवर्तित कर देती हैं। अशोक कुमार को क्षमा कर देता है, लेकिन स्वाभिमानी कुमार उसकी क्षमा को स्वीकार नहीं करता और अपनी छाती में कटार मार लेता है। इससे अशोक स्वयं को हारा हुआ महसूस करता है और कह उठता है–"कुमार! कुमार! तुम जीत गए मैं पराजित हो गया"। यहाँ कुमार की आत्महत्या अशोक की ग्लानि को तीव्र कर देती है, जिससे वह बौद्ध धर्म के अहिंसा, सत्य और करुणा के मार्ग पर चलने लगता है। जो अशोक यह कहता है कि "मैं महत्त्वाकांक्षी हूँ। मैं विजय चाहता हूँ किसी भी मूल्य पर विजय! मेरे नाम पर गान्धार से लेकर केरल तक कामाख्या से लेकर सौराष्ट्र तक सारे देश काँपते हैं" वही इतनी ग्लानि से भर जाता है कि बौद्ध धर्म की शरण में चला जाता है। इस नाटक में संघमित्रा शौर्य की परिभाषा इस रूप में देती है– "हृदय! हृदय की विशालता और उदारता का नाम शौर्य है, सम्राट।"

अशोक का यह निश्चय कि अब कभी युद्ध के कारण अनाथों और विधवाओं का करुण क्रंदन नहीं होगा, विष्णु प्रभाकर के ऊपर पड़े गाँधी जी के अहिंसावादी विचारों के प्रभाव का परिणाम है। राजा की साम्राज्यवाद की आकांक्षा से अशांति फैलती है और शासन का अर्थ है हृदय पर शासन करना जिसमें मानवतावाद निहित है। यही बतलाना 'नव प्रभात' नाटक का मूल उद्देश्य है। विष्णु प्रभाकर ने इस नाटक के आमुख में लिखा है– "शान्ति की आवश्यकता पर इन वर्षों में जितना ज़ोर दिया गया है, उतना पहले शायद ही कभी दिया गया है। सचमुच भावी युद्ध की सर्वनाशिनी कल्पना से कंपित विश्व अशोक के चरित्र को जितना आज समझ सकता है, उतना संभवतः और कभी नहीं"।

'सत्ता के आर–पार' नाटक में आदिब्रह्मा ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत और दूसरे पुत्र बाहुबली की आपसी संघर्ष गाथा है। भरत को चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिए राजपुरोहित और सेनापति प्रतिबद्ध हैं और उन्हें अपने भाइयों को भी पराजित करने का परामर्श देकर इसे धर्म की संज्ञा देते हैं। राजगुरु कहते हैं– "व्यक्ति की व्यथा कितनी ही तीव्र क्यों न हो, वह उसको बृहतर समाज के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने से नहीं रोक सकती"। भरत द्वन्द्व में हैं वे पूछते हैं– "क्या सबसे बड़ा धर्म अपने को जीतना नहीं है? संसार को जीतना आसान है लेकिन अपने को जीतना... "भाइयों को जीतना राजधर्म का पालन क्या राजधर्म सहोदरों को पराजित करना है नहीं–नहीं, भाइयों को जीतना, राजधर्म, भाइयों से युद्ध नहीं, नहीं–नहीं..."।

प्रणाम करके भरत के सभी भाइयों को भरत की सत्ता स्वीकारनी है, तभी भरत चक्रवर्ती सम्राट बन सकते हैं लेकिन भरत के सहोदरों को इस तरह झुकना स्वीकार नहीं है, न ही वे युद्ध की विभीषिका के द्वारा अपनी प्रजा का अहित चाहते हैं इसलिए वे तप का मार्ग अपनाते हैं। बाहुबली का तर्क अलग है। वे अपने राज्य की रक्षा अपना धर्म मानते हैं जिससे वे भरत को प्रणाम करना स्वीकार नहीं करते और अपने शरणागत रतनपुर के भगोड़े राजा बज्रबाहु को भी शरण देते हैं। इससे युद्ध का वातावरण निर्मित होने

लगता है जिससे प्रजा भयभीत है। लोगों को लगता है कि युद्ध से अराजकता फैलती है, धर्म नष्ट होता है, शील भ्रष्ट होता है, सभी शुभ और सुंदर नष्ट हो जाते हैं इसलिए जनता युद्ध को बंद करने के नारे लगाती है। इससे सर्वसम्मति से दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध का आयोजन किया जाता है ताकि जनता और सैनिकों को हानि नहीं पहुँचे। इन युद्धों में बाहुबली विजयी होते हैं, जिससे कोधित होकर चक्र उठाकर भरत उनपर आक्रमण करते हैं। इससे बाहुबली काफी विचलित और स्तब्ध रह जाते हैं। उन्हें लगता है कि सत्ता रक्तपिपासु और मर्यादाहीन है और वे घोषणा करते हैं– "जो सत्ता मनुष्य के सद्–असद् के विवेक को हर लेती है मैं इसी क्षण उसका परित्याग करता हूँ"। अंत में भरत बाहुबली को नमन करते हुए कहते हैं– "मुनिराज भरत का चक्रवर्तित्व आपके चरणों में स्थान पाकर धन्य हुआ। आपकी तपःसाधना पर भरत के सहस्त्रों राज्य निछावर हैं"। अंत में वाणी के रूप में नाटककार यह निष्कर्ष देते हैं– "अहंकार से मुक्त होकर ही तप पूर्ण होता है और तप के चरणों में झुककर ही सत्ता पवित्र होती है"।

'गान्धार की भिक्षुणी' नाटक में नाटककार राजसत्ता और वंश परंपरा का विरोध करते हैं और जनशक्ति को महत्त्व देते हैं। निरंकुश और शोषक शासन से जनता जब पीड़ित होती है तब जनता में मुक्ति की छटपटाहट दिखाई देती है। इसमें यशोधर्मन कहते हैं–"एक हाथ में केंद्रित होकर शक्ति अन्याय और विनाशकारी युद्धों का स्रोत बन जाती है। सत्ता का मोह सद्–असद् के विवेक को नष्ट कर देता है"। (गान्धार की भिक्षुणी, विष्ण प्रभाकर के नाटक भाग–5, पृ. 141) इस नाटक में जनप्रतिनिधि के चयन को राष्ट्र की उन्नति के लिए महत्त्व दिया गया है– "मैं चाहता हूँ इस देश के नागरिक सदा अपने शासक चुनते रहें, वंश से नहीं, प्रतिभा से जनेन्द्र का वरण हो"। 'गान्धार की भिक्षुणी' में हूणों के काल को आधुनिक संदर्भों में व्यक्त किया गया है।

'केरल का क्रांतिकारी' में भी मानवता को स्थापित करने का प्रयत्न है। इस नाटक में विष्णु प्रभाकर वेलुत्तम्पी दलवा के अदम्य साहस और बलिदान का चित्रण करते हैं। इस नाटक में अंग्रेजों के छल–प्रपंच, षड्यंत्र, तिरुवितांकुर के राजा की विवशता आदि का चित्रण है। इसमें अंग्रेजी शासन से मुक्ति के लिए प्रयत्न और तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का वर्णन है। इसकी भूमिका में विष्णु प्रभाकर ने लिखा है कि 1950 में भारतीय स्वाधीनता संग्राम को रेखांकित करते हुए उन्होंने छह रूपक आकाशवाणी के लिए लिखे थे। अवधि थी 1857–1947। इसी समय उन्होंने इस नाटक में वर्णित कथानक के लिए अन्वेषण किया था। इसमें ऐतिहासिक पात्रों के साथ कुछ काल्पनिक पात्र भी हैं जैसे अम्मु–कुट्टी जो वेलुत्तम्पी की प्रेमिका है और जिसने यह निश्चय किया था कि वे शादी नहीं करेंगे और जीवन भर राज्य की सेवा करेंगे।

'डॉक्टर' विष्णु प्रभाकर का काफ़ी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नाटक है, जिसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि जीवन में भावना का महत्त्व है या कर्तव्य का? इस नाटक में कम पढ़ी–लिखी लड़की मधुलक्ष्मी का विवाह इंजीनियर सतीशचन्द्र शर्मा से होता है, लेकिन सतीशचन्द्र शर्मा उसे अपने योग्य नहीं मानते हैं और उसे त्यागकर उषा से दूसरी शादी कर लेते हैं। मधुलक्ष्मी इससे काफ़ी आहत होती है और अपने भाई की सहायता से शिक्षित होकर डॉक्टर बन जाती है। अब उसे अपना मधुलक्ष्मी नाम अच्छा नहीं लगता और वह अपने को डॉ. अनीला के रूप में प्रतिष्ठापित करती है। समयचक्र में परिवर्तन होता है और सतीशचन्द्र शर्मा अपनी दूसरी पत्नी का इलाज कराने डॉ. अनीला के पास पहुँचते हैं तो डॉ. अनीला द्वन्द्व में घिर जाती है। उसके भीतर अपमान की स्मृतियाँ जागृत हो जाती हैं और वह डॉ. केशव से कहती है– "मुझे यहाँ से भाग जाने दो। मैं उसे मार डालूँगी। मैं उसकी हत्या कर दूँगी। सच कहती हूँ मैं, मेरे अन्दर कोई घुसा बैठा है जो मुझसे उसकी हत्या करवा देगा'।

डॉ. अनीला का अंतर्द्वन्द्व इस रूप में सामने आता है– "आखिर ऑपरेशन करना ही होगा, पर वह ऑपरेशन मैं नहीं करूँगी। लेकिन सब इन्तजाम हो चुका है। सबको मालूम है कि आज ऑपरेशन होना है। क्या कहेंगे? कुछ भी कहें मैं ऑपरेशन नहीं करूँगी लेकिन ओह मैं क्या करूँ मैं क्या करूँ.."? अंत में डॉ. अनीला का कर्तव्यबोध उसके प्रतिशोध पर हावी हो जाता है और वह सफल ऑपरेशन करके सतीशचन्द्र शर्मा की दूसरी पत्नी को बचा लेती है और अपनी भावनाओं, अपने दुखों और अपनी पीड़ा पर विजय प्राप्त कर लेती है।

'टगर' नाटक में भी नारी व्यथा के उपरांत नारी सशक्तीकरण और प्रगतिशील समाज में नारी की स्थिति का वर्णन है। शेखर के साथ रश्मि का विवाह सफल नहीं होता, क्योंकि रश्मि काफ्का, कामू और सार्त्र जैसे विचारकों पर चर्चा नहीं कर सकती थी। शेखर से अलग होकर रश्मि कई पुरुषों के संपर्क में आती है, लेकिन उसके भीतर एक टीस है कि सभी पुरुषों के चेहरे एक जैसे ही हैं। उसे लगता है कि "नारी किसी न किसी रूप में बिकती ही है। रोज अखबारों में देखते होंगे, हर इश्तिहार के साथ नारी का चित्र होता है, तेल हो, मंजन हो, कहते हों, जूते हों, मिठाई हो, घी हो, कुछ भी हो, नारी के मोहिनी रूप के रिश्वत दिये बिना वे नहीं बिकते"। रश्मि विजयिनी बनना चाहती थी, लेकिन पराजित ही होती है।

'अब और नहीं' नाटक में भी नारी व्यथा और मनोविज्ञान है। समाज और परिवार नारी के मन को समझने की कोशिश नहीं करता, जिससे उसकी बीमारी बढ़ती जाती है। अंत में शान्ता की मौत के लिए वीरेन्द्र प्रताप स्वयं को ही नहीं, दर्शकों को भी जिम्मेदार मानता है, क्योंकि सबने शान्ता के कार्यों, दर्द और बीमारी को देखा, किसी ने इस बीमारी या दर्द के कारण को समझने की कोशिश नहीं की। घर में वीरेन्द्र की इच्छा ही सर्वोपरि थी।

'श्वेत कमल' में नौकरी करने वाली लड़की बिन्दू की व्यथा–कथा है, जिसकी पीड़ा उसकी माँ भी समझना नहीं चाहती। वह घर में सबकी इच्छा की पूर्ति करने वाली कमाऊ बेटी है जिसकी इच्छाओं का उसकी माँ के लिए भी कोई महत्त्व नहीं है।

'कुहासा और किरण' में विष्णु प्रभाकर ने राजनीति विडंबनाओं के बीच मूल्यों को तलाशने और कायम रखने की कोशिश की है।

उपर्युक्त नाटकों के संक्षिप्त विश्लेषण के आधार पर आप यह देख सकते हैं कि विष्णु प्रभाकर के नाटकों में ऐतिहासिकता, मानवीय मूल्यों की स्थापना, स्त्री–मुक्ति की बेचैनी, राष्ट्रीयता का भाव, समाज में सौंदर्य को बनाए रखने की प्रतिबद्धता आदि हैं। 'मेरे साक्षात्कार' में विष्णु प्रभाकर कहते हैं– "मानवीय मूल्यों का साहित्य से सरोकार है। मानवीय मूल्य नहीं होंगे, तो साहित्य क्या होगा। नैतिक पतन जो हो रहा है उसका कारण विश्वव्यापी है। आज सारे विश्व में मूल्यों का विघटन हो गया है। यानी इतना विघचन हो गया है कि हम समझ नहीं पा रहे हैं कि कहाँ जा रहे हैं"। इन्हीं पतनशील मूल्यों को बचाने की कोशिश विष्णु प्रकार ने अपने नाटकों में भी की है।

12.3.2 एकांकी

एकांकी रचनाकारों में विष्णु प्रभाकर का नाम काफी गौरव के साथ लिया जाता है। ध्वनि नाट्य के क्षेत्र में उन्हें काफ़ी प्रसिद्धि मिली है। विष्णु प्रभाकर नाट्य कला को सबसे सशक्त सामाजिक कला मानते रहे, जो दृश्य और श्रव्य दोनों है। नाटककार में विष्णु प्रभाकर अभिनेता के गुण को आवश्यक मानते थे। वे यह मानते थे कि वैज्ञानिक युग में संकलन –द्वय या संकलन–त्रय का अधिक महत्त्व नहीं है। रंग–शिल्प को भी बंधनों में जकड़ना वे कला के लिए हितकर नहीं मानते थे। संकेत और संवेदना को लेकर रंग शिल्प में उन्होंने स्वतंत्रता को महत्त्व दिया। वे नाटक और एकांकी को मानव के

बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष की कहानी मानते थे, जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। उनकी दृष्टि में एकांकी कला की मूल विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. **एक निश्चित समस्या**– इसका अर्थ है कि एकांकी की अंतर्वस्तु में एक ही समस्या रहती है और इसी का सतत् विकास होता है।
2. **उसका द्रुत विकास**
3. **चरम सीमा पर समस्या की चरम अन्विति**
4. **कौतुहल और जिज्ञासा ताकि सबको एकसूत्र में बाँधकर रखा जा सके**

जहाँ तक एकांकी की अंतर्वस्तु का प्रश्न है तो अभी तक आप यह जान चुके हैं कि विष्णु प्रभाकर का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। उनके एकांकी में भी उनकी अन्य रचनाओं की तरह सामाजिक यथार्थ, मनोविज्ञान, राजनीति के साथ हास्य–व्यंग्य, पुराण, इतिहास आदि का समावेश है, जिसके आधार पर उनके एकांकी को वर्गीकृत किया जा सकता है। आइए, उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर उनके एकांकी का वर्गीकरण करें :

1. **सामाजिक यथार्थ पर आधारित एकांकी**– 'प्रतिशोध', 'पाप', 'बन्धनमुक्त साहस', 'रक्त चन्दन', 'वीर पूजा', 'देवताओं की घाटी', 'माँ बँटवारा', 'नया समाज' आदि।
2. **राजनीतिक विचारों से युक्त एकांकी**– 'हमारा स्वाधीनता संग्राम', 'हत्या के बाद', 'कांग्रेस मैन बनो', 'क्रांति' आदि।
3. **मनोवैज्ञानिक एकांकी**– 'ममता का विष', 'भावना और संस्कार', 'जहाँ दया पाप है' इत्यादि।
4. **पौराणिक एवं ऐतिहासिक एकांकी**– 'अशोक', 'नहुष का पतन', 'जन्माष्टमी', 'शिवरात्री', 'कंस–मर्दन' आदि।
5. **हास्य एवं व्यंग्य युक्त एकांकी**– 'प्रो. लाल', 'भूख', 'सरकारी नौकरी', 'कला का मूल्य' आदि।
6. **रेडियो एकांकी**– 'समरेखा–विषमरेखा',' ऊँचा पर्वत गहरा सागर', 'बदलते परिवेश', 'साँप और सीढ़ी', 'दस बजे रात', ''जज का फैसला', 'दरिन्दा', 'सड़क' आदि विष्णु प्रभाकर के सर्वाधिक प्रसिद्ध रेडियो एकांकी हैं।

बोध प्रश्न

1. सही उत्तर पर सही का चिह्न और गलत उत्तर पर गलत का चिह्न लगाइये।
   (क) विष्णु प्रभाकर ने केवल नाटक की रचना की है।
   (ख) बिन्दू 'श्वेत कमल' नाटक का पुरुष पात्र है।
   (ग) 'डॉक्टर' मनोवैज्ञानिक नाटक है।
   (घ) 'सत्ता के आर–पार' में भरत का अंतर्द्वन्द्व है।
   (ङ) बाहुशाली 'किरण और कुहासा' का पात्र है।
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) वेलुत्तम्पी.......नाटक का पात्र है।
   (ख) ....सम्मान लौटाने की घोषणा विष्णु प्रभाकर ने की।
   (ग) डॉ. अनीला .... नाटक की पात्र हैं।
   (घ) डॉ. अनीला का नाम पहले...............था।
   (ङ) 'कुहासा और किरण' ....नाटक है।

3. सही विकल्प चुनिए :

(क) विष्णु प्रभाकर का जन्म हुआ था :

(अ) उत्तर प्रदेश में (ब) बिहार में

(द) मध्य प्रदेश में (स) हिमाचल प्रदेश में।

(ख) कौन सा नाटक विष्णु प्रभाकर का नहीं है?

(अ) 'कबिरा खड़ा बजार में', (ब) 'डॉक्टर',

(द) 'सत्ता के आर–पार', (स) 'श्वेत कमल'

(ग) कौन सा एकांकी विष्णु प्रभाकर का है?

(अ) ''साँप और सीढ़ी', '(ब) दीपदान',

'(द) भोर का तारा', (स) 'कारवाँ'

(घ) कौन सा एकांकी विष्णु प्रभाकर का नहीं है?

(अ) ''प्रतिशोध'', (ब) 'हत्या के बाद',

(द) 'अशोक', (स) 'मयूर पंख'

(ङ) विष्णु प्रभाकर के मामा जी थे :

(अ) 'आर्यसमाजी, (ब) गाँधीवादी,

(द) आंबेडकरवादी, (स) मार्क्सवादी।

12.3.3 अन्य साहित्य

विष्णु प्रभाकर ने कहानी से अपनी रचना का आरंभ किया था। प्रकाशित कहानियों में वे सबसे पहली सुरक्षित कहानी 'स्नेह' को मानते हैं। यह कहानी लाहौर से निकलने वाले मासिक पत्रिका' अलंकार' में छपी थी, जिसके संपादक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार थे। 1936 में उन्होंने 'संघर्ष के बाद' कहानी लिखी, जो बाद में 'हंस' में प्रकाशित हुई। उनके कई महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं जैसे–'रहमान का बेटा', 'जिन्दगी के थपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'सफर के साथी', 'खंडित पूजा', 'मेरी तैंतीस कहानियाँ', 'पुल टूटने से पहले', 'जीवन पराग' आदि। इनकी कहानियों में पारिवारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं, मूल्यों को बचाने की कोशिश, मानवता की प्रतिष्ठापना, सामाजिक और शासकीय विडंबनाओं आदि का चित्रण है।

'नाग फाँस', 'शरीर से परे', 'धरती अब भी घूम रही है', 'चाची', 'अभाव' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। विष्णु प्रभाकर ने कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं। जैसे 'निशिकान्त', 'तट के बंधन', 'स्वप्नमयी', 'दर्पण का व्यक्ति', 'और कोई तो', 'अर्धनारीश्वर' आदि। 'निशिकान्त' उनका पहला उपन्यास है, जिसमें 1920 से 1936 तक के सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का चित्रण है। इसमें निशिकान्त के सामाजिक संकीर्णताओं से बाहर निकलने का संघर्ष है। 'मेरे साक्षात्कार' में विष्णु प्रभाकर कहते हैं–"धर्म और जाति के नाम पर जो कुछ मैंने देखा, मानवचरित्र की जिन निचाइयों और गिरावटों का मैंने अनुभव किया, वे कालांतर में मेरे साहित्य की प्रेरणा शक्तियाँ बनीं। इसलिए मैं उत्कृष्ट मानवता की खोज में व्यग्र और व्यस्त हो उठा। मेरे पहले उपन्यास 'निशिकान्त' में इसकी कुछ झलक देखी जा सकती है"। इस उपन्यास की कमला धर्म और समाज की संकीर्णता से अकेले संघर्ष करती है।

उपन्यास लेखन की ओर विष्णु प्रभाकर क्यों प्रवृत्त हुए इसके संबंध में उनकी मान्यता है कि कहानी और नाटक की अपनी सीमाएँ हैं लेकिन उपन्यास में अभिव्यक्ति का कोई बंधन नहीं है। इसका कैनवस काफ़ी विस्तृत है और यह अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त

माध्यम है। वे कहते हैं कि "अपने को मुक्त करने का आनन्द जितना उपन्यास के माध्यम से संभव हो सकता है, उतना कहानी या नाटक के माध्यम से नहीं"।

'तट के बंधन' में भारत और पाकिस्तान में फँसी हुई नारी के शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का मार्मिक चित्रण है। नारी जीवन की त्रासदी का चित्रण करते हुए वे नारी को स्वयं अपनी मुक्ति के मार्ग के निर्माण की प्रेरणा देते हैं।

'स्वप्नमयी' उपन्यास में भी नारी समस्याओं की अभिव्यक्ति है। घर और बाहर के दायित्वों का निर्वाह करती हुई एक माँ की कठिनाइयों का इसमें मार्मिक चित्रण है।

'दर्पण का व्यक्ति' उपन्यास सामाजिक समस्याओं पर आधारित है। समाज में नारी की स्थिति, विधवा विवाह, तलाक आदि की समस्याओं और सामाजिक विडंबनाओं का इसमें चित्रण है।

'कोई तो' उपन्यास में भी मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों का चित्रण है।

'अर्धनारीश्वर' उपन्यास पर उनको साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। विष्णु प्रभाकर इसे कथ्य और मर्म की दृष्टि से 'कोई तो' उपन्यास का विस्तार मानते हैं। उनके सभी उपन्यासों में नारी–मुक्ति की बेचैनी और इसके लिए संघर्ष है, फिर भी वे नारी के जीवन को पश्चिमी दृष्टि से नहीं देखते हैं। नारी में संघर्ष करने की शक्ति है और विजयिनी बनने की आकांक्षा भी है, जो उनके उपन्यासों में भी आप देख सकते हैं।

विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यासों में जाति–पाँति के भेद भाव, नारी जीवन की विसंगतियों, हिन्दू–मुस्लिम की समस्याओं, परंपरागत संस्कारों, सामाजिक संकीर्णताओं से मुक्ति, अशिक्षा की समस्या आदि का वर्णन किया है।

अपने यात्रा–साहित्य के बारे में 'मेरे साक्षात्कार' में विष्णु प्रभाकर कहते हैं– "लगभग डेढ़ वर्ष (1955–57) तक आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर के पद पर रहा। इस काल में जैसे कोई नियम नहीं रह गया था। 11 बजे से रात के 10–11 बजे तक वहीं रहता था। यात्रा का एकमात्र ऐसा शौक बचा है, जिसके लिए मैं बड़ा संकट उठाने के लिए तैयार रहता हूँ। हिमालय के अनेक तीर्थ स्थानों में घूम आया हूँ। दुर्गम मार्गों पर भी चला हूँ। वर्ष में कम से कम एक महीना मैं इसलिए निश्चित करता हूँ"। 'ज्योतिपुंज हिमालय', 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' उनके प्रमुख यात्रा–वृत्तांत हैं।

'ज्योतिपुंज हिमालय' में विष्णु प्रभाकर की तीन यात्राओं का वर्णन है, विभिन्न स्थानों के 16 छायाचित्र भी हैं। इसमें लेखक के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक और भौगोलिक विचार व्यक्त हुए हैं।

'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' में छोटी–छोटी यात्राओं का वर्णन है। इसके अंतर्गत 21 लेख संकलित हैं। 'आवारा मसीहा' विष्णु प्रभाकर की अमर कृति है, जो शरतचन्द्र की जीवनी है। इसमें इन्होंने शरतचन्द्र के जीवन को तीन पर्वों में बाँटा है–1. 'दिशाहारा', 'दिशा की खोज' और 'दिशान्त'। 'दिशाहारा' में शरतचन्द्र के बचपन का चित्रण है, 'दिशा की खोज' में उनके लेखन का विकास है और 'दिशान्त' में उनके लेखन के स्वर्णयुग का चित्रण है।

12.4 विष्णु प्रभाकर की रचना दृष्टि

विष्णु प्रभाकर की रचना दृष्टि पर गाँधीवाद का प्रभाव था। इनके नाटकों में अहिंसा की प्रतिष्ठापना और युद्ध की व्यर्थता इसी के कारण है। वे अपनी माँ और अपनी पत्नी की सहिष्णुता से काफ़ी प्रभावित थे, लेकिन समाज में स्त्री–जीवन की त्रासदी देखकर

वे बेचैन भी होते थे। वे वैष्णव थे और करुणा एवं मानवता को महत्त्व देकर राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में पात्रों को सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से तो देखा लेकिन जहाँ मूल्यों का विघटन हआ, उन्होंने किसी न किसी पात्रों या घटनाओं के माध्यम से उसका विरोध किया।

'मेरे साक्षात्कार' में विष्णु प्रभाकर ने यह स्वीकार किया है कि उनकी रचनाओं की अंतर्वस्तु में उनके देखे हुए बिंब और घटनाएँ हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि यथार्थवादी रही है। आदर्श को भी उन्होंने महत्त्व दिया है लेकिन उतना ही, जिससे यथार्थ को बचाया जा सके। विष्णु प्रभाकर भारतीय संस्कृति को महत्त्व देते थे, परंपराएँ उन्हें प्रिय थीं, लेकिन वे रूढ़ियों, संकीर्णताओं, जातिगत भेद–भाव आदि का विरोध करते थे।

विष्णु प्रभाकर नारी मुक्ति के समर्थक तो थे, लेकिन पाश्चात्य मार्ग पर उनका चलना उन्हें अप्रिय था। 'मेरे साक्षात्कार' में वे कहते हैं– ''नारी मात्र देह के स्तर पर जी नहीं सकती, इसका सबसे बड़ा कारण है कि वह माँ है।'' वे किसी भी विचारधारा और सिद्धांत से अपने को मुक्त रखना पसंद करते थे जिससे वे प्रचारतंत्र का अंग नहीं बने और उन्होंने समाज, राजनीति आदि की सच्चाई को खुलकर अभिव्यक्ति दी।

विष्णु प्रभाकर की दृष्टि में दलितों, वंचितों और शोषितों के लिए मानवता और करुणा के भाव हैं। उनका साहित्य आदर्शोन्मुख न होकर यथार्थ के अधिक निकट है। वे यह तो मानते थे कि साहित्यकार जिन आदर्शों की स्थापना करना चाहते हैं, उन्हें जीवन में भी उतारना चाहिए लेकिन यह भी मानते थे कि चारित्रिक द्वन्द्व से साहित्य को नया आयाम मिलता है। इससे साहित्य में विविधता आती है। वे अन्याय का विरोध आवश्यक मानते थे, लेकिन अहंकार का विस्फोट उनके लिए अनुचित था। 'सत्ता का आर–पार' इसका सशक्त उदाहरण है।

विष्णु प्रभाकर साहित्य–सृजन के लिए वेदना और पीड़ा को भी आवश्यक मानते थे। वे यह मानते थे कि हर मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए जीता है। इससे उनकी रचना दृष्टि में सामाजिकता के भाव काफ़ी प्रबल हैं। विष्णु प्रभाकर लेखक की ईमानदारी को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। वे आर्यसमाजी थे और स्वाधीनता संग्राम से भी जुड़े थे। वे आदर्श में भी यथार्थ देखते थे।

12.5 विष्णु प्रभाकर के साहित्य की विशेषताएँ

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर विष्णु प्रभाकर के साहित्य में निम्नलिखित विशेषताएँ आप देख सकते हैं–

1. **प्रामाणिक अनुभूति का महत्त्व यानी लेखन में ईमानदारी**– विष्णु प्रभाकर ने समाज और जीवन में जो कुछ देखा, उसे उन्होंने ईमानदारी से अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। 'निशिकांत' उपन्यास में निशिकांत उनके ही जीवन के यथार्थ से बँधा हुआ दिखाई देता है। विष्णु प्रभाकर यह मानते थे कि कोई भी सजग मनुष्य अपने परिवेश से अलग नहीं रह सकता है। परिवेश में कई तरह की विचारधाराएँ रहती हैं और रचनाकार अपने विवेक और बुद्धि से ही उनसे प्रभावित होता है।

2. **यथार्थवादी दृष्टिकोण**– विष्णु प्रभाकर समाज में घट रही घटनाओं का वैचारिक मंथन करते थे और उसे अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देते थे। 'साँप और सीढ़ी' एकांकी को ही यदि आप देखें तो समाज में किस तरह की अराजकता और भ्रष्टाचार है, इसे आप देख सकेंगे। नीचे दिए गए उद्धरणों को आप देखिए–

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

''अजित : (अल्प विराम) लगता है सारा देश बीमार है। धरती जैसे नरक का पर्याय बन गयी है। कहीं धर्म की बोली लगती है तो कहीं ईमान की। कहीं सोना बिकता है तो कहीं शरीर। बाहर से सब शांत है पर भीतर हर कदम पर नकाबपोश डाकू घूमते हैं जैसे कभी मैं घूमता था। (अल्प विराम के बाद अन्तर्मुखी स्वर) कितने संघर्ष के बाद मैंने इस जीवन से मुक्ति पाई थी, पर लगता है जैसे ये शरीफजादे मुझे फिर से उसी नरक में धकेलने को कृत सकल्प हैं''। (साँप और सीढ़ी)

''मैं जानती हूँ उसके सपने पूरे नहीं होने थे, नहीं हुए। काश कोई यहाँ उसे यह बात समझा पाता पर यहाँ तो वह मार ही खाती रही। वहाँ भी मार खायी उसने उस युवक से, शारीरिक और मानसिक दोनों, और वेश्या बनने का साहस न पाकर आत्महत्या कर बैठी। (दूर से आता स्वर) न जाने कितनी लड़कियाँ इस प्रकार वेश्या बनती हैं या आत्महत्या करती हैं। किसी के पास लेखा–जोखा है इस बात का''? (श्वेत कमल)

3. **गाँधीवाद की अहिंसा**– अहिंसा में विष्णु प्रभाकर का विश्वास रहा और वे हिंसा या वर्ग–संघर्ष को समाज या राष्ट्र के लिए उपयोगी नहीं मानते थे। हिंसा से मुक्ति को वे अध्यात्म या तप में देखते थे। उनका अहिंसावाद उनके मानवतावाद और समाज के कल्याण के लिए था। 'मेरे साक्षात्कार' में वे कहते हैं– "आज मात्र मानवता की खोज ही मेरा लक्ष्य है। अर्थात् अपने को समझने की खोज। अपने और दूसरे के संबंधों की खोज। वैयक्तिक 'स्व' से समष्टिगत 'स्व' के समन्वित होने की प्रक्रिया की खोज"।

4. **विषयों की विविधता**– विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में एक ओर सामाजिक विसंगतियाँ हैं, तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता के प्रश्न हैं। जहाँ मूल्यों के ह्रास और नैतिकता के खत्म होने की बेचैनी है, वहीं मूल्यों को बचाने की कोशिश भी है। इनकी रचनाओं में युग को विभिन्न संदर्भों में आप देख सकते हैं। इसके साथ विष्णु प्रभाकर ने मनोविज्ञान से संबंधी भी कुछ प्रश्न अपनी रचनाओं में उठाए हैं, जो समाज को दिशा देने के उद्देश्य से भी जुड़े हैं। इस संदर्भ में 'डॉक्टर' नाटक को आप देख सकते हैं।

5. **भारतीयता और राष्ट्रीयता का महत्त्व**– 'मेरे साक्षात्कार' में विष्णु प्रभाकर कहते हैं– ''आजादी से पहले अधिकांश लोग देश–प्रेम के कारण ही आंदोलनों में भाग लेते थे, लेकिन पेशेवर नेताओं में देश–प्रेम कहाँ? अब कोई भी ऐसा नेता नहीं, जिसे लोग आदर्श मानते हों। फिर भी सांस्कृतिक दृष्टि से भारत एक है। आज भी दक्षिण भारतीय हिमालय की यात्रा करता है और उत्तर का आदमी कन्याकुमारी–रामेश्वरम् की''। उनकी राष्ट्रीयता की भावना आप 'कुहासा और किरण' और 'केरल का क्रांतिकारी' जैसे नाटकों में देख सकते हैं।

6. **मानवतावाद और करुणा की प्रतिष्ठापना**– लेखन के आरंभिक दौर में विष्णु प्रभाकर आर्य समाज से जुड़े रहे थे, फिर धीरे–धीरे वे इससे दूर होने लगे और गाँधीवाद का उनके ऊपर प्रभाव दिखाई देने लगा, लेकिन बाद में वे इससे भी दूर होने लगे और उनकी रचनाओं का मुख्य स्वर मानवता और करुणा हो गया।

7. **चरित्र के अंतर्द्वन्द्व के कारण अंतर्वस्तु में विविधता**– विष्णु प्रभाकर यह मानते थे कि साहित्यकार जो लिखता है, उसे अपने जीवन में भी साहित्यकार को उतारना चाहिए। साथ ही वे यह भी मानते थे कि अगर ऐसा होता है, तो उसकी रचनाओं की अंतर्वस्तु में विविधता नहीं होगी। तात्पर्य यह कि रचनाकार का अंतर्द्वन्द्व ही उसकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र के विभिन्न पक्षों का साक्षात्कार कराता है।

8. **अन्वेषक दृष्टिकोण**– विष्णु प्रभाकर समाज की विभिन्न समस्याओं को अन्वेषक दृष्टिकोण से देखते थे, जिसकी झलक आप उनके नाटकों, उपन्यासों, कहानियों और 'आवारा मसीहा' में देख सकते हैं।

9. **पाश्चात्य विचारों का अस्वीकार**– विष्णु प्रभाकर नारी–मुक्ति के प्रश्न तो अपनी रचनाओं में उठाते हैं, लेकिन नारी का पाश्चात्य प्रभाव में ढलना उन्हें स्वीकार नहीं है। परंपरा के उल्लंघन में वे नारी की हार को देखते हैं। 'टगर' नाटक में आप इसे देख सकते हैं।

10. **समाज और राज्य का व्यक्ति से अधिक महत्त्व**– विष्णु प्रभाकर व्यक्ति की स्वतंत्रता को तो महत्त्व देते थे, लेकिन समाज से अलग व्यक्ति के अस्तित्व को वे स्वीकार नहीं करते थे। 'सत्ता के आर–पार' में वे समाज के ही पक्ष में दिखाई देते हैं– "भाइयों को जीतना राजधर्म का पालन क्या राजधर्म सहोदरों को पराजित करना है नहीं, नहीं, भाइयों को जीतना, राजधर्म, भाइयों से युद्ध, नहीं, नहीं–नहीं... ।"

बोध प्रश्न

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :
   - (क) विष्णु प्रभाकर को साहित्य अकादमी का पुरस्कार................उपन्यास पर मिला।
   - (ख) विष्णु प्रभाकर की पत्नी का नाम.........था।
   - (ग) विष्णु प्रभाकर का बचपन का नाम.........था
   - (घ) कलर्क ने विष्णु प्रभाकर का नाम...........कर दिया।
   - (ङ) ज्योतिपुंज हिमालय में.........छायाचित्र हैं।

5. सही पर सही और गलत पर गलत का चिह्न लगाइए।
   - (क) नाटक लेखन के क्षेत्र में विष्णु प्रभाकर पर प्रभाकर माचवे की बातों का प्रभाव पड़ा।
   - (ख) विष्णु प्रभाकर उपन्यास को अभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम मानते थे।
   - (ग) विष्णु प्रभाकर ने नारी–मुक्ति के प्रश्न उठाए।
   - (घ) विष्णु प्रभाकर अंतर्मुखी स्वभाव के नहीं थे।
   - (ङ) माँ का साथ छूटने पर विष्णु प्रभाकर पर प्रभाव पड़ा।

6. विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

7. विष्णु प्रभाकर की रचनाओं की विशेषताएँ बताइए।

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

....

....

....

....

....

....

....

8. विष्णु प्रभाकर की रचना–दृष्टि पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

12.6 सारांश

इस इकाई में आपने विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व, साहित्य, रचना–धर्म, रचना–दृष्टि, उनके साहित्य की विशेषताओं तथा उनकी अलग–अलग विधाओं की रचनाओं का अध्ययन किया। विष्णु प्रभाकर ने लगभग सभी विधाओं में रचनाएँ की हैं और उनका दृष्टिकोण समाजोन्मुखी रहा है। वे यथार्थवादी लेखक हैं और आदर्श में भी यथार्थ को तलाशते रहे हैं। विष्णु प्रभाकर रंगमंच और आकाशवाणी से जुड़े रहे, जिससे उनके नाटकों में रंगमंचीय सूक्ष्मता है। उनके ध्वनि नाटक काफ़ी प्रभावकारी और लोकप्रिय हैं। वे राष्ट्रवादी रहे, सामाजिक भी रहे, जिससे उनकी रचनाओं में वैयक्तिकता से अधिक समाज का महत्त्व है। मानवीय मूल्यों के लिए विष्णु प्रभाकर काफी सजग रहे। उनकी सभी रचनाओं में मूल्यों की प्रतिष्ठापना के प्रयत्न हैं। विष्णु प्रभाकर साहित्य की सभी विधाओं की विशेषताओं और सीमाओं से परिचित थे। नारी जीवन की विसंगतियों और त्रासदी ने उन्हें काफ़ी विचलित किया फिर भी वे नारी को कमज़ोर नहीं मानते थे। वे नारी सशक्तीकरण पर बल देते थे, उनकी स्वतंत्रता के भी समर्थक थे, लेकिन मर्यादा के उल्लंघन में वे नारी की हार देखते थे। उनकी रचनाओं में मनोविज्ञान भी है। उन्होंने बाल साहित्य के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

12.7 उपयोगी पुस्तकें

1. मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन
2. विष्णु प्रभाकर व्यक्ति और साहित्य, संपादक डॉ. महीप सिंह

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) गलत (ख) गलत

(ग) सही (घ) सही

(ङ) गलत

2. (क) केरल का क्रांतिकारी (ख) पद्मभूषण

(ग) डॉक्टर (घ) मधुलक्ष्मी

(ङ) राजनीतिक

3. (क) (अ) उत्तरप्रदेश में (ख) (अ) कबिरा खड़ा बजार में

(ग) (अ) साँप और सीढ़ी (घ) (स) मयूर पंख

(ङ) (अ) आर्यसमाजी

4. (क) अर्धनारीश्वर (ख) सुशीला

(ग) विष्णु दयाल, (घ) विष्णु दत्त

(ङ) 16

5. (क) सही (ख) सही

(ग) सही (घ) गलत

(ङ) सही

6. उत्तर के लिए देखिए 12.3.3

7. उत्तर के लिए देखिए 12.5

8. उत्तर के लिए देखिए 12.4

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13: 'और वह जा न सकी' का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 कथावस्तु
13.2.1 आरंभ
13.2.2 विकास
13.2.3 अंत
13.3 पात्र
13.3.1 प्रमुख पात्र
13.3.2 सहायक पात्र
13.3.3 अन्य पात्र
13.4 परिवेश
13.5 संरचना–शिल्प
13.5.1 भाषा
13.5.2 शैली
13.5.3 संवाद
13.6 अभिनेयता या रंगमंचीयता
13.7 सारांश
13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.9 उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इकाई 13 के अंतर्गत आप नाटककार–कहानीकार विष्णु प्रभाकर का बहुचर्चित एकांकी 'और वह जा न सकी' का अध्ययन–विश्लेषण करने जा रहे हैं। एक सिद्धहस्त एकांकीकार के एकांकी के माध्यम से आपको एकांकीकार और एकांकी की कला का परिचय मिलेगा। नाटक और एकांकी के मूलभूत अंतर से भी आप परिचित हो सकेंगे 'और वह जा न सकी' एकांकी के विश्लेषण से आप एकांकी के कथानक और उसके संरचना शिल्प दोनों पक्षों का गहनता से अध्ययन कर पाएँगे। इस इकाई को पढ़ने के उपरांत एकांकी के कथ्य और रूप के साथ आप इन बिंदुओं पर विचार कर पाएँगे :

- एकांकीकार विष्णु प्रभाकर का संक्षिप्त परिचय पा सकेंगे;
- एकांकी के कथानक और उसकी चरम सीमा से परिचित हो सकेंगे;
- कथानक के ढाँचागत वैविध्य– आदि, मध्य और अंत के साथ इसके क्रमिक विकास को जान सकेंगे;
- एकांकी के प्रमुख, सहायक और गौण पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को जान पाएँगे।

- एकांकी के संरचना–शिल्प और उसके अंतर्गत भाषा–शैली के महत्त्वपूर्ण घटकों की जानकारी हो सकेगी;
- एकांकी के चुस्त कलेवर में उसके संवादों की भूमिका पर विचार कर सकेंगे; और
- अभिनेयता या रंगमंचीयता की दृष्टि से एकांकी की विशिष्टताओं को जान सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

नाटक मूलतः दृश्य विधा है। इस रूप में वह पाठ्य विधाओं–कविता, कहानी, उपन्यास आदि से गुणात्मक रूप से भिन्न है। नाटक को 'पंचम वेद' की संज्ञा इसीलिए प्राप्त है कि उसे साक्षर के साथ निरक्षर जनता भी देख–सुनकर आनंदित और प्रेरित हो सकती है। आधुनिक युग में नाटक के साथ एकांकी का आगमन भी हुआ। नाटक जहाँ अनेक अंकों और उन अंकों में अनेक दृश्यों की योजना के साथ सामाजिक या दर्शक के सम्मुख मंचित होता है वहाँ एकांकी एक अंक में एक दृश्य वाला भी हो सकता है और अनेक दृश्यों की योजना वाला भी। एकांकी नाटक एक अंक में तेजी से घटित घटनाओं और क्षिप्र संवादों के क्रम को लेकर सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक जीवन के किसी एक पक्ष को अधिकतर समय–स्थान–कार्य की एकता के ढाँचे में प्रस्तुत करता है। हिंदी के प्रमुख एकांकीकार रामकुमार वर्मा ने नाटक और एकांकी के अंतर को इस रूप में समझाया है– ''सम्पूर्ण नाटक किसी ताल्लुकेदार की भाँति अपने मसनद पर बैठकर अपने सम्पूर्ण गाँव की उपज पर विचार करता है। अलग–अलग खेतों के दृश्य उसकी आंखों में झूलते हैं और विविध पात्रों की भांति उनके स्वामियों के अधिकार–क्षेत्र का निर्धारण करता है, किंतु एकांकी तो केवल एक किसान मात्र है, जिसके पास एक छोटा–सा कटा–छँटा खेत है। यह अपनी भूमि की किस्म को जानता है और उसमें उत्पन्न होने वाले प्रत्येक गेंहू के बाल और उसमें छिपे दानों के पुष्ट होने के समय से परिचित है। वह अपने खेत को चारों ओर से देखता है और बीच में मचान बनाकर उसमें बैठे हुए रातभर जागता रहता है।'' इस तरह नाटक में कथा, पात्र, देशकाल, समस्या आदि के विविध पक्ष जहाँ विस्तार से प्रस्तुत होते हैं वहाँ एकांकी पात्र, कथा और उद्देश्य की दृष्टि से संक्षिप्ति के कलेवर को लेकर चलता है।

विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'और वह जा न सकी' एकांकी पारिवारिक जीवन की एक झलक के माध्यम से घर में पति–पत्नी के आपसी संबंध की परख करता है। एकांकी के माध्यम से आप जान पाएँगे कि कैसे पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते संबंधों के बीच एक स्वस्थ स्थायी धरातल को एकांकीकार खोजता है। इस पाठ से आप समझ सकेंगे कि एक परिवार के बेहद निजी प्रसंग को चित्रित करके एकांकीकार किस उद्देश्य की पूर्ति कर रहा है। जीवन स्थितियों के बीच उसके पात्र अपना और जीवन का किस रूप में विकास कर पाते हैं। साथ ही सामाजिक यथार्थ को देख पाने की एकांकीकार की दृष्टि आपको किन रूपों में समृद्ध करती है– इसका ज्ञान भी पाठ–विश्लेषण के क्रम में होगा। नाटक के पूर्णकालिक और अनेक अंकों की योजना के कलेवर से भिन्न एक अंक का यह एकांकी रंगमंचीय कौशल से किस प्रकार युक्त है–आप यह भी समझ सकेंगे।

13.2 कथावस्तु

साहित्यकार विष्णु प्रभाकर के लेखन का धरातल गद्य है। गद्य में भी उनकी प्रिय विधाएँ–कथा और नाटक–एकांकी, जीवनी और आत्मकथा हैं। शरतचंद्र के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' उनके द्वारा लिखी गई सुप्रसिद्ध जीवनी है। अनेक उपन्यासों और कहानी–संग्रहों की रचना के साथ 'हत्या के बाद',' नव प्रभात',' डॉक्टर',' टूटते परिवेश' आदि नाटकों के साथ 'बारह एकांकी' शीर्षक से उनका एकांकी संग्रह भी प्रकाशित हुआ। 'पंखहीन' शीर्षक से उनकी विस्तृत आत्मकथा भी तीन खंडों में प्रकाशित हुई।

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

'और वह जा न सकी' एकांकी उनके एकांकी–संग्रह का एक विशिष्ट एकांकी है। सन् 1951 में लिखा गया यह एकांकी विष्णु प्रभाकर की कहानी 'गृहस्थी' का एकांकी में रूपांतरण है। यह एकांकी उनके 'बारह एकांकी' नामक संग्रह में प्रकाशित हुआ जिसे ज्ञानपीठ प्रकाशन ने प्रकाशित किया था। इस एकांकी की कथावस्तु रोचक और द्वंद्व की मनोभूमि पर आधारित है। यह एक पारिवारिक एकांकी है परंतु एक परिवार के माध्यम से एकांकीकार ने जीवन–समाज के महत्त्वपूर्ण पक्षों को उजागर किया है। एकांकी की कथावस्तु की निर्मिति उसमें घटित घटनाओं की क्रिया–प्रतिक्रिया के ताने–बाने से सृजित होती है। घटनाओं की कारण–कार्य श्रृंखला भी इसमें समाहित होती है। कुछ एकांकीकार इस श्रृंखला को प्रत्यक्ष रूप से सरलता के साथ प्रस्तुत करते हैं तो अनेक बार पाठक और दर्शक को यह दायित्व सौंपते हैं कि वह एकांकी की जटिल संरचना के भीतर से घटनाओं और उनके निहितार्थों की गहराई तक पहुँचें। विष्णु प्रभाकर का एकांकी 'और वह जा न सकी' एक अंक के भीतर एक दृश्य की योजना में पूर्ण होता है। कथावस्तु भी भारतीय पारिवारिक संरचना के भीतर बहुत जानी–पहचानी है। स्थितियों के उतार–चढ़ाव से कथा आगे बढ़ती है। हम इस एकांकी के कथानक को सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त करके समझ सकते हैं– आरंभ, विकास और अंत।

13.2.1 आरंभ

'और वह जा न सकी' एकांकी का आरंभ घर के एक कमरे से होता है। घर के सभी सदस्य एकांकी के आरंभ से ही दर्शक/पाठक के सामने आ जाते हैं। यह तीन पात्र हैं–पिता शैलेंद्र, पत्नी शारदा और बेटा शरत्। एकांकी के आरंभ से ही मंच पर शैलेंद्र लेटा हुआ किताब पढ़ने में व्यस्त दीखता है कि अचानक उसकी पत्नी और बेटा बाहर से घर के भीतर प्रवेश करते हैं। घटनाक्रम भी बिना क्षण गँवाए घटित हो जाता है। एक सूचना के साथ घर में हलचल मच जाती है जब बच्चा सूचित करता है कि ''पिताजी, डॉक्टर ने कहा है कि अम्मा की उँगली कटेगी।'' बच्चे की बात सुने बिना ही उसकी माँ शारदा घर के भीतर कहीं चली जाती है और पिता शैलेंद्र, तख्त पर चढ़े बच्चे को नीचे उतारने में लग जाता है। जल्द ही पता चलता है कि उंगली में फुंसी हो जाने की वजह से डॉक्टर ने फुंसी की सफाई की बात कही है। पिता बेटे को बाहर भेजकर फिर पढ़ने लगता है। पत्नी, शैलेंद्र के लिए दूध लाते हुए शिकायत करती है कि घर में आटा समाप्त हो चुका है। वह चाहती है कि पति अभी उठे और आटे की व्यवस्था करे। धीरे–धीरे घर की वास्तविक स्थिति सामने आती है। इस घर का पुरुष वास्तव में एक ज्ञानी और सुचिंतित लेखक है। जिसका बाहरी समाज में मान–सम्मान है। प्रतिदिन अनेक लोग उससे सलाह–मशविरे और संवाद के लिए घर आते हैं। यही उसकी दिनचर्या है। इन अतिथियों के स्वागत–सत्कार का दायित्व पत्नी पर है। उनके लिए भोजन आदि की संपूर्ण व्यवस्था का दायित्व यानी बाजार से सौदा लाना, पड़ोस से उधार भी, उसे पकाना और परोसना भी। दूसरे, लेखक की बँधी–बँधाई आमदनी के अभाव में लेख–कहानी प्रकाशित होने पर पारिश्रमिक स्वरूप जो आय होती है उस सीमित आय से ही घर का गुजारा चलता है। पति का पारिवारिक दायित्वों की उपेक्षा करना, लेखन–पठन–विचार–संवाद में व्यस्त रहने के कारण और अनिश्चित–सीमित आय के विपरीत अधिक खर्चे से शारदा सदैव खिन्न और असंतुष्ट रहती है। प्रतिदिन मेहमानों का आना उसके दायित्वों और दुख में वृद्धि करता है। उसकी झुंझलाती मुद्रा पति से प्रश्न करती है– ''मैं पूछती हूँ कि आप अपनी काहिली और निकम्मेपन को बातों के पीछे क्यों छिपाते हो? कुछ करते क्यों नहीं? यदि ऐसे ही जीवन बिताना था तो शादी क्यों की? क्यों इस शहर में आकर बसे? कहीं जंगल में जाकर रहते! कान खोलकर सुन लो, मैं अब इस तरह आपका घर नहीं चला सकती।''

शारदा का लेखक पति शारदा की शिकायतों का आदी है। वह उसे आने वाले पाँच अतिथियों के लिए भोजन तैयार करने के लिए कहता है। अभाव और सत्कार की चिंता

के बीच झूलती शारदा को बालक शरत् सहारा देने का प्रयास करता है। अल्पायु का शरत् एक संवेदनशील बालक है जो माँ के दायित्वों में हाथ बँटाने का प्रयास करता है। उसे माँ की उंगली की चिंता भी है। अतिथियों के खाने की चिंता के कारण शारदा बेटे को पड़ोस में रहने वाली अपनी सखी के घर आटा लाने भेजती है पर शरत् खाली हाथ लौटता है। पड़ोसन उसे हर तीसरे दिन मांगने आने का ताना देती है। शारदा का तनाव और अधिक गहराता है। एक ओर पति का निकम्मापन दूसरी ओर घर पर भोजन की प्रतीक्षा करते अतिथि, तीसरी ओर आटा न मिलने से उत्पन्न खीज और चौथे घर और पति का अपमान। इन सबके बीच घिरी शारदा स्वाभिमान की आग से इस चौतरफा आक्रमण से जूझती है। इस प्रकार एकांकी अपने आरंभ से ही शैलेंद्र के दीन–दुनिया से विमुख आचरण को, उसके व्यवहार से शारदा के तनाव को और शारदा के तनाव को अपनी सेवा से कम करते बालक शरत् की चेष्टाओं को दर्शाता है।

13.2.2 विकास

एक ओर घर में आए अतिथियों के लिए खाद्य साम्रगी के अभाव में समूची व्यवस्था करना तो दूसरी ओर अधिकारपूर्वक पड़ोसन सखी से मदद के लिए भेजे गए बेटे का खाली हाथ अपमानित होकर लौटना शारदा की मनःस्थिति को और अधिक आहत करता है। एकांकी जब विकास के क्रम में विस्तार पाता हुआ आने वाली घटनाओं के बीच खड़ा होता है तब शारदा की पड़ोसन शशि का आगमन होता है। वह मदद के लिए आटा अवश्य लाती है पर शारदा से हुए उसके संवाद से स्थितियाँ अधिक विकृत होती चली जाती हैं। शारदा–शशि के बीच घटित संवाद एकांकी के द्वंद्व को गहराता है। यहाँ तनाव की स्थितियाँ अपने चरम पर पहुँचने लगती हैं। शारदा अपनी पड़ोसन सखी द्वारा पति के अपमान का प्रतिकार करती है। समय पर की गई शशि द्वारा मदद के बाद ली गई वस्तुएँ उसे वापिस लौटाने की बात भी शारदा स्वाभिमान से कहती है। दोनों के बीच तकरार बढ़ती है। स्वयं पति को निकम्मा कहने वाली शारदा, शशि से कहती है– ''बस–बस शशि रहने दे! उन तक न जा। उन्हें तू खिला रही है क्या?''

एकांकी के इस भाग में शारदा का शशि से आत्मीय और सहयोग के संबंध का भरोसा टूटता–सा दिखाई देता है। शारदा की जीवन–स्थितियाँ अधिक जटिल होती जाती हैं। उसके निजी जीवन की खीझ सार्वजनिक रूप में सामने आकर परिवार की प्रतिष्ठा के लिए एक प्रश्न बन जाती है। वह पूरा प्रयास करके इस परिस्थिति से उबरने की कोशिश करती है। इस बीच शैलेंद्र पूरे झगड़े से परे अपने मित्रों के साथ बौद्धिक विमर्श में व्यस्त रहता है। शारदा अतिथियों के कोलाहल में कुछ समय के लिए खो जाती है और इधर शशि आटा रखकर अपने घर लौट जाती है। दुखी मन से दायित्वों को अकेले सँभालती शारदा के लिए पति का आदेश आता है कि पाँच लोगों का खाना बनाकर बैठक में भिजवाए। हर तरफ से मुसीबत में घिरी शारदा का धैर्य टूट जाता है। वह अपने अस्तित्व को खोजने की पहल करती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की बात सोचते हुए वह आज किसी फैसले पर पहुँचने की व्यग्रता से भर जाती है।

विकास के क्रम में शारदा के निर्णय को और अधिक दृढ़ करने के लिए श्रीधर का प्रवेश होता है। श्रीधर पारिवारिक मित्र है जिसने शारदा के एकाकी जीवन के संघर्ष प्रत्यक्ष देखे हैं। उससे शारदा की दशा देखी नहीं जाती और वह एक सुझाव देता है कि शारदा कुछ समय के लिए गायब हो जाए। उसकी अनुपस्थिति में शैलेंद्र को न केवल उसके श्रम और महत्व का ज्ञान होगा बल्कि अपनी दायित्वहीनता का भी बोध होगा। यह एकांकी का मध्य भाग है जहाँ से एकांकी अब चरम सीमा की ओर बढ़ता है। पाठक/दर्शक सोचने पर विवश होता है कि अब इस समस्या का क्या अंत होने वाला है।

13.2.3 अंत

''और वह जा न सकी' एकांकी की चरम सीमा वह क्षण है जब शारदा अपने वैवाहिक जीवन से कुंठित होकर उससे निकलने का फैसला ले लेती है। अपना सामान बाँध लेती है परंतु घर से निकलने से पूर्व वह पति से अक्सर मिलने आने वाली प्रशंसिका शीला के साथ अपने पति का संवाद छिपकर सुनती है। उसे लगता है कि शीला और शैलेंद्र के परस्पर अनुराग की वजह से ही शैलेंद्र, शारदा से दूर हो रहा है। दोनों की बातें सुनकर शारदा का संशय मिट जाता है। शैलेंद्र, शीला की निजी जिंदगी के निर्णयों के प्रति उदासीन रहता है। वह शैलेंद्र के पास रहने आना चाहती है। इस पर शैलेंद्र घर को शारदा का घर बताता है और इस संदर्भ में सारे अधिकार शारदा के पास होने की बात करता है। शीला रोती हुई चली जाती है। शारदा भी रोती है और अपने निर्णय को कार्यरूप नहीं दे पाती। शैलेंद्र मनीआर्डर लिए उसके पास आता है और कहता है–''अरे भाई, हम निकम्मों पर गुस्सा करके क्यों खून जलाया करती हो। हम क्या ठीक होंगे। निभा लो।'' शारदा भी हँसकर कहती है–'' हटो, क्या अंटसंट बोलते हो। बैठक में जाकर अपना काम करो।''?'' इस संवाद के पश्चात एकांकी समाप्त हो जाता है।

इस एकांकी के अंत को और इसके शीर्षक 'और वह जा न सकी' को समझने की चेष्टा करें तो पहली दृष्टि में यह एकांकी सुखांत लग सकता है कि पति–पत्नी में बहस हुई पर बाद में दोनों सामंजस्य की लय पर आ गए और भविष्य में सुखी जीवन जीने की ओर बढ़ चले। वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि यह एकांकी स्त्री के जीवन से जुड़े कई प्रश्न उठाता है। नाटककार विष्णु प्रभाकर 'डॉक्टर', 'टगर', 'बंदिनी', 'अब और नहीं', 'श्वेत कमल' आदि नाटकों में भी स्त्री चेतना से सम्बद्ध अनेक प्रश्नों से जूझते हैं। 'और वह जा न सकी' जैसाकि इसके शीर्षक का निहितार्थ है कि शारदा जीवन में सहयोग और भावात्मक संबल न मिलने से वैवाहिक जीवन से निकलना चाहती है पर वह अंत में वह जा नहीं पाती। विचार किया जाना चाहिए एकांकीकार ने ऐसा अंत क्यों किया है? हम यदि विचार करें तो नाटककार मोहन राकेश के नाटक 'आधे–अधूरे' की केंद्रीय पात्र सावित्री भी अपने वैवाहिक जीवन की कड़वाहट से तंग आकर घर से जाने का स्वतंत्र निर्णय लेती है पर अंततः वह घर लौट आती है। सावित्री और शारदा की स्थितियाँ भले ही भिन्न हों पर अंत एक–सा ही है। जैसे दोनों की नियति यही है कि वह त्रस्त होकर भी उस बंधन से निकल नहीं पातीं। एकांकी का यह अंत स्त्री पक्ष की दृष्टि से यथास्थितिवाद का प्रमाण बनता है। अंत में सभी स्थितियों का सामान्य लगना भी पाठक/दर्शक का भ्रम है। इस अंत को देखकर परम्पराबद्ध समाज इसे आदर्श व्यवस्था मान सकता है लेकिन यहाँ लेखक पितृसत्ता की उस छवि को दिखाता है जहाँ पत्नी के श्रम, सेवा और त्याग का कोई मोल नहीं है। स्त्री की छटपटाहट और उसके निर्णय को निरर्थक सिद्ध माना जाता है। एकांकी में घटित घटनाएँ रोजमर्रा के जीवन की सामान्य नोंक–झोंक नहीं हैं बल्कि स्त्री–पुरुष के असमान अधिकार और कर्त्तव्यों से उपजा असंतोष है। नाटक के अंत में शारदा का घर से न जा पाना जैसे फिर से उसके जीवन में असहयोग, एकाकीपन, उपेक्षा के अनवरत क्रम का नये सिरे से शुरू होना है जो उसके समूचे व्यक्तित्व को और अधिक यांत्रिक बनाएगा।

13.3 पात्र

''यह सही है कि कथानक नाटक की प्राथमिक आवश्यकता है, पर नाटक मात्र मनोरंजन न बन कर उत्कृष्ट साहित्य में स्थान प्राप्त कर सके, इसके लिए चरित्र–चित्रण पर विशेष जोर देना अनिवार्य हो जाता है। चरित्र–चित्रण कथानक निर्माण से उच्चतर कार्य है। जार्ज सांतायना कहते हैं कि कथानक के निर्माण को हम आविष्कार कहते

हैं पर चरित्र के निर्माण को सृष्टि कहकर गौरवान्वित करते हैं।'' (हिंदी एकांकी की शिल्प–विधि का विकास : सिद्धनाथ कुमार, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।

एकांकी के संक्षिप्त कलेवर में उसके पात्रों की संख्या सीमित होती है। एकांकी के पूरे स्वरूप में न तो गौण कथाओं के लिए स्थान है, न आवांतर प्रसंगों के लिए और न ही अनावश्यक पात्रों के लिए। अपनी सीमित संख्या में यह पात्र ही हैं जो एकांकी की घटनाओं को मंच या पाठक की कल्पना में उतारकर अपने कार्य–व्यापारों, गतियों, आंगिक–वाचिक अभिनय से विश्वसनीयता प्रदान करते हैं।

एकांकी में कथा के धरातल को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने का कार्य पात्र करते हैं। एकांकी में फुललेंथ प्ले की भाँति बहुत से पात्र नहीं लिए जा सकते। इस दृष्टि से देखें तो 'और वह जा न सकी' एकांकी में पात्रों की संख्या सीमित है। प्रधान पात्रों में शैलेंद्र और शारदा हैं, सहायक पात्रों में शरत् और श्रीधर हैं तथा अन्य पात्रों में शशि, सखी और शीला हैं। कुछ अतिथि भी हैं पर उनकी भूमिका अति संक्षिप्त है। इस तरह एकांकी में मूलतः सात पात्र हैं। सात में से भी चार–पाँच ही विशिष्ट भूमिका में रहते हैं। एक विशिष्टता नामकरण को लेकर भी है। एकांकीकार ने अधिकांश पात्रों के नाम 'श' वर्ण से ही रखे गए हैं।

13.3.1 प्रमुख पात्र

शारदा

एकांकी का प्रमुख और केंद्रीय पात्र शारदा है। शारदा के दो रूप हम एकांकी में देख पाते हैं। एक रूप वह है जो विवाह से पूर्व आधुनिक विचारों, साहित्यिक अभिरुचि, प्रेम को जीवन में उतारने का साहस रखने वाली स्त्री के रूप में दिखाई देता है। जो सोचती है कि शैलेंद्र जैसे साहित्य अनुरागी लेखक से विवाह करने पर घर में कला पर चर्चा और अनेक यात्राओं का वातावरण बना रहेगा। दूसरा रूप उसकी सभी कल्पनाओं से विपरीत है। यहाँ वह अधिकांश रूप से खीझी, झुँझलाई, कुंठित, घर के दायित्वों में बँधी और निराश स्त्री दिखाई देती है। उसके अवचेतन में भारी उथल–पुथल मची है। एकांकीकार विष्णु प्रभाकर के नाटक–एकांकी के चरित्र विस्तार की अपेक्षा गहराई से अधिक रचे गए हैं। दर्शक और पाठक उनके पात्रों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि चरित्र बाह्य रूप से कहीं अधिक आंतरिक रूप में अभिव्यक्त होता है। एकांकीकार अपने पात्र के मनोविज्ञान को पकड़ पाने और रचने में समर्थ है। एकांकीकार ने यह स्वीकार किया है कि–'' मनोवैज्ञानिक नाटक लिखने में मेरी विशेष रुचि है और अपने नाटकों का ताना–बाना मैंने मनोवैज्ञानिक आधार पर ही बुना है।'' (मैं नाटक कैसे लिखता हूँ? : विष्णु प्रभाकर–साहित्य संदेश, दिसम्बर, 1955)

शारदा के चरित्र को बाह्य रूप से देखें तो वह अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट, खिन्न और पीड़ित दिखाई देती है। विशिष्टता यह है कि इस खिन्नता में भी वह पारिवारिक दायित्वों के प्रति पूरी तरह सचेत है। समर्पित भाव से उन्हें निभाती है। लेखक पति की व्यस्तता के चलते पत्नी के रूप में घर–बाहर के पूरे दायित्व निभाती है और शरत् के पालन–पोषण का दायित्व भी उसका है। बालक से उसका ममता का नाता दिखाई देता है। पास–पड़ोस और पारिवारिक मित्रों से सहयोग लेने–देने और संवाद का रिश्ता रखने की जिम्मेदारी भी शारदा की है। प्रतिदिन घर में आए पति के मित्रों–प्रशंसकों के लिए भोजन आदि बनाने से लेकर खाद्य–पदार्थों और धनादि की व्यवस्था भी उसीके जिम्मे है। घर–बाहर की अधिकांश व्यवस्था अकेले करने के कारण वह चिड़चिड़ी अवश्य हो गई है पर बालक शरत् के प्रति उसकी ममता में कोई कमी नहीं है। शरत् के व्यवहार की छोटी–बड़ी विशिष्टताओं पर उसका ध्यान जाता है और वह ममता से भर जाती है। एकांकी के दो प्रसंग इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। माँ के कामों में सहयोग करने की

शरत् की वृत्ति को देखकर वह एकांत में कहती है– ''शारदा : (स्वगत उच्छ्वसित स्वर) कितना समझदार लड़का है। इतनी उमर में दूसरे बच्चों को मुँह धोने तक का शऊर नहीं होता पर इसे कितना ध्यान रहता है मेरा! मेरी उंगली की फुंसी से कितना दुखी है। मुझे बरतन मांजते देखकर इसने कितने प्रेम से कहा था...।

एकांकी में अपने यांत्रिक और निराश जीवन से छुटकारा पाने का निर्णय लेकर वह शरत् के विषय में भी स्पष्ट निर्णय लेती है–''...शरत् मेरा है, मेरे साथ रहेगा। मैं उसे यहाँ नहीं छोड़ सकती। नहीं छोड़ सकती।''

शारदा अभावों की शिकायत करते हुए भी घर को बचाए रखने के अनेक प्रयास करती है। घर जो वास्तविकता में बिखरा है, समाज में उसके भ्रम को भी वह बनाए रखती है। अर्थाभाव और खाद्य पदार्थों की कमी को वह अपने प्रयासों से भरने का प्रयास करती है। हर हाल में अतिथियों को भोजन आदि कराना और पति के लेखकीय दायित्व पूर्ण करने में स्वयं के अस्तित्व का पूरी तरह घर के लिए उसने त्याग दिया है। उसे पति से अनेक शिकायतें हैं पर जब पड़ोसन, शैलेंद्र को दायित्वहीन और निकम्मा कहती है तो वह उसे बर्दाश्त नहीं कर पाती। पति के असहयोग से शारदा असंतुष्ट है पर वह उसके लेखक व्यक्तित्व का सम्मान करती है। पड़ोसन के समक्ष एक स्वाभिमानी स्त्री की तरह उसके अभिमान मिश्रित एहसान का तार्किक उत्तर देती है–'' बस–बस शशि रहने दे! उन तक न जा। उन्हें तू खिला रही है क्या? तेरा इतना साहस कि तू उन्हें निकम्मा कहे! तेरे तो इनके पैर धोने लायक भी नहीं हैं, दुनिया पूजती है इन्हें। दूसरे दर–दर मारे फिरते हैं तो कोई नहीं पूछता, यहाँ घर बैठे पूजने आते हैं। कोई दिन न जाता होगा जो पांच–सात का खाना न बनाती हूँ। बनाती हूँ तो मैं, मुसीबत है तो मेरी, तुझे क्या दर्द उठा जो लगी उनका अपमान करने?''

स्वाभिमानी शारदा जब शैलेंद्र से अलग होने का निर्णय ले लेती है तब भी घर आए मेहमानों के भोजन की पूरी व्यवस्था करती है। पारिवारिक मित्र श्रीधर उसका सहयोगी बनता है। यह सभी शारदा के व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष हैं पर शारदा भीतरी तौर पर जीवन आघातों का कैसा और कितना दबाव सहन कर रही है इसका मनोवैज्ञानिक तरीके से वर्णन–चित्रण भी एकांकीकार ने किया है। अपने वर्तमान जीवन से त्रस्त शारदा जब अतीत की सुखद स्मृतियों को जीती है तब वहाँ शैलेंद्र के प्रति प्रेम की कोमल भावना से भर जाती है। उस कोमल भावना के स्मरण के पश्चात जब वह वर्तमान में लौटती है तो उच्छ्वास के साथ स्वीकार करती है–'' और इस तरह धीरे–धीरे मेरी इच्छाएँ बुझ गयीं, मैं एक भार ढोने वाली मुर्दा मशीन की तरह बन गयी, पर कभी वे दिन भी थे जब मैं सदा उन्हें आंखों में बसाये रखती थी। काश कि मैं उन क्षणों को फिर पा सकूँ।'' ये शब्द एक मनुष्य के रूप में शारदा के चरित्र के आंतरिक पक्ष से जुड़ा द्वार खोलते हैं। मनुष्य की पहचान मशीनी यांत्रिकता से नहीं होती अपितु भावनाओं, विचारों, निर्णयों, संवेदनशीलता, जीवन की उमंग, उल्लास, स्नेह, प्रेम, संघर्ष और उम्मीद से होती है। व्यक्तित्व से जुड़े ये पक्ष ही मनुष्य को परिभाषित करते हैं। कोई भी व्यक्तित्व जब इन पक्षों से रहित होने लगे तब वह मशीन में रूपांतरित होने लगता है। उसका शरीर स्पंदित रहता है पर वह मुर्दे की भांति रहता है। शारदा की यह स्वीकारोक्ति पितृसत्ता की क्रूरता को सामने लाती है। दर्शक और पाठक यह कह सकते हैं कि शारदा का पति तो लेखक व्यक्ति है। वह शांत रहकर अपना काम करता है। क्या हुआ यदि वह घर का कोई काम नहीं करता पर घर को चलाता है और शारदा के काम में हस्तक्षेप नहीं करता। उसे मारता–पीटता नहीं। लड़ाई – झगड़ा नहीं करता। लेकिन गहराई से विश्लेषण करें तो पितृसत्ता की क्रूरता के चिह्न सिर्फ भौतिक नहीं होते। उसकी हिंसा आत्मिक, मानसिक और भावात्मक भी होती है जो स्त्री के व्यक्तित्व को विगलित कर देती है। एकांकी में शैलेंद्र अपनी पत्नी शारदा की भूख–प्यास की चिंता करता है। घर

की धुरी शारदा को ही मानता है। परंतु शारदा के प्रति उसकी चिंता वास्तविक चिंता नहीं है। शारदा के जीवन में प्रेम का पौधा बिना स्नेह, सहयोग के पानी के सूख रहा है वह इसे देखता ही नहीं। आर्थिक जिम्मेदारी निभाने के बावजूद पत्नी के व्यक्तित्व में वह क्या योगदान दे रहा है? पत्नी के श्रम का उसके लिए क्या मूल्य है? मात्र अतिथियों द्वारा की गई प्रशंसा तो इसका मूल्य नहीं हो सकता। सभी प्रश्न शैलेंद्र के लिए निरर्थक हैं। एकांकीकार ने शारदा के इस आत्मसंघर्ष को गहराई से अनुभव किया है। बाह्य रूप में शारदा के जहर बुझे शब्दों का वास्तविक स्रोत कहाँ है इसे पकड़ने का प्रयास किया है। एकांकीकार शैलेंद्र की पुरुषवादी दृष्टि को समझने के अनेक संकेत–सूत्र एकांकी में देता है।

एकांकी में चित्रित शारदा भी आरंभ में लेखक–चिंतक बन सकने की संभावनाओं से युक्त थी। साहित्यिक अभिरुचि के चलते ही वह सभाओं–गोष्ठियों में जाया करती थी पर विडम्बना यह है कि वह लेखक–विचारक न बन सकी। वह चिंतनशील है। वर्तमान की विसंगतियों को देखते हुए वह पति के विरोधाभासी चरित्र पर भी ध्यान देती है– ''माना वे विद्वान हैं, दुनिया उन्हें पूजती है। पर वे किसी का ख्याल क्यों नहीं रखते, इतनी सुंदर बातें करते हैं, इतना सुंदर लिखते हैं, पर वे यह क्यों नहीं सोचते कि दूसरे भी मनुष्य हैं? कई दिन से मेरी उंगली में पीड़ा है, पर उन्हें इस बात की चिंता नही कि काम कैसे होगा? कौन करेगा? (गहरा निःश्वास) पिछले मास मैं तेज बुखार में तड़पती रही, पर उन्होंने दवा लाकर नहीं दी। दो मिनट से अधिक पास नहीं बैठे। आये, हँसे और चले गये।''

शारदा के व्यथित अंतर्मन, मुर्दा मशीन होने की स्वीकारोक्ति और उसकी कुंठित प्रश्नाकुलता हमें दिखाती है कि संभावना से भरी एक स्त्री का जीवन किस प्रकार जड़ता और यथास्थिति में फँसकर रह जाता है। यह एक नहीं अनेक स्त्रियों की व्यथा–कथा है। इसे दिखाना ही एकांकीकार का उद्देश्य भी है। इसीलिए इस एकांकी का अंत सुखांत नहीं है। यह जैसे यथास्थितिवाद का अनवरत चलने वाला दुष्चक्र है। शारदा के चरित्र की भीतरी परतें उसके व्यक्तित्व को पूरा खोल पाती हैं जहाँ उपेक्षा, आहत स्वाभिमान, विवशता, आक्रोश के साथ घर की प्रतिष्ठा को बनाए रखने का द्वंद्व भी दिखाई देता है।

शैलेंद्र

'वह जा न सकी' एकांकी का दूसरा प्रमुख पात्र शैलेंद्र है। शैलेंद्र ख्यातिप्राप्त लेखक है। संवेदनशील रचनाओं का रचयिता है। शारदा से विवाह होने से पूर्व ही उसकी साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा थी। साहित्य ही उसका जीवन है और आमदनी का जरिया भी पर यह आमदनी नियमित नहीं है और बहुत अधिक भी नहीं है। एकांकीकार ने शैलेंद्र के दो रूपों को दर्शक/पाठक के समक्ष रखा है। एक रूप साहित्यकार का है तो दूसरा एक गृहस्थ का। साहित्यकार के रूप में वह सफल है परंतु गृहस्थ के रूप में उसे सफल नहीं कहा जा सकता। साहित्य की साधना में पति शैलेंद्र और पिता शैलेंद्र दोनों लेखक शैलेंद्र से हार रहे हैं।

साहित्यकार–चिंतक शैलेंद्र ज्ञानी है इसका परिचय एकांकी के कई स्थलों पर मिलता है। एकांकी के आरंभ में ही पति–पत्नी की नोंक–झोंक में गूढ़ अर्थ वाली प्रतीकात्मक बातें करना शैलेंद्र की शैली को दर्शाता है– ''इतना सोचता हूँ कि फुरसत नहीं मिलती।'' या फिर ''...शारदा! मैं दियासलाई का भी प्रयोग नहीं जानता। काश कि मैं उसे जला सकता! जला पाता तो प्रकाश न हो जाता? अब तो निरे अंधकार में भटक रहा हूँ।'' घर–परिवार की सामान्य लड़ाई में भी यह विशिष्ट प्रतीकात्मक भाषा स्पष्ट करती है कि शैलेंद्र के मन–मस्तिष्क में लेखन–चिंतन की उलझनें लगातार चलती रहती हैं और वह निरंतर उन्हीं में खोया रहता है। इसीलिए शारदा के आक्रोश की गहनता को वह अनुभव

नहीं कर पाता। हर बार शारदा की वास्तविक शिकायतों को या तो वह उपेक्षित कर देता है या फिर हँसी में उड़ा देता है। ऐसा नहीं है कि बातचीत में शैलेंद्र की रुचि नहीं है। उसकी रुचि साहित्यिक–राजनीतिक–दार्शनिक संवाद करने में है जिसका प्रमाण है उसके घर नियमित आने वाले अतिथि और उनसे लंबा विचार–विमर्श। उदाहरण के तौर पर–'' सो भाई, मूल बात अकिंचन बनने की है। शेष राजनीति ऊपरी है। भोजन उसे जड़ से मिलता है। जड़ में अकिंचनता है तो राजनीति मनुष्य की दासी है। वैसे आज तो वह उसकी गरदन पर सवार है।'' लेकिन यही गंभीर विचार करने वाला शैलेंद्र अपने बच्चे से संवाद करता हुआ नहीं दिखाई देता। संवाद है भी तो बहुत सीमित और औपचारिक। पत्नी शारदा से भी स्वस्थ संवाद नहीं होता। शारदा के निरंतर शिकायत करने, घर के काम में मदद देने और बीमारी में साथ खड़े होने जैसे अनेक मामलों में शैलेंद्र की कोई भूमिका दिखाई नहीं देती।

घर के दायित्व सँभालने के नाम पर हर बार शैलेंद्र का शारदा के लिए एक ही जवाब है–'' मेरा घर? कसने कहा कि घर मेरा है? घर तो घरवाली का होता है।'' ऐसा लग सकता है कि शैलेंद्र अपनी पत्नी को पूरा अधिकार दे रहा है पर एकांकी के अनेक स्थलों में घर के प्रति उसकी उदासीनता व्यक्त होती है। चाहे बच्चे से संवाद हो या उसके साथ खेल–कूद करना हो चाहे शारदा के साथ घर के कामों में सहयोग या शारदा की बीमारी में उसकी सेवा। एक मुख्य बात यह भी है कि साहित्यिक अभिरुचि की रही शारदा से वह कभी साहित्यिक–सामाजिक चर्चा नहीं करता। शारदा विवाह के तुरंत बाद की घटना का स्मरण करती है तो भी वह पति के द्वारा लेखन को प्राथमिकता देने और पत्नी के प्रति निभाए जाने वाले दायित्वों में एक अजीब तरह के उपेक्षा बोध को अनुभव करती है। शैलेंद्र के लेखन और जीवन में परस्पर विरोधाभास को भी शारदा महसूस करती है। एकांकी के अंत में अपनी प्रशंसिका शीला के अपने पति को छोड़ने और शैलेंद्र के घर आकर रहने की बात का शैलेंद्र विरोध करता है। इस संवाद में पाठक/दर्शक यह जान पाता है कि शैलेंद्र के जीवन में शारदा ही एकमात्र स्त्री है। वह उसके अधिकार और सम्मान को बनाए रखता है पर अंत में उसका कहना–'' अरे भाई, हम निकम्मों पर गुस्सा करके क्यों खून जलाती हो। हम क्या ठीक होंगे। निभा लो।'' ऊपरी तौर पर यह कथन आदर्श पुरुष की छवि को खड़ा करता है पर वास्तव में यह यथास्थिति को बनाए रखने वाले परंपरागत पुरुष का ही कथन है। निष्कर्ष यही है कि शारदा के बिना शैलेंद्र के जीवन में लेखन–पठन की सहज स्थितियाँ एकदम असंभव हैं।

13.3.2 सहायक पात्र

एकांकी के चुस्त कलेवर में अधिक पात्रों की गुंजाइश नहीं हो सकती इसीलिए शारदा और शैलेंद्र जैसे प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त इस एकांकी में दो सहायक पात्र–**शरत्** और **श्रीधर** हैं।

शरत्

शारदा और शैलेंद्र का इकलौता पुत्र शरत् भोला और आज्ञाकारी बालक है। बालसुलभ चंचलता के अंश उसमें बहुत कम हैं। उसके चरित्र का धवल पक्ष अपनी **माँ के प्रति संवेदनशील** होना है। इस संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति भी केवल मौखिक नहीं बालक अपनी सहायता से माँ के कामों में हाथ बंटाने को उद्यत रहता है। एकांकी के अंतिम हिस्से में खेलकर आया शरत् जब माँ को कपड़े बाँधते देखता है तो कहता है–'' लाओ मैं भी कपड़े ठीक करता हूँ। तुम्हारी उँगली दुख रही है। तुम अकेले कैसे करोगी? क्यों अम्मा डॉक्टर उंगली काटेगा?'' कभी माँ के साथ बर्तन मँजवाने की जिद तो कभी पड़ोस से आटा लाने और अपमानित होने की घटना– सभी पर विचार करें तो लगता है जैसे एक छोटा बच्चा अपने लेखक पिता से कहीं अधिक संवेदनशील है। लेखन और

मित्रों से चर्चा के बाद भी शैलेंद्र कुछ समय अपनी पत्नी के लिए निकाल सकता था। एक ओर शरत् है तो दूसरी ओर पत्नी के स्वास्थ्य की चिंता से बेपरवाह शैलेंद्र जो उसे अतिथियों के लिए खाना तैयार करने की बात कहता है। पति से त्रस्त शारदा गुस्से में बालक पर भी ताने कसती है तो वह प्रत्युत्तर में कभी अनुचित बात नहीं कहता। घर और बाहर के कामों में लगातार वह माँ की मदद करने के लिए तत्पर रहता है। शरत् अपनी उम्र के अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील, आज्ञाकारी, शांत, विनम्र और कर्मठ है।

श्रीधर

श्रीधर, शारदा और शैलेंद्र का पारिवारिक मित्र है। अतीत में घटित घटना की याद और शारदा की सखी के प्रसंग से एक सत्य यह भी उजागर होता है कि शारदा के विवाह के लिए सखी, श्रीधर की तस्वीर लाती है। वह उसके शारीरिक सौष्ठव, शिक्षा और विद्वत्ता का गुणगान करती है परंतु शैलेंद्र से प्रेम करने वाली शारदा न तो वह तस्वीर देखती है न ही श्रीधर के प्रसंग में रुचि लेती है। यहाँ तक कि सखी द्वारा यह कहने पर कि उसने एक स्वप्नदर्शी से प्रेम की भूल की है–शारदा चिंतित नहीं होती। यह संयोग ही है कि श्रीधर बाद में उनका पारिवारिक मित्र और शारदा का हितैषी बनकर आता है। उसकी भूमिका एकांकी में बेहद संक्षिप्त है पर उसका प्रभाव गहरा है। एक तरह से शैलेंद्र और श्रीधर का कंट्रास्ट भी एकांकीकार ने रचा है। यहाँ मुख्य बात यह भी है कि सभी पुरुष शैलेंद्र की भाँति गृहस्थी के कामों के प्रति उदासीन नहीं होते। एकांकी स्त्री प्रश्नों को उठाते हुए पुरुष को पूरी तरह नहीं नकारता।

श्रीधर का शारदा से रिश्ता एक **सहयोगी–संवेदनशील मित्र–भाई** का रिश्ता है। श्रीधर से शारदा की कोई पर्दादारी नहीं। घर में आटे आदि का अभाव, शारदा के हाथ में फुंसी के बावजूद उसे पाँच लोगों का खाना तैयार करने की स्थिति से जूझते देखकर श्रीधर दो–टूक कहता है– ''ना बाबा! यह तो अत्याचार है। कोई बात है, किसी भली औरत को इस प्रकार सताना! भाभी, सच कहता हूँ, तुम हो, नहीं तो इस घर में कोई टिक सकता है? घर में दाने नहीं, लाने की हिम्मत नहीं, दिल इतना बड़ा कि दावत देंगे शहर –भर को! खून किसी का बहे, शहीद कोई बने!'' यही नहीं शारदा की प्रतिदिन की व्यथित स्थिति, आय और व्यय का असमान वितरण और शैलेंद्र के अतिथि–सत्कार के शौक को देखते हुए श्रीधर, शारदा को सुझाता है कि वह यहाँ से गायब हो जाए। उसकी अनुपस्थिति ही शैलेंद्र को शारदा का महत्त्व समझाएगी। ''हाँ इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है। जब तुम चली जाओगी तब उन्हें आटे–दाल का भाव मालूम होगा। पता लग जायेगा कि साहित्य क्या होता है, उसकी सृष्टि कैसे होती है।''

यही नहीं श्रीधर हर तरह से मदद के लिए तैयार रहता है चाहे वह बाजार से सामान लाना हो या फिर आर्थिक मदद। वह हर प्रकार से शारदा को नयी स्थिति के लिए तैयार करता है पर शारदा घर आए अतिथियों को भूखा भेजने के पक्ष में नहीं रहती। यह अलग बात है कि श्रीधर के जाने के बाद वह श्रीधर की बात को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास करती है लेकिन अंततः आदर्श परिवार व्यवस्था के समक्ष घुटने टेक देती है।

13.3.3 अन्य पात्र

'और वह जा न सकी' एकांकी में मुख्य और सहायक पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी हैं। एकांकी में कुछ पात्र वह अतिथि हैं जो घर आए हैं। वे शैलेंद्र से साहित्यिक–राजनीतिक चर्चा करते हैं और शारदा के बनाए खाने की प्रशंसा करते हैं। एकांकी–नाटक की दृष्टि से दृश्य में इनकी उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है। इसी तरह पड़ोसन शशि भी इस श्रेणी में है। उसके आने से नाटकीय स्थितियाँ चरम पर पहुँचती हैं और नया नाटकीय मोड़ इस अर्थ में आता है कि पति के प्रति क्रोधित रहने वाली शारदा पति के अपमान का प्रतिकार

करती है। शशि भी बहुत कठोर नहीं है। झगड़े के बाद भी सहयोग करती है। इसी तरह अतीत की स्मृति में सखी का आना और उसके संवाद पाठक/दर्शक को एक नई शारदा से परिचित करवाते हैं जो वर्तमान की शारदा से एकदम भिन्न संभावना से युक्त स्त्री है। सखी, शारदा के जीवन में प्रेम के अंकुरण की कथा बताती हुई एक खतरे की तरफ भी संकेत करती है जो लेखक को जीवनसाथी बनाने से हो सकता है। उसका पूर्वानुमान सही सिद्ध होता है। एकांकी का एक अन्य स्त्री पात्र शीला भी है। शीला भी अन्य पात्रों की तरह नयी नाटकीय स्थिति का संचार करती है। वह पढ़ी–लिखी, बौद्धिक स्त्री है जो शैलेंद्र के प्रति आसक्त भी है। उसके आने से एक तरफ शारदा के स्त्रियोचित संशय और उसके निराकरण की स्थिति बनती है तो दूसरी तरफ यह सच भी उद्घाटित होता है कि शैलेंद्र के जीवन की प्राथमिकता साहित्य है। वैवाहिक जीवन में विचलन उसे स्वीकार नहीं लेकिन शारदा से विवाह और विवाहोपरांत संतान के रूप में शरत् की प्राप्ति होने पर भी वह दुनियादारी से वह परे भी है। शीला–शैलेंद्र संवाद में शैलेंद्र के जीवन की प्राथमिकता की पुष्टि हो जाती है।

13.4 परिवेश

'और वह जा न सकी' एकांकी मध्यवित्त परिवार से संबंधित है। यह एकांकी पारिवारिक जीवन की आर्थिक–सामाजिक समस्याओं का वहन करती एक स्त्री को पाठक/दर्शक के समक्ष लेकर आता है। यह एकांकी सन् 1951 में लिखा गया था। स्वाधीनता मिलने के कुछ वर्ष पश्चात् लिखा गया यह एकांकी अनेक कोणों से पारिवारिक दायित्वों को सफलतापूर्वक निभाने वाली उन स्त्री छवियों की गाथा है जो अपने दिन–प्रतिदिन जीवन की अनेक प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए भी अपने दायित्वों से विमुख नहीं होतीं। एकांकीकार ने इस स्त्री छवि में एक नया रंग भी भरा है। स्त्री के परिवार के प्रति समर्पित जीवन में भी कुछ ऐसी घटनाएँ सम्मिलित रहती हैं जो उसे समूचे दायित्वों के बीच अपनी अस्मिता और विवेक के प्रति भी जागरूक करती हैं। निर्णय के उन क्षणों में नयी बनती स्त्री की प्रश्नाकुलता और विकल्प के चयन की ओर बढ़ने के मार्ग का भी एकांकीकार विष्णु प्रभाकर ने संकेत दिया है।

बोध प्रश्न 1

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**
   1. शैलेंद्र–शारदा के पुत्र का नाम......... है।
   2. शैलेंद्र एक ...... है।
   3. शारदा ने शरत् को .... के घर आटा लाने भेजा।
   4. .... शारदा–शैलेंद्र का पारिवारिक मित्र है।
   5. विवाह से पूर्व शारदा की सखी ने शैलेंद्र को .... कहकर संबोधित किया।
2. **नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर लगभग 4–7 पंक्तियों में दीजिए–**
   1. 'और वह जा न सकी' एकांकी की कथावस्तु को संक्षिप्त रूप में बताइए।

      ....

      ....

      ....

      ....

      ....

....

....

2. एकांकी का अंत पाठक/दर्शक के समक्ष स्त्री की समस्या को किस प्रकार रखता है?

....

....

....

....

....

....

3. शारदा की चारित्रिक विशेषताओं को बताइये।

....

....

....

....

....

....

4. एकांकी के सहायक पात्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

5. शैलेंद्र का लेखकीय व्यक्तित्व और परिवार में उसकी भूमिका का अंतर एकांकी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

6. 'और वह जा न सकी' एकांकी के परिवेश को बताइये।

....

....

....

....

13.5 संरचना–शिल्प

दृश्य विधा होने के कारण एकांकी–नाटक का संरचना–शिल्प गद्य की अन्य विधाओं से भिन्न है। पाठ्य विधा और दृश्य विधा का मूलभूत अंतर रंगमंचीयता को लेकर है। इसमें संवाद, अभिनय, विविध नाट्य शैलियाँ समाहित होती हैं। नाटक चूँकि एक सामूहिक विधा है तो इसमें गीत–संगीत–नृत्य योजना भी सम्मिलित होती है। अनेक नाट्य शैलियों का प्रयोग भी रहता है। लोकधर्मी शैली, अमूर्तन की शैली, यथार्थवादी शैली आदि इसकी संरचना के हिस्से रहते हैं। अभिनय की दृष्टि से देखा जाए तो इसमें भी लोक रंगमंच का प्रभाव, पारसी रंगमंच की स्टाइलाइज़्ड शैली का प्रभाव, यथार्थवादी रंगमंच का प्रभाव और ब्रेख्त के अलगाव सिद्धांत का प्रभाव भी कहीं–कहीं देखा जा सकता है। अभिनेता के आंगिक अभिनय, संवाद अदायगी के साथ आहार्य अभिनय में उसकी वेशभूषा आदि शामिल रहती है। इसके अतिरिक्त अभिनेता की भंगिमाएँ, मुद्राएँ और नाटक की गति भी महत्त्वपूर्ण हैं।

एकांकीकार भले ही नाट्य निर्देशक नहीं हो परंतु वह मंच की अनेक बारीकियों से परिचित होता है। यही कारण है कि उसका लिखा एकांकी अनेक रंग–संकेत देता चलता है। एकांकी का प्रमुख घटक रंगसंकेत या रंगनिर्देश कहे जाते हैं। हिंदी के अधिकांश एकांकीकारों ने यह शैली बर्नार्ड शॉ से ग्रहण की। एकांकी की शुरूआत में ही एकांकीकार द्वारा मंच संबंधी निर्देश, वेशभूषा संबंधी,सेट संबंधी आदि निर्देश ही रंगसंकेत या रंगनिर्देश कहे जाते हैं। (कथा एक अंक की : प्रज्ञा, साहित्य भंडार प्रयागराज) अभिनय संबंधी मनोभाव, परिवेश संबंधी विविध सूचनाएं, रंगमंच में प्रयुक्त प्रॉपर्टी (फर्नीचर, पर्दे, बर्तन आदि) आदि का उल्लेख भी एकांकीकार इन्हीं रंग–संकेतों में कर देता है। यह अलग बात है कि जब कोई नाटक या एकांकी मंचित होने के लिए चयनित होता है तो नाटककार–एकांकीकार के मूल पाठ के अतिरिक्त निर्देशक भी मंचन की सुविधा से अपना नया आलेख तैयार करता है जिसमें अंक और दृश्य के आधार पर अभिनय, संवाद, प्रकाश, ध्वनि, नृत्य, गीत, एंट्री–एग्ज़िट आदि मंचीय बारीकियों का पूरा ध्यान रखा जाता है। संरचना–शिल्प की दृष्टि से 'और वह जा न सकी' एकांकी के महत्वपूर्ण पक्ष हैं–भाषा–शैली, संवाद और अभिनेयता।

13.5.1 भाषा

किसी भी एकांकी के संरचना शिल्प में भाषा उसका मुख्य घटक है। जिस तरह के पात्र एकांकी में हैं भाषा उनके परिवेश, वर्ग और अभिरुचि से मेल खाती होनी चाहिए। संवाद के क्रम में भी रोचकता और कौतुहल का बना रहना आवश्यक है। लंबे संवाद एकांकी की गति और प्रभाव को बाधित करते हैं। एकांकी नाटक चूँकि एक दृश्य विधा है तब यह और जरूरी हो जाता है कि दर्शक वर्ग के लिए एकांकी नाटक की भाषा बहुत जटिल नहीं होनी चाहिए। एकांकी का कार्यव्यापार भी चुस्त हो क्योंकि लगभग आधा घंटे की अवधि में दिखाया जाने वाला यह नाटक अपनी संरचना में क्षिप्र होना चाहिए। त्वरित गति से बिना अनावश्यक प्रसंगों और वर्णन के अपने लक्ष्य तक पहुँचने वाला एकांकी ही सफल माना जाता है।

विष्णु प्रभाकर के नाटक यथार्थ से गहरे तौर पर जुड़ते हैं। सामाजिक–पारिवारिक यथार्थ का अंकन करते हुए वह पात्रों के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व को भी सृजित करते हैं। पात्र के चेतन–अवचेतन को अभिव्यक्त करने में भाषा एक सशक्त माध्यम है। चूँकि एकांकी दृश्य विधा है इसीलिए उसमें अभिव्यक्ति का माध्यम गीत–संगीत, भाव, वेशभूषा, प्रकाश और मौन भी हैं। जहाँ तक 'और वह जा न सकी' एकांकी की भाषा की बात है इस एकांकी की सहज भाषा परिवेश और पात्र के साथ पूरा न्याय करती है। सामान्य बोलचाल के शब्द, प्रतीकात्मक शब्द और एक लेखक पात्र शैलेंद्र की साहित्यिक भाषा के रूप एकांकी में देखे जा सकते हैं। शब्द–भंडार की दृष्टि से एकांकी की भाषा समृद्ध है। निबाह, अंटसंट, निकम्मा, उजाड़ू, निहाल, शऊर, जबान, हुक्म, संदूकची, अरमान, काहिली, खाक, दियासलाई जैसे रोजमर्रा के हिंदी–उर्दू शब्दों की योजना एकांकी में है तो दूसरी तरफ अकिंचन, भ्रमण, आजानबाहू, मदिरा, मूल्य, स्वप्न, भय, मुग्ध जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्द भी एकांकी में अधिक संख्या में हैं। होटल, मनीऑर्डर जैसे अंग्रेजी शब्द भी एकांकी में प्रयोग किए गए हैं परंतु उनका प्रयोग बहुत सीमित है। अटेरन, सावक, चूल्हे, देहली, बर्तन मांजना, दाल बीनना जैसे स्थानीय और लोक भाषा के शब्दों–क्रियाओं का प्रयोग भी एकांकी में अनेक स्थलों पर किया गया है।

इस एकांकी का वैशिष्ट्य पात्रगत वैविध्य दिखाने के लिए भाषाई विविधता को अपनाना भी रहा है। उदाहरण के तौर पर शारदा की भाषा अलग है और शैलेंद्र की अलग। एकांकी के भाषा पक्ष पर सिद्धनाथ कुमार ने इस प्रकार विचार व्यक्त किया है–''प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भाषा होती है–उस पर उसकी शिक्षा–दीक्षा, उसके संस्कार और परिवेश आदि का प्रभाव रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशेष प्रकार के शब्दों का व्यवहार करता है, एक विशेष प्रकार से उनका संयोजन करता है। तात्पर्य यह कि नाटक के प्रत्येक पात्र की भाषा में उसकी वैयक्तिकता परिलक्षित होनी चाहिए। जिस नाटक में प्रारंभ से लेकर अंत तक एक–सी भाषाशैली दिखाई पड़ती है, वह प्रशंसनीय नहीं माना जा सकता।''

'और वह जा न सकी' एकांकी की सफलता का श्रेय उसकी पात्रानुकूल भाषा को भी जाता है। इसके दो प्रमुख पात्रों–शारदा और शैलेंद्र की भाषा उनकी वर्तमान स्थिति, उनके परिवेश, उनकी आर्थिक–सामाजिक स्थिति और उनकी अभिरुचियों को सशक्त तरीके से पाठक/दर्शक को समझा पाती है। शारदा की भाषा यथार्थ के रेशे से बनी उसके क्रोध, विवशता, दैन्य, एकाकीपन और अभाव को सृजित करती है। शारदा के पात्र की भाषा आमजन की भाषा तो है पर उसकी जीवतंता और अर्थवत्ता उसकी मुहावरेदार शैली है। उदाहरण के लिए शारदा–शरत् संवाद में शारदा का यह कहना–'' हाय राम, तूने कुछ नहीं कहा! बिल्कुल अपने निकम्मे बाप पर गया है। घर में जबान कैंची की तरह चलती है–बाहर निकलने ही गला बैठ जाता है। अरे, तुझसे मुंह फाड़कर नहीं कहा गया कि चाची बता तो कौन–सा आटा रख लिया है तेरा!...'' शारदा अपने हर संवाद में अनेक मुहावरों का प्रयोग करती है। यह मुहावरे जीवन की लय और शारदा के घर की स्थिति को भी पकड़ते हैं। साथ ही उसके जीवन की त्रासदी और विसंगति से उपजा व्यंग्य भी शारदा की भाषा का अभिन्न भाग है। उसके जहर बुझे बाणों की भाषा उसकी अपनी विडम्बना को व्यंग्य के माध्यम से प्रकट करती है। उदाहरण के लिए शैलेंद्र से संवाद के बाद उसका अकेले में बड़बड़ाना–'' बातें! बातें! जब देखो बातें! जब सुनो बातें! (गिलास फेंकती है) जी में आता है, जिस किसी को खाने को कह देते हैं। यह नहीं सोचते कि खाना आयेगा कहाँ से? कोई बात है! मुझे दर–दर भटकना पड़ता है। बाजार जाऊँ तो मैं! अस्पताल जाऊँ तो मैं! घर देखूँ तो मैं! और आप हैं कि आराम से लेटे–लेटे जमीन–आसमान के कुलाबे मिलाते रहते हैं। दोस्तों के साथ वे कहकहे लगाते हैं कि आसमान फटने लगता है, पर मुझसे यह भी नहीं पूछ सकते कि तुम्हारी

उंगली में क्या हुआ है?'' शारदा की व्यथित मनःस्थिति को उसकी चिड़चिड़ाहट पूरी तरह व्यक्त करती है। उसके संवाद और एकालाप अनेक स्थलों पर उलाहनों से भरे हैं। भाषा का तल्खी उलाहनों या शिकायतों के रूप में शारदा की मनोदशा को बताती चलती है–'' कह दे जाकर कि यहां होटल नहीं खुला है, और न कोई सदावर्त लगा है! क्या समझ लिया है मुझे? कह दिया, पाँच आदमियों के लिए खाना बनाना है, जैसे घर में कामधेनु बंधी हुई है!'' शारदा के जीवन की पीड़ा और आक्रोशित मुद्रा को भाषा अभिव्यक्त करती है। स्नेह और भौतिक अभाव को वहन करती उसकी भाषा ऊपरी तौर पर तीखी लग सकती है पर उसमें निहित करुणा को भी वह व्यक्त करती है।

शैलेंद्र की भाषा उसके व्यक्तित्व के अनुरूप है। उसमें दर्शन, ज्ञान–विज्ञान की गहराई दिखाई देती है–''...क्षण भर के लिए मैं आपकी बात मान लेता हूं कि अकिंचन बनने में हमारा नाश हो जाता है। मैं पूछता हूं इससे संसार का क्या बिगड़ता है। और बिगड़ भी जाए, कोई इस रास्ते आकर देखे तो सही। लोग तो पहले ही काल्पनिक भय के कारण जानें दिये दे रहे हैं। मेरे भाई, भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। आज की यह सारी शक्ति इसी काल्पनिक भय की नींव पर खड़ा है।''

भाषा का एक अन्य रूप अतीत की स्मृति में शारदा और उसकी सखी के संवाद से व्यक्त होता है। उदाहरण के रूप में प्रेम की कोमल धारा को व्यक्त करता भाषा का माधुर्य रचता यह अंश –''...हाय रे, इतना तेज बुखार चढ़ा है? मेरी लाडली को! देखूं नब्ज। ओहो, तापमान 110 से ऊपर जा रहा है, पर...पर कोई डर नहीं, यह प्रेम का ताप है। जितना बढ़ता है,सौंदर्य उतना ही निखरता है, कविता उतनी ही प्रखर हाती है, उन्माद उतना ही मादक होता है।'' एकांकी के सखी पात्र की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। उसकी भाषा गहरे अर्थ से भरी है। ''जब ताप की अग्नि असह्य हो उठती है तो बेचारी पिंजरे के पंछी की तरह उफ्–उफ् पुकारती है।'' शारदा से हुए संवाद में सखी, प्रेम का असहनीय ताप सहते हुए शारदा की समता उस पक्षी से करती है जो पिंजरे में कैद है। इस तरह पंछी और शारदा की स्थिति में बिंब–प्रतिबिंब साम्य भी बिठाया गया है।

लाक्षणिक प्रयोगों और उपमाओं से भी शारदा की भाषा विशिष्ट बनती है। उदाहरणार्थ– बुत की तरह खड़े रहना, मुर्दा मशीन, पिंजरे के पंछी की तरह उफ्–उफ् पुकारना, सीकसलाई होना या तारीफ...गठरी में बांधकर अपने सिर पर रख लीजिए! ओढ़िए–बिछाइये आदि।

एकांकी में शारदा–शरत्, शारदा–शशि, शारदा–शैलेंद्र, शारदा–श्रीधर संवाद के माध्यम से भाषाई विविधता और भाव–भंगिमा के अनेक रूप सामने आते हैं जिसके कारण पाठक/दर्शक की रोचकता बराबर बनी रहती है। इस प्रकार भाषागत जीवतंता, मुहावरेदारी और व्यंग्य शैली इस एकांकी के बड़े गुण कहे जा सकते हैं।

13.5.2 शैली

शैली के आधार पर 'और वह जा न सकी' एकांकी को दो रूपों में समझा जा सकता है। पहला है एकांकी नाटक की प्रस्तुति के संदर्भ में इसकी **यथार्थवादी शैली** और नाटक शैली और दूसरा रूप कथ्य के स्तर पर **एकांकीकार द्वारा अपनाई गई हिंदुस्तानी शैली** है। यथार्थवादी शैली को नाट्य आलोचक देवेंद्र राज अंकुर ने इस प्रकार समझाया है–

''वे कौन से निर्णायक तत्व हैं जो इन नाटककारों की रचनाओं को यथार्थवादी लेखन का उदाहरण बनाते हैं? उत्तर स्पष्ट है–पूरी तरह से रोज़मर्रा के व्यवहार में आने वाली भाषा, वही दिन–प्रतिदिन के मानवीय व्यवहार से जुड़ी अभिनय शैली और सीधे उसकी अपनी जिंदगी से जुड़े कथ्य जिनमें कहीं भी ईश्वरीय पौराणिक और मिथकीय तत्वों का कोई दखल नहीं है। दृश्यबंध के नाम पर भी चार दीवारों से घिरा हुआ घर, रेस्तरां या क्लास रूम। गीत, संगीत, नृत्य और मुद्रा–विधान की कहीं दूर–दूर तक छाया भी नहीं।

जो दर्शक इतिहास, पुराण, मिथ, रोमांस से भरपूर नाटकों के अभ्यस्त थे,उन्हें अचानक एक ताज़गी, का अहसास हुआ–अरे, ये तो हमारी अपनी जिंदगी है, हमारे अपने सवाल हैं,हमारी अपनी शंकाएं हैं, दुविधाएं हैं और अपना द्वंद्व है। यथार्थवादी रंगमंच का यही तो जादू है कि वह दर्शकों के समाने एक बंद प्रेक्षागृह में सच्चाई का भ्रम पैदा कर देता है और हम उसके प्रभाव से अभिभूत हो जाते हैं।'' (रंगमंच की कहानी : देवेंद्र राज अंकुर)

'और वह जा न सकी' एकांकी **यथार्थवादी शैली** का एकांकी है जो अभिनय की दृष्टि से एकदम चुस्त है। इस एकांकी को देखते–पढ़ते हुए दर्शक–पाठक के समक्ष परिवारों का वह यथार्थ खुलता है जहाँ स्त्री अनेक संघर्षों से घिरी है। उसके परिवार की आंतरिक संरचना, दैनिक जीवन के सत्य और समस्या से पाठक सीधा जुड़ जाता है। इस एकांकी की स्थितियाँ, पात्रों की मुद्रा, दृश्य को जीवंतता से उकेरना, भावों की पूर्णता सभी यथार्थवादी शैली के ही गुण हैं। एकांकी, परिवेश के वस्तुगत सत्य के साथ पात्र के आंतरिक मनोभावों को भी पकड़ता है। जगह–जगह एकांकीकार द्वारा दिए गए रंगनिर्देश इसे खेलने वाली मंडलियों और निर्देशकों के लिए सहायक हैं। एक अंक के एक लंबे दृश्य की योजना वाला यह एकांकी पाठक के समक्ष एक परिवार का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता दिखाई देता है।

एकांकी के कथ्य के स्तर पर देखा जाए तो यहाँ संवादों में हिंदी और उर्दू की मिश्रित **हिंदुस्तानी शैली** को अपनाया गया है। आम जीवन में सहजता से प्रयुक्त होने वाले जन–जीवन की शब्दावली में घुले–मिले अरबी–फारसी शब्दों का हिंदी के साथ सार्थक प्रयोग इस एकांकी में निरंतर दिखाई देता है। प्रेमचंद ने जिस प्रकार भाषा की गंगा–जमुनी तहज़ीब को अपनाया वह रंग इस एकांकी में भी देखा जा सकता है। लेखन में इसे हिंदुस्तानी शैली कहा जाता है। उदारहण के लिए शारदा–श्रीधर की बातचीत में शारदा का यह कहना–'' यहां तो रोज़ दावत होती है। यही बात है कि घर में नहीं दाने अम्मा चली भुनाने। भीड़ कब नहीं लगती? और लगेगी तो खायेगी ही। हुक्म आया है कि पांच आदमियों का खाना तैयार करो। अब तुम बताओ कि मैं कहां जाऊँ, क्या करूं? इन्होंने तो मेरा जीना दूभर कर दिया।''

शारदा की बात के उत्तर में श्रीधर द्वारा प्रयुक्त हिंदुस्तानी शैली को भी देखा जा सकता है।

श्रीधर–'' ...दिल इतना बड़ा कि दावत देंगे शहर–भर को! खून किसी का बहे, शहीद कोई बने!''

शारदा–श्रीधर संवाद में दावत,हुक्म, खून, शहीद जैसे शब्द हिंदी में घुले–मिले हैं। ऐसा प्रयोग अन्य स्थलों पर भी देखा जा सकता है। एकांकी अधिकांश रूप से हिंदुस्तानी शैली में लिखा गया है।

13.5.3 संवाद

एकांकी में चरित्र को प्रतिष्ठित करने में उसके संवादों–एकालापों की बड़ी भूमिका है। संवाद एकांकी के कलेवर को न सिर्फ नाटकीयता प्रदान करते हैं बल्कि उनसे पात्रों की मनःस्थिति और अन्य पात्रों के विषय में किसी पात्र के निजी विचार भी जाने जा सकते हैं। पात्रगत विशेषताओं और कमियों को संवाद ही प्रकट करते हैं। यही नहीं संवाद एकांकी में घटित घटनाओं के विश्लेषण और उन पर विभिन्न पात्रों की क्रिया–प्रतिक्रिया जानने का भी मुख्य स्त्रोत होते हैं। साथ ही संवाद पात्रगत मनोभावों के संवाहक भी होते हैं। एकांकीकार रामकुमार वर्मा संवाद का वैशिष्ट्य इस रूप में बताते हैं–''एकांकी का संवाद चरित्र की चारित्रिकता को प्रकट करता है, एकांकी के कथा–सूत्र को विकसित करता है और पात्रों के भावों को प्रकट करता है।'' (एकांकी कला : संपा, रामकुमार वर्मा) इस वैशिष्ट्य के अतिरिक्त एकांकी के संवादों का रूप

चुस्त और गति क्षिप्र होना चाहिए। यह संवाद–योजना के मूल गुण और एकांकी की सफलता का सूचक है।

'और वह जा न सकी' एकांकी के संवाद पूरे एकांकी के प्रवाह को व्यक्त करते हैं। संवादों–एकालापों की योजना से यह एकांकी चरित्र की चारित्रिकता को भी प्रकट करता है। कथा के विकास को भी बताता है और साथ ही पात्रों के मनोभावों को भी कुशलतापूर्वक व्यक्त करने में समर्थ रहता है। संवाद और एकालाप में तीव्र गति, क्षणिक मौन, करुणा, व्यंग्य आदि सबल पक्ष हैं। एकांकी में शारदा की आक्रोशित मुद्रा के साथ अपनी स्थिति पर विचार करती उसकी संयमित मुद्रा भी देखी जा सकती है। अपनी सखी की बातों का स्मरण करती हुई वह एक निष्कर्ष पर पहुंचती है। उसका एकालाप इस प्रकार है–'' (गहरा निःश्वास) उसने कितना ठीक कहा था। कितना ठीक। स्वप्नदर्शियों से प्रेम हो सकता है, पर निबाह होना कठिन है...निबाह होना कठिन है... कठिन है...बहुत कठिन है! असंभव है। स्वप्नदर्शी को पत्नी नहीं पुजारिन की जरूरत है। उस पुजारिन की जो मां का हृदय रखती है, जो अपने को मिटाना चाहती है, जिसके अरमान पूरे हो चुके हैं, जिसकी लालसाएं तृप्त हो चुकी हैं। पर मैं...मैं...तो अभी प्यासी हूं।'' उद्धरण में 'कठिन है' जैसे शब्दों की पुनरावृत्ति क्रमशः सखी की अतीत में कही बात को शारदा के वर्तमान जीवन अनुभव और उसके ठोस निष्कर्ष को अपने प्रामाणिक अनुभव से व्यक्त करती है। इसी तरह उसके एक अन्य एकालाप में प्रेम की सुखद स्मृति, वैवाहिक जीवन के प्रति एक रोष, बच्चे के प्रति उमड़ता वात्सल्य भी चित्रित है।

''शारदा : (उच्छ्वास) और इस तरह धीरे–धीरे मेरी इच्छाएं बुझ गयीं, मैं एक भार ढोने वाली मुर्दा मशीन की तरह बन गयी, पर कभी वे दिन भी थे जब मैं सदा उन्हें आंखों में बसाये रखती थी। काश कि मैं उन क्षणों को फिर से पा सकूं! काश कि मैं उनकी तस्वीर को फिर ललचाई आखों से देख सकूं।''

एकांकी की संवाद योजना बहुत चुस्त है। संक्षिप्ति, नाटकीयता और अर्थवत्ता संवाद के गुण कहे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ शारदा–शैलेंद्र का आरंभिक संवाद जिसमें शारदा की तल्खी और शैलेंद्र की उदासीनता से पारिवारिक द्वंद्व सघनता से व्यक्त होता है। एकांकी में आगे की कथा का सूत्र भी संवादों से पता चलता है और शारदा–शैलेंद्र के चरित्र के साथ उनके जीवन की मूल समस्या का ज्ञान भी पाठक को होता है।

''शारदा : मैंने कहा घर में आटा नहीं है।

शैलेंद्र : तुमने दूध पी लिया?

शारदा : मैंने कहा आटा नहीं है घर में।

शैलेंद्र : वह तो अन्नपूर्णा जाने।

शारदा : (तीव्र तल्खी) अन्नपूर्णा गई भट्टी में। मुझे आटा चाहिए।

शैलेंद्र : शारदा संगीत की देवी है, उसका स्वर इतना कर्कश नहीं होना चाहिए।''

एकांकी में संवाद–एकालाप के अतिरिक्त मौन भी संवाद में एक सार्थक युक्ति की भाँति प्रयुक्त होता है। एकांकी में यह मौन मंच पर अभिनेता की मनःस्थिति को बखूबी रचता है। अनकहा भी अनेक बार बहुत कुछ अभिव्यंजित कर देता है। 'और वह जा न सकी' एकांकी को देखें तो इसके संवादों में अचानक आई चुप्पी अर्थ को गहराई से व्यक्त करती हुई पात्र की मनोदशा का वर्णन करती है। एकांकी के अंत में शारदा–शैलेंद्र के संवाद से जब एकांकी चरम सीमा पर पहुंचता है तब शारदा कहती है–'' ...मैं अब इन दिखावटी बातों में आने वाली नहीं हूं। मैंने तय कर लिया है...।'' शैलेंद्र उससे निर्णय के विषय में पूछता भी है पर शारदा का मौन उसके दृढ़ संकल्प को बिना शब्द खर्च किए सामने लाता है। एकांकीकार विष्णु प्रभाकर की यह विशिष्टता है कि नाटक हो या

एकांकी वह संवादों की योजना में शब्दों का बेहद सटीक प्रयोग करते हैं। शब्द लाघव और अर्थ विस्तार उनके एकांकी के प्रमुख गुण कहे जा सकते हैं।

13.6 अभिनेयता या रंगमंचीयता

अभिनेयता या रंगमंचीयता की दृष्टि से यह एकांकी सफल है। मंचीय एकांकी के रूप में और बाद में टेलिविजन एकांकी के रूप में भी इसकी प्रस्तुति हुई है जिसमें अनेक दृश्यों की योजना की गई। मंच एकांकी के रूप में इस एकांकी में हमें एक अंक और एक ही लंबा दृश्य मिलता है। एकांकी संकलन–त्रय के सिद्धांत पर आधारित है जिसमें समय, स्थान और कार्य की एकता मिलती है। एकांकी का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष संकलन–त्रय भी है। संकलन–त्रय की अवधारणा अरस्तू ने अपने ग्रंथ 'पोएटिक्स' में त्रासदी के संदर्भ में दी थी। अरस्तू का मत था कि त्रासदी को यथासंभव सूर्य की परिक्रमा या इससे कुछ अधिक समय तक सीमित रखने का प्रयास किया जाता है। काल, स्थान और कार्य की एकता यानी 'यूनिटी ऑफ थ्री' या संकलन–त्रय है। इसे ही समय–संकलन, स्थान–संकलन और कार्य–संकलन की अन्विति भी कहा गया है। प्रस्तुत एकांकी में दिन के कुछ घंटों का समय दर्शाया गया है। स्थान घर का भीतरी भाग ही रहता है और कार्य है वैवाहिक जीवन में पति के असहयोग से पत्नी के असंतोष का प्रकटीकरण। उसके 'मुर्दा मशीन' में रूपांतरित होने की कहानी। अभिनय की दृष्टि से एकांकी के चरित्र, संवाद, परिवेश, भाषा–शैली सभी संगति में हैं। पति–पत्नी के बीच की द्वंद्वात्मक स्थितियाँ नाटकीयता को और भी बढ़ाती हैं। एकांकी में दो बार प्रयुक्त पूर्वदीप्ति पद्धति या फ्लैशबैक से वर्तमान और अतीत का घर्षण कराया गया है। विवाह से पूर्व शारदा की सखी का शैलेंद्र को 'स्वप्नदर्शी' कहना एक पूर्वानुमान की तरह घटित होता है। शैलेंद्र के साहित्यकार के विषय में यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि वह सफल गृहस्थ नहीं बन पाएगा। फ्लैशबैक की तकनीक से दूसरी बार शारदा अतीत में घटित घटना का स्मरण करती है। वह विवाह के बाद पहली बार लेखक के रूप में पति की व्यस्तता से परिचित होती है। उसके स्वप्न बिखर जाते हैं और वह शैलेंद्र को लिखने का समय देकर विवाह को टूटने से बचाती है। परिस्थिति का यही विषम स्वीकार एकांकी के अंत में भी दिखाई देता है। अपने अनेक नाटकों में विष्णु प्रभाकर स्त्रियों की स्वाधीनता और उनके अस्तित्व की बात उठाते रहे हैं।

अभिनेयता की दृष्टि से शारदा का चरित्र निभाने वाली अभिनेत्री का कुशल होना भी महत्त्वपूर्ण है। वह केंद्र में है और एकांकी के आरंभ–मध्य–अंत का दारोमदार भी उस पर है। यही नहीं शारदा के मनोविज्ञान और अंतर्मन की स्थितियों को रचने के लिए एक कुशल अभिनेत्री की अपेक्षा है। शारदा के व्यक्तित्व में आक्रोश, झुँझलाहट, कल्पना में विचरण, करुणा, अपमान आदि मनोभावों को अभिनय की उत्कृष्टता ही मंच पर रच सकती है। नाटक के भीतर दृश्य–परिवर्तन की अनेक शैलियाँ अपनाई जाती हैं। कहीं फेडआउट–फेडइन की शैली तो कहीं पर्दा गिराने–उठाने की शैली। कहीं प्रयोग के स्तर पर गीत–नृत्य के माध्यम से नयी स्थितियों का रचा जाना। 'और वह जा न सकी' एकांकी में दृश्य और घटना बदलाव के लिए संगीत का प्रयोग एकांकीकार ने किया है। वह चाहे पात्रों के जाने और नयी स्थिति को जन्म हो या नए पात्र का आगमन या फिर पात्र का वर्तमान से अतीत में जाना। संगीत–शैली के प्रयोग से इन परिवर्तनों को एकांकीकार ने मंच पर रचा है।

रंगमंच की दृष्टि से एकांकी में वर्तमान से अतीत में जाने की टेकनीक को संगीत के माध्यम से दिशा दी गई है। उदाहरण के लिए एकांकीकार द्वार दिया गया यह रंग–निर्देश–''(संगीत के साथ पिछला दृश्य मस्तिष्क पर उभर आता है) या फिर (संगीत के साथ फ्लैश बैक)– इस तरह संगीत एक नाट्य युक्ति की भांति प्रयोग किया गया है। एकांकी में घटित घटनाएँ तीव्र होती हुई चरम सीमा पर पहुँचती हैं। रंगमंच की और कार्यव्यापार की दृष्टि से यह बेहद सुगठित एकांकी है।

बोध प्रश्न–2

3. रिक्त स्थानों की पूति कीजिएः
   1. शारदा के संवादों की भाषा का प्रधान वैशिष्ट्य ....हैं।
   2. शैलेंद्र के संवादों में उसके व्यक्तित्व का.......... पक्ष उभरता है।
   3. शरत् अपनी मां के प्रति.........और........ चरित्र का बालक है।
   4. श्रीधर, शारदा–शैलेंद्र का .... है।
   5. कार्य, स्थान और समय की एकता को नाटक–एकांकी में.......... कहा जाता है।
4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 4–5 पंक्तियों में दिजिएः
   1 एकांकी में संवादों का क्या महत्त्व है?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....
   2. शारदा के संवाद–एकालाप एकांकी के विकास में किस प्रकार सहायक हैं?

   ....

   ....

   ....

   ....
   3. 'और वह जा न सकी' एकांकी की भाषा–शैली की विशेषताएँ बताइएँ।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....
   4. रंगमंचीयता की दृष्टि से 'और वह जा न सकी' एकांकी का विश्लेषण कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

13.7 सारांश

इस इकाई में नाटककार विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'और वह जा न सकी' एकांकी का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। एकांकी नाटक की कथावस्तु और उसके संरचना शिल्प को विविध बिंदुओं से समझाया गया है। एकांकी की कथावस्तु को तीन भागों–आरंभ,

विकास और अंत के रूप में स्पष्ट करते हुए एकांकी की मूल समस्या, एकांकीकार के उद्देश्य और यथार्थवादी शैली के इस एकांकी का वैशिष्ट्य बताया गया है। एकांकी के चरित्रों को भी तीन भिन्न श्रेणियों में बाँटा गया है– प्रमुख, सहायक और अन्य। एकांकी के मुख्य पात्रों की जीवन स्थितियों और उलझे पारिवारिक ढाँचे में एक स्त्री की व्यथा–कथा को उसकी चारित्रिक विशिष्टताओं और मनोविज्ञान के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है। सहायक और अन्य पात्र एकांकी की घटनाओं और उसके उद्देश्य की पूर्ति में किस प्रकार सहायक बनते हैं, इसे भी स्पष्ट किया गया है। एकांकी के परिवेश का वैशिष्ट्य भी इकाई में बताया गया है। कथ्य के साथ संरचना शिल्प में भाषा, शैली, संवाद–योजना और रंगमंचीयता कैसे एकांकी को पाठ्य विधा से अलगाते और विशेष बनाते हैं, इसका विश्लेषण किया गया है। मंच, पात्र, नाट्य युक्तियों और अभिनय की खूबियों की दृष्टि से एकांकी कैसे अलग प्रभाव रचता है–यह सभी इस इकाई में अध्ययन के मुख्य बिंदु हैं।

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. शरत् 2. लेखक 3. शशि
4.. श्रीधर 5. स्वप्नदर्शी

2. 1. देखें इकाई 13.2
   2. देखें इकाई 13.2.3
   3. देखें इकाई 13.3.1
   4. देखें इकाई 13.3.2
   5. देखें इकाई 13.3.1 और 13.3.2
   6. देखें इकाई 13.4

बोध प्रश्न – 2

रिक्त स्थान

3. 1. मुहावरे 2. लेखकीय
   3. आज्ञाकारी, संवेदनशील 4. पारिवारिक मित्र
   5. संकलन–त्रय

4. 1. देखें इकाई 13.5.3 2. देखें इकाई 13.5.3
   3. देखें इकाई 13.5.1 4. देखें इकाई 13.6

13.9 उपयोगी पुस्तकें

1. सात एकांकी : सं. हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. हिंदी एकांकी की शिल्प–विधि का विकास : सिद्धनाथ कुमार, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।
3. कथा एक अंक की : प्रज्ञा, साहित्य भंडार, प्रयागराज।
4. रंगमंच की कहानी : देवेन्द्रराज अंकुर

इकाई 14: जगदीश चंद्र माथुर और उनके नाटक तथा एकांकी

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 जगदीश चंद्र माथुर का जीवन परिचय
14.3 जगदीश चंद्र माथुर का एकांकी लेखन
14.4 जगदीश चंद्र माथुर का नाट्य लेखन
14.5 जगदीश चंद्र माथुर का अन्य लेखन
14.5.1 ललित गद्य
14.5.2 रंग चिन्तन
14.6 जगदीश चंद्र माथुर के नाटकों एवं एकांकी की विशेषताएँ
14.6.1 प्रयोगशीलता
15.6.2 आधुनिक चेतना
15.6.3 प्रकृति और सौन्दर्य की सहज अभिव्यक्ति
15.6.4 लोक संस्कृति
15.6.5 भारतीयता
15.6.6 नई रंगदृष्टि
14.7 सारांश
14.8 उपयोगी पुस्तकें
14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार जगदीश चंद्र माथुर के व्यक्तित्व और लेखन के संबंध में अध्ययन सामग्री दे रहे हैं। आप इकाई में लेखक तथा उनके अवदान के विभिन्न पक्षों के द्वारा उनका महत्त्व भी जान सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जगदीश चंद्र माथुर के व्यक्तित्व और कृतित्व को अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- जगदीश चंद्र माथुर के लेखन संसार के बारे में जान सकेंगे; और
- जगदीश चंद्र माथुर के मौलिक अवदान की विशेषताएँ बता सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

जगदीश चंद्र माथुर (16 जुलाई, 1917 – 14 मई, 1978) हिन्दी के प्रमुख नाटककार हैं। देश की स्वतंत्रता के पश्चात उभरी लेखकों की पीढ़ी में उन्हें सबसे महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक नाटककार माना जाता है। उत्तर प्रदेश में जन्म लेने वाले माथुर की कर्मभूमि मुख्यतः बिहार रही। वे भारत सरकार में बड़े प्रशासनिक अधिकारी बने जिनके निर्देशन में भारतीय कला और संस्कृति के क्षेत्र में अनेक नवीन योजनाएँ बनीं और उन पर

क्रियान्वयन भी हुआ। वे समर्थ नाटककार और दूरदर्शी प्रशासक थे जिनके नेतृत्व में भारत में अनेक संस्थाओं ने कार्य करना प्रारंभ किया। एक लेखक के रूप में भी उनका योगदान नाटकों तक सीमित नहीं है उन्होंने रेखाचित्र, निबंध, नाट्यालोचना और शोध के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण लेखन किया। सेवानिवृत्ति के कुछ समय बाद ही उनका निधन हो गया अन्यथा उनकी प्रतिभा का लाभ हिन्दी जगत को और अधिक मिला होता।

14.2 जगदीश चंद्र माथुर का जीवन परिचय

जगदीश चंद्र माथुर का जन्म 16 जुलाई, 1917 को उत्तर प्रदेश के खुर्जा के समीप एक गाँव में हुआ। उन्होंने सन् 1937 में बी. ए. की पढ़ाई पूरी कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1939 में प्रथम श्रेणी में अंग्रेजी साहित्य में एम ए की उपाधि प्राप्त की। उस समय भारत में अंग्रेजों का शासन था और भारतीय प्रशासनिक सेवा को तब आई सी एस कहा जाता था। सन् 1941 में माथुर का इस प्रतिष्ठित परीक्षा में चयन हुआ और उन्हें बिहार का शिक्षा सचिव बनाकर भेज दिया गया। यहाँ रहते हुए उन्होंने प्राचीन भारतीय पुरातत्व तथा सांस्कृतिक स्थलों का गहराई से अवलोकन–अध्ययन किया जिसका प्रभाव उनके लेखन पर भी है। इसी कालावधि में उन्होंने बिहार में अनेक संस्थाओं का निर्माण भी किया और स्वतंत्रता के बाद बन रहे नये राष्ट्र में सांस्कृतिक गतिविधियों की भूमिका की आवश्यकता प्रतिपादित की। उन्हें खास तौर पर वैशाली महोत्सव का शुभारंभ करने और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद जैसी संस्था का गठन करने के लिए याद किया जाता है। माथुर ने बिहार में इस तरह की एक दर्जन संस्थाओं की स्थापना की थी। सन् 1955 में वे दिल्ली में आ गए, जहाँ उन्हें आकाशवाणी का महानिदेशक बना दिया गया। उनके इस कार्यकाल को आकाशवाणी के लिए साहित्य–कला –संस्कृति का सबसे शानदार कालखंड माना जाता है। उन्होंने न केवल साहित्य–संस्कृति के मूर्धन्य लोगों को आकाशवाणी से जोड़ने की पहल की अपितु आकाशवाणी को भी ऐसे अनेक नवाचारों का मंच बना दिया। सन् 1962 में उन्हें फिर से बिहार के तिरहुत प्रमंडल का कमिश्नर बनाकर भेज दिया गया, जहाँ वे एक साल रहे और फिर अगले एक साल के लिए उन्हें हार्वर्ड विश्वविद्यालय का विजिटिंग फैलो बनने का अवसर मिला। फिर वे कृषि मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव रहे और कुछ वर्षों तक गृह मंत्रालय में हिन्दी सलाहाकार के पद पर भी कार्यरत रहे। सेवानिवृत्ति के कुछ समय बाद ही ह्रदय रोग के कारण उनका निधन हो गया।

अपने साहित्यिक–सांस्कृतिक योगदान के लिए माथुर को 'विद्यावारिधि' की उपाधि से विभूषित किया गया था। इनके साथ ही आपको 'कालिदास अवार्ड' और 'बिहार राजभाषा पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया।

उन्होंने रूस और अमेरिका सहित अनेक देशों की यात्राएँ भी की थीं जिनमें अनेक बार उन्हें भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से भी जाने का अवसर मिला। वे विश्व स्तर पर भी अनेक समितियों के सदस्य रहे थे। कहा जा सकता है कि प्रशासनिक सेवा में रहकर भी माथुर जी स्वभाव से रचनाकार और बड़े संस्कृतिकर्मी थे जिन्होंने साहित्य–कला के क्षेत्र में युगद्रष्टा की भूमिका का निर्वहन किया।

14.3 जगदीश चंद्र माथुर का एकांकी लेखन

जगदीश चंद्र माथुर के नाट्य लेखन की शुरूआत एकांकी लेखन से ही हुई। एकांकी एक प्रकार का नाटक ही है जिसमें पारंपरिक नाटक के रूप विधान के स्थान पर सिर्फ एक अंक में ही सम्पूर्ण नाटक का आयोजन होता है। सुप्रसिद्ध नाटककार और एकांकी साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है, एकांकी में एक ऐसी घटना रहती है, जिसका जिज्ञासा पूर्ण और कौतूहलमय नाटकीय शैली में चरम विकास होकर अंत

होता है। वहीं डॉ. रामचरण महेंद्र के अनुसार "एकांकी न तो बड़े नाटक का संक्षिप्त रूप है, न कहानी, संभाषण। अतः नाटक प्रबंध काव्य या महाकाव्य के समान विस्तृत है, तो एकांकी मुक्तक के समान है।" रूप विधान में अंकों की संख्या से यह भ्रम हो जाता है कि एकांकी और पूर्ण नाटक में आकार का भेद है। लेकिन सेठ गोविंद दास जैसे पुरानी पीढ़ी के वरेण्य नाटककार नाटक–एकांकी में आकार का भेद नहीं मानते। उनका मत है, "एकांकी छोटी ही हो यह जरूरी नहीं। वास्तविक भिन्नता इन दोनों के परिवेश और आयाम के संकोच–विस्तार की है। आकार में बड़ा होकर भी एकांकी एकत्व की सीमा के बाहर नहीं जा सकती। जबकि नाटक में बहुत्व रहा करता है। जीवन के एक ही पहलू की अल्प समय में स्पष्ट एवं प्रभावी झांकी एकांकी है। जो बहुलता, जटिलता, प्रासंगिक, गतिविधियों का अंकन नाटक में होता है।"

जगदीश चंद्र माथुर ने सन् 1936 में अपना पहला एकांकी 'मेरी बाँसुरी' लिखा था और उनके एकांकी नाटकों का पहला संकलन सन् 1946 में प्रकाशित हो गया था जिसका शीर्षक 'भोर का तारा' था। उनके कुल तीन एकांकी संकलन प्रकाशित हुए जिनका विवरण निम्न है :

(क) भोर का तारा – 1947

इस संकलन में मकड़ी का जाला, कलिंग विजय, खंडहर, रीढ़ की हड्डी और भोर का तारा एकांकी संकलित थे।

(ख) नटखट एकांकी : ओ मेरे सपने – 1953

खिड़की की राह, कबूतरखाना, घोंसले, भाषण और ओ मेरे सपने एकांकी संकलित थे।

(ग) मेरे सर्वश्रेष्ठ रंग एकांकी – 1972

बंदी, घोंसले, खंडहर, ओ मेरे सपने, भोर का तारा, भाषण, विजय की बेला और रीढ़ की हड्डी एकांकी संकलित थे।

1949 में पाठ्यक्रमों के लिए तैयार किए गए एक एकांकी संकलन में प्रसिद्ध नाटककार रामकुमार वर्मा ने जगदीश चंद्र माथुर के एकांकी लेखन पर विचार करते हुए लिखा था, "यद्यपि इन्होंने अधिक नाटकों की रचना नहीं की तथापि अपने इने–गिने नाटकों में इन्होंने घटनाओं की जो संसृष्टि की है वह जीवन के सत्य को उभारने में अत्यंत मर्मस्पर्शिनी हो गई है। इन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक कथानकों में समानता से सफलता प्राप्त की है। जीवन में संयम और नियमन के ये विशेष समर्थक हैं और इस प्रकार इनके नाटकों में जीवन के वस्तुवाद की तीखी आलोचना है। इनके नाटकों में अधिकतर गंभीर वातावरण रहता है और ये पात्रों को अत्यंत संयत ढंग से घटनाओं में प्रवेश कराते हैं। फलस्वरूप इनका कथोपकथन भी अधिक मर्यादित और संक्षिप्त होता है। अपनी कला को ये दुखांत नाटकों में अधिक सफलता से निखार सकते हैं, सुखांत नाटकों में नहीं। इनमें नाटकीय कला के प्रायः सभी गुण हैं। यदि ये नाटकों की रचना में अधिक प्रयत्नशील हों तो इनके नाटक अपनी विशेषता के कारण यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर सकेंगे।" स्पष्ट है कि रामकुमार वर्मा की अनुभवी निगाह जगदीश चंद्र माथुर के नाट्य लेखन के संबंध में उचित ही आकलन और विश्लेषण कर रही थी।

आइए जगदीश चन्द्र माथुर द्वारा रचित एकांकियों पर विचार करते हैं।

मेरी बाँसुरी – जगदीश चंद्र माथुर ने अपने इस प्रारम्भिक एकांकी में दो नवयुवकों के चरित्रों के द्वारा आधुनिक जीवन सभ्यता की विकृतियों को उजागर करने की कोशिश की है। यहाँ सुधाकर और निर्मल नाम के दो नवयुक हैं जिनमें सुधाकर नये रंग–ढंग और फैशन से प्रभावित है वहीं निर्मल, सुसंस्कृत और थोड़ा शर्मिला है। एक तरफ फैशन

के रंग–ढंग में चलते पुर्जे सरीखा सुधाकर है और उसके समक्ष त्याग और बलिदान की भावना से ओतप्रोत निर्मल। दोनों एक युवती उर्मिला से प्रेम करते हैं लेकिन सुधाकर उसे बनावटी तरीकों से फँसाना चाहता है वहीं निर्मल सच्चा प्रेमी है जो उर्मिला को हृदय से चाहता है। निर्मल पाने मित्रों को बचाने के लिए बड़ी राशि का अपराध अपने सर ले लेता है और इस बलिदान से आदर्श प्रस्तुत करता है। वस्तुतः जगदीश चंद्र माथुर इस एकांकी में अंग्रेजी फैशन और नये जमाने के चाल चलन से प्रभावित युवाओं पर तीखा व्यंग्य करते हैं।

मकड़ी का जाला – इस सामाजिक एकांकी में जगदीश चंद्र माथुर उच्च वर्ग के धनी व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत करते हैं जिसे वर्ग चरित्र भी कहा जा सकता है। वे इस व्यक्ति के माध्यम से मशीन जैसे हो चुके मनुष्य की नियति पर व्यंग्य करते हैं जो धन कमाने को ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझता है। वह अपनी नैसर्गिक भावनाओं को दबाकर धन के लिए समर्पित होना आवश्यक समझता है लेकिन माथुर बताते हैं कि भौतिक उन्नति के बावजूद मनुष्य अपनी कल्पनाओं और विचारों को हमेशा दबा नहीं सकता। इसका शीर्षक अत्यंत व्यंजक बन गया है जो मकड़ी के बहाने मनुष्य की नियति पर व्यंग्य करता प्रतीत होता है। यह सामाजिक एकांकी मनुष्य जीवन के वास्तविक और व्यापक उद्देश्यों के महत्त्व को दर्शाता है।

कलिंग विजय– 'कलिंग विजय' माथुर जी का प्रसिद्ध एकांकी है जिसे विद्यालयों में खूब पढ़ाया जाता रहा है। यह एकांकी सम्राट अशोक के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना पर आधारित है जिसमें अपनी प्रेयसी रेखा की आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह पड़ोसी राज्य कलिंग से युद्ध कर उसे जीत लेता है। विजय के बाद युद्ध की हिंसा तथा रेखा के प्रेमपाश की निरर्थकता को समझकर अशोक विश्वप्रेम और अहिंसा को अपना लेता है। यहाँ माथुर प्रेम के व्यष्टिगत संकुचन से अपने नायक को मुक्त कर समष्टिगत भावभूमि पर ले जाने के लिए कलात्मक ढंग से रचना करते हैं। वे मनोविज्ञान का सहारा लेकर अपने मात्रों के अंतर्द्वंद्व का सम्यक उद्घाटन और विवेचन भी करते हैं। रेखा और कलिंग देश की राजकुमारी के समक्ष अशोक का व्यक्तित्व दुर्बल प्रतीत होता है किन्तु अपने वैराग्य और धर्म मार्ग पर चलने के संकल्प से अंततः उसका प्रभाव उद्घाटित होता है।

खंडहर – साधारण लोगों के मामूली स्वप्न भी पूरा न कर पाने की ट्रेजेडी इस एकांकी को यादगार बनाती है। नंदलाल और मकबूल अहमद अपनी सुनहरी यादों में जीने वाले मामूली क्लर्क हैं जिनका जीवन रोजमर्रा के तनावों से खंडहर जैसा हो चुका है। अपने चपरासी को रोमांस में डूबा देखकर उन्हें अपने अतीत की याद आती है और वे भी अपनी पुरानी प्रेमिकाओं को बुलाते हैं। ये चारों प्रेमी–प्रेमिका मिलते हैं किन्तु अपने वर्तमान की जिम्मेदारियों से सयाने हो चुके हैं। इधर इन दोनों प्रेमियों का दुस्साहस भारी पड़ता है और उन्हें अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ जाता है। नाट्य आलोचक सत्येन्द्र कुमार तनेजा के अनुसार, ''खंडहर' माथुर का सर्वप्रिय एकांकी रहा है। इस एकांकी की ताजगी के पीछे माथुर की अपनी जिंदगी, दफ्तरी परिवेश और वहाँ बनते–बिखरते सपनों का असर है।''

रीढ़ की हड्डी– यह भी एक सामाजिक विषयों पर लिखा गया एकांकी है जिसमें विवाह के लिए वर द्वारा वधू की परीक्षा लेने सरीखी हरकतों पर व्यंग्य है। इधर के परिप्रेक्ष्य में इसे पितृसत्तात्मक मनोसंरचना पर व्यंग्य भी कहा जा सकता है। माथुर जी बताते हैं वर जब वधू को देखने जाता है तो कैसी कैसी परीक्षा लेता है और दूसरी तरफ अपने तमाम ऐब छिपाता चलता है। जब यही वर महोदय कन्या छात्रावास के आसपास भटकने के कारण अपमानित होते हैं तब उन्हें एक नौकरानी के पैर पकड़कर माफी भी माँगनी पड़ती है। वस्तुतः समाज में फैली छोटी समझी जाने वाली अनेक बुराइयों को

भी माथुर रचना का विषय बनाते हैं और उन पर व्यंग्य प्रहार करते हैं। एकांकी की नायिका उमा बेहद प्रभावशाली चरित्र है जो अपनी तेजस्विता में अविस्मरणीय है, निम्न संवादों में उसका तेज निखरकर आया है –

''उमाः जी हाँ, मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक–झाँककर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत–अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।''

गोपालप्रसाद : (खड़े होकर गुस्सें से) बस, हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा की। आपकी लड़की बी.ए. पास है और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए, मेरी छड़ी कहाँ है। मैं चलता हूँ। (छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं।) बी.ए. पास? ओफ्फोह! गजब हो जाता! झूठ का भी कुछ ठिकाना है! आओ बेटे, चलो (दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।)

उमाः जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए! लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं –यानी बैकबोन।''

भोर का तारा – 'भोर का तारा' जगदीश चंद्र माथुर का प्रसिद्ध एकांकी है जिसमें कवि और भावुक हृदय शेखर का चरित्र प्रधान है। शेखर अपनी प्रेयसी छाया के प्रेम में खोया रहने वाला प्रेमी है और उसकी प्रेरणा से एक महाकाव्य की रचना में भी सन्नद्ध है। गुप्त साम्राज्य की पृष्ठभूमि में लिखे गए इस एकांकी में बड़ा मोड़ तब आ जाता है जब देश पर बाहरी ताकतों का हमला होता है और राष्ट्र की रक्षा के लिए शेखर कवि कर्म छोड़कर रणभूमि की तरफ अग्रसर हो जाता है। कलाकार के द्वन्द्व से भी अधिक यहाँ कलाकार से पहले मनुष्य के समक्ष माथुर उसके नागरिक और देश के प्रति कर्तव्य पर सवाल उठाते हैं। इस पाठ्यक्रम में आप 'भोर का तारा' एकांकी का अध्ययन कर रहे हैं। इकाई 15 में आप इस एकांकी का विश्लेषण एवं मूल्यांकन संबंधी अध्ययन करेंगे।

खिड़की की राह – रेडियो नाटक की तकनीक पर लिखे गए इस एकांकी में व्यंग्य के साथ हास्य का भी पुट मिलता है। नाटक की नायिका उर्मिला अत्यंत सबल चरित्र के रूप में आती है वह अपने भावी पति प्रवीण के अंतर्विरोधों को पहचान जाती है और दूसरी तरफ विवाह से बचने के लिए घर से भाग रहे एक संगीत शिक्षक दिलीप को अंततः उर्मिला से ही कुछ विचित्र परिस्थितियों में विवाह के लिए तैयार होना पड़ता है। उसकी स्थिति अत्यंत दारुण और मार्मिक हो जाती है। खिड़की यहाँ स्वतंत्र विचारों की प्रतीक बन गई है।

कबूतरखाना – इस एकांकी में माथुर ने एक तरफ पति–पत्नी के संबंधों के तनावों को रखा है और उनके साथ प्रकारांतर अफसरशाही का थोथापन भी उभार दिया है। एकांकी के वातावरण को प्रभावी बनाने के लिए संगीत और चित्र जैसी कलाओं का सहारा इसे विशिष्ट बनाता है। इस एकांकी के अंत में आया यह वाक्य जैसे समूची कथा स्वयं कह देता है, 'जिंदगी पथरीली चट्टानों और रसभरे बादलों का संयोग है।'

ओ मेरे सपने – तीन दोस्तों मगन चंद, सूरजभान और गोपी चंद्र ऐसे नवयुवक हैं जो अवकाश पाकर काफी हाउस में मिलते रहते हैं। उनकी बातों में अक्सर फिल्मी संसार होता है जिसमें अपने सपनों की दुनिया भी शामिल हो गई है। धीरे–धीरे इनकी बातों में विमल भी सम्मिलित होने लगता है और इन तीनों का विमल के घर भी आना–जाना होता है। ये तीनों विमल की युवा पत्नी सरिता में अपने स्वप्नों की नायिका को खोजने की कोशिश करने लगते हैं। सरिता आधुनिक, समझदार और मानवीय धरातल पर स्थितियों को देखने वाली उदार महिला है। अंततः तीनों को वस्तुस्थिति का संज्ञान होता है। माथुर ने इस एकांकी के माध्यम से नवयुवकों के रोमानी सपनों का चित्र हास्य–व्यंग्य के पुट के साथ उकेरा है।

बंदी – एक पुराने धनी जमींदार तारानाथ की कथा है जो अपने परिवार के बेहतर भविष्य की कामना से शहर में बस गए थे किन्तु अब सेवानिवृत्ति के बाद फिर लौटकर अपने घर–गाँव आ जाते हैं। उनकी इस वापसी में उनकी युवा पुत्री का भी आग्रह है जो कलाकार स्वभाव की है और गाँव में प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को देखना चाहती है। उसका प्रेमी वीरेन भी गाँव में सुधार और जागरण का काम करना चाहता है लेकिन उसका टकराव स्थानीय लोगों से होता है। लोचन की मदद से वह बच जाता है किन्तु तब तारानाथ फिर शहर जाने का निर्णय लेते हैं। सत्येन्द्र कुमार तनेजा ने लिखा है, ''माथुर के अनुसार व्यक्ति अपने परिवेश, अपनी परिधि की जड़ों का बंदी है। 'बंदी' जगदीश चंद्र माथुर की इसलिए भी एक विशिष्ट नाट्य कृति है, क्योंकि इस एकांकी के नाट्यालेख की संरचना को पुष्ट और प्रभावी परिप्रेक्ष्य देने की वजह से उन्होंने वामपंथी विचारधारा को सुविधानुसार अपनाया है। वीरेन, लोचन, चेतराम के व्यक्तित्व की रेखाएँ और आचरण की कार्य पद्धति को प्रगतिशील दृष्टिकोण के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है।''

एकांकी के अंत में आया लोचन का एक संवाद बताता है कि माथुर जी इस पलायन के बावजूद निराश नहीं हैं और उनका एक पात्र अभी भी गाँव में रहकर मुक्ति का स्वप्न देख रहा है –

''मैं जानता हूँ कि कौन–सी जंजीरें हैं जो इन्हें बन्द किये हैं। (नेपथ्य में ताँगे के चलने की आवाज) जा रहे हैं वे लोग! और मैं बता भी न पाया। कैसे बताऊँ? कैसे बताऊँ कि यह कुदाली और ये मेहनत–कश हाथ, यही वे तिलिस्म है जिससे मैं धरती को भेद पाता हूँ। ये मेरी आजाद दुनिया के सन्देश–वाहक हैं, यही वह वाणी है जो मुझे गरीबी के लोक में अपनापन देती है। रुक–रुक कर, तुम लोग जा रहे हो। बच कर भाग रहे हो, लेकिन मैं? क्या मैं अकेला हूँ? विश्व–संपूर्ण स्वकर, अकेला ही सही, लेकिन बंदी तो नहीं।''

वस्तुतः जगदीश चंद्र माथुर अपने एकांकी नाटकों में सामाजिक विषयों को उठाते हैं। अंग्रेजी औपवेशिकता से मुक्त होकर स्वतंत्रता की तरफ बढ़ रहे राष्ट्र के समाज में व्याप्त संकुचन और बुराइयाँ जी माथुर को इन एकांकियों की प्रेरणा देती हैं।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

14.4 जगदीश चंद्र माथुर का नाट्य लेखन

जगदीश चंद्र माथुर ने कुल पाँच नाटकों की रचना की थी जो इस प्रकार हैं –कोणार्क (1951), शारदीया (1959), पहला राजा (1969), दशरथनंदन (1974) और रघुकुलरीति (1985)।

कोणार्क

हिन्दी नाटक का इतिहास लिखने वाले विद्वान आलोचक और नाट्य इतिहासकार दशरथ ओझा ने 'कोणार्क' को नया नाटक माना है। भारतेन्दु के बाद जयशंकर प्रसाद के नाटक लेखन से देश की स्वाधीनता तक भी बहुत उल्लेखनीय नाटक नहीं लिखे गए। माथुर का नाटक 'कोणार्क' स्वाधीन भारत का पहला प्रमुख हिन्दी नाटक है। इस कालखंड की परिस्थितियों के आलोक में दशरथ ओझा ने लिखा है, 'नाट्यसाहित्य और नाट्यकला का जितना विकास विगत बीस वर्षों (1950–1970) में हुआ है उतना इससे पूर्व नहीं। आज नित्य नये–नये प्रयोग हो रहे हैं। यूरोप की तरह हमारे देश पर भी ब्रेख्ट के नाटक और उसके नये रंगमंच का प्रभाव पड़ रहा है।'' ब्रेख्ट के अभिप्राय को प्रकट करते हुए इब्राहीम अलकाजी ने लिखा है – ''नाटक और रंगमंच का उद्देश्य व्यवसाय नहीं अपितु महत्त्वपूर्ण और सामाजिक कार्य करना है। नाट्य मंडली आने वाले

सभी दर्शकों को शिक्षित करने का भरसक प्रयास करती है। यह कार्य केवल थियेटर देखकर ही नहीं बल्कि थियेटर में आने के सम्पूर्ण अनुभव द्वारा वहाँ की गंभीरता और लग्न में सांस लेकर हो सकता है और यह भावुकतापूर्ण स्वच्छंदतावादी अर्थ में नहीं बल्कि सक्रिय समाजवादी अर्थ में। विगत् बीस वर्षों के नाट्य साहित्य में यही तथ्य प्रमाणित हो रहा है। जगदीश चंद्र माथुर का कोणार्क इस दिशा में प्रथम प्रयास है।''

ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार बनाकर लिखे गए 'कोणार्क' की विशेषता बाह्य संघर्षों के साथ मनुष्य और कलाकार के भीतरी संघर्षों का सुंदर चित्रण करने में है। उत्कल नरेश महाराज नरसिंह देव के आदेश पर विगत बारह वर्षों से मंदिर का निर्माण हो रहा है, यह निर्माण कार्य महाशिल्पी विशु के निर्देशन में लगभग बारह सौ शिल्पियों के द्वारा किया जा रहा है। बंग प्रदेश में सैनिक कार्रवाइयों के चलते महाराज को वहाँ जाना पड़ा है और अब शासन महामात्य चालुक्य के हाथों में है। चालुक्य निर्देश देते हैं कि यदि एक सप्ताह में मंदिर का कार्य पूर्ण न हुआ तो शिल्पियों के हाथ काट दिए जाएँगे। मंदिर पर शिखर की स्थापना का कार्य अभी भी लंबित है और इस कार्य को विशिष्ट क्षमतावान धर्मपद पूरा कर देते हैं। चालुक्य के षड्यंत्र से राजद्रोह हो जाता है जिसे भी धर्मपद समाप्त करते हैं किन्तु उनके जीवन का अंत हो जाता है। इस आघात और चालुक्य की विजय से महाशिल्पी विशु व्यथित हैं और वे शिखर से चुंबक हटा देते हैं जिससे मंदिर विखंडित होकर बिखर जाता है। कलाकार की पराजय न होने देने का धर्मपद का स्वप्न पूरा होता है।

विख्यात नाट्य समीक्षक नेमिचन्द्र जैन ने 'कोणार्क' के विषय में लिखा है, ''कोणार्क में एक बीते हुए युग के संदर्भ में समकालीन जीवंत भाव स्थिति का अन्वेषण किया गया है, जिसमें घटनाओं, पात्रों और भाषा को एक से अधिक स्तर और आयाम प्राप्त होता है और संभाव्य निहित नाटकीय अर्थों का महत्त्व बढ़ जाता है।''

शारदीया

नाट्य समीक्षक गोविंद चातक ने लिखा है, '''शारदीया' भी कोणार्क की भाँति ही ऐतिहासिक कथा सूत्र पर आधारित नाट्य–कृति है। किन्तु ये नाटक उस अर्थ अथवा मात्रा में ऐतिहासिक नहीं है, जिस अर्थ और मात्रा में प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक कहे जाते रहे हैं। वस्तुतः जगदीश चंद्र माथुर की नाट्य प्रतिभा ने इतिहास की विषय वस्तु पर नाटक लिखने के बजाय इतिहास को अपनी अनुभूति और स्वच्छंदतावादी कल्पना–केन्द्रबिन्दु मात्र बनाया। शारदीया का लक्ष्य भी इतिहास नहीं, ऐतिहासिक तथ्य द्वारा जागृत कल्पना है जो तथ्य के मार्मिक बिन्दु से इतिहास के कलेवर पर हावी हो जाती है।''

नाटक की कथावस्तु यह है कि कागल गाँव के किलेदार शर्जेराव घाटगे की बेटी बायजा बाई अत्यंत रूपसी है और वह अपने बचपन के सखा नरसिंह राव के प्रति अनुरक्त है। शर्जेराव को यशवंत राव किलेदार के ओहदे से हटा देता है और अपने अपमान का बदला लेने शर्जेराव पूना जाकर पेशवा की सेना में सरदार बन जाता है। उसका स्वप्न है कि ग्वालियर राज्य का दीवान बने। शर्जेराव इस महत्त्वाकांक्षा के लिए अपनी रूपवती कन्या का उपयोग करना चाहता है और जब उसे अपने बेटी के नरसिंह राव से प्रणय संबंध की जानकारी मिलती है तो वह क्रुद्ध हो जाता है और बायजा बाई को भी चेतावनी देता है। शर्जेराव एक युद्ध में नरसिंह राव की भूमिका को संदिग्ध बनाकर उसे आजीवन कारावास की सजा दिलवा देता है। इसके बाद वह अपनी बेटी का विवाह महाराज सिंधिया से करवा देता है और बदले में खुद को ग्वालियर राज्य के प्रधानमंत्री बनने का आदेश जारी करवा देता है। दोनों प्रेमी हमेशा के लिए दूर हो जाते हैं। सत्येन्द्र कुमार तनेजा ने नाटक के संबंध में उचित ही लिखा है, 'शारदीया' अवसाद के गहरे अँधेरे की त्रासदी है।'

पहला राजा

विख्यात नाट्य आलोचक नेमिचन्द्र जैन ने इस नाटक के संदर्भ में कहा है, ''पहला राजा नाटक में लोक नाट्य परंपरा के लिए रूढ़ियों, युक्तियों और व्यवहारों का प्रयोग है जो हिन्दी नाट्य लेखन के लिए बहुत ही नया है।'' रंग प्रयोगों की दृष्टि से पहला राजा निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण नाट्य रचना है जो नेहरू युगीन यथार्थ को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करती है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू और नाटक में आए पहले राजा पृथु को आमने सामने रखकर नाटक की मिथकीय संरचना को सहज ही समझा जा सकता है।

नाटक की भूमिका में माथुर ने जी लिखा है, ''मुख्य पात्र और प्रसंग मैंने वैदिक और पौराणिक साहित्य से लिए हैं लेकिन इसलिए ही वह नाटक पौराणिक नहीं कहा जा सकता। पृष्ठभूमि के कुछ अंश और कुछ सूत्र मोहनजोदड़ो–हड़प्पा सभ्यता की खुदाइयों से सम्बद्ध हैं पर इसी से वह नाटक ऐतिहासिक नहीं हो पाया। वैदिक पौराणिक साहित्य, पुरातत्व एवं इतिहास, लोकगीत और बोलचाल –इन सभी में मुझे प्रतीकों के उपकरण मिले हैं, उन समस्याओं को प्रकट करने के लिए जिनसे मैं इस नाटक में जूझता रहा हूँ। वे समस्याएँ सर्वथा आधुनिक हैं, वे उलझनें मेरा भोगा हुआ यथार्थ हैं तो यह नाटक न पौराणिक है, न ऐतिहासिक, न यथार्थवादी। यह तो एक मार्डन एलीगरी– आधुनिक अन्योक्ति का मंचीय रूप है।''

नाटक में बताया गया है कि धरती पर हुए पहले राजा पृथु की समस्या है कि भरपूर पुरुषार्थ और प्रजा से अनन्य प्रेम के बावजूद न भूख का समाधान है और न अकाल का। वह सिंचाई और अन्न के लिए अनेक योजनाएँ बनाता है। उसके राज्य के मुनिगण यज्ञों के द्वारा उन्नति के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रकारांतर से यहाँ राजसत्ता और धर्मसत्ता का द्वन्द्व भी दर्शाया गया है। नाटक के अंत में गहनघोर वर्षा के बाद एक बाँध टूट जाता है और प्रलय जैसी स्थिति हो जाती है। राज्य पृथु को प्रजा के कोप का शिकार होना पड़ता है लेकिन वह प्रजा के बीच में जाता है और उनके दुख दर्द सुनकर सांत्वना देता है।

दशरथनंदन

अपने विद्यार्थी जीवन में जगदीश चंद्र माथुर रामचरितमानस से प्रभावित थे और माथुर के मन पर इस महाकाव्य के गहरे संस्कार भी रहे। उन्होंने रामचरितमानस में नाटकीय तत्त्वों पर एक लेख भी लिखा था जो अंग्रेजी के पत्र लीडर में प्रकाशित हुआ था। आगे जाकर सन् 1974–75 में जब भारत भर में मानस चतुर्थ शती समारोहों का आयोजन हुआ तब माथुर के मन में अपने पुराने मानस प्रेम के चलते एक नाटक लिखने का मन हुआ। उन्होंने इस नाटक की भूमिका में लिखा है, ''इस नाटक को लिखते समय मेरा प्रधान उद्देश्य यह है कि मैं गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की मुख्य कथा एवं उनके चुने हुए शब्दों, पदों, विचारों और दर्शन को वर्तमान समाज तक इस रूप में पहुँचा सकूँ कि मानस को आसानी से समझा जा सके और साथ ही मूल काव्य के रस एवं भक्ति तत्त्व का भी आनंद उठाया जा सके।''

दशरथनंदन नाटक की कथा वस्तु का निर्माण जिन मुख्य घटनाओं और प्रसंगों के आधार पर हुआ है वे इस प्रकार हैं– मुनि विश्वामित्र का अयोध्या में आना, उनके द्वारा राक्षसों के वध के लिए राम से अनुरोध, राम लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ वन गमन, राक्षसों के साथ संघर्ष और उनका वध, राम लक्ष्मण की मुनि विश्वामित्र के साथ अयोध्या में वापसी, जनकवाटिका में राम सीता का प्रथम अवलोकन और धनुष तोड़ना, परशुराम का आना और लक्ष्मण से विवाद के बाद उनका क्रोध, राम का अलौकिक रूप, राम सीता का विवाह होना। मुख्यतः बालकाण्ड के इन प्रसंगों से राम के प्रारम्भिक

जीवन की सुंदर छटा इस नाटक में प्रस्तुत हुई है। सत्येन्द्र कुमार तनेजा ने इस नाटक के विषय में लिखा है, ''नाट्यालेख के पाठ को विन्यास देने, सूत्रधार–वृंद–वाचक तुलसीदास–कोरस के प्रयोग में नाटकीय विवेक का सहारा लिया गया। 1974 में प्रकाशित दशरथनंदन अपनी अन्तर्वस्तु और शिल्पविधान की दृष्टि से परखा जाए तो एक लीला–नाटक के नाते एक सफल नाट्यालेख माना जा सकता है।''

रघुकुलरीति

डॉ दशरथ ओझा के अनुसार जगदीश चंद्र माथुर ने इस नाटक की रचना 60 वर्ष की आयु में अर्थात सन् 1977 में की थी।

प्रतीत होता है कि यह नाटक दशरथनंदन नाटक का ही दूसरा भाग है जिसमें दशरथनंदन में वर्णित घटनाओं और प्रसंगों से आगे की कथा आती है। यहाँ राम के राजतिलक की घोषणा, प्रजा में आनंद की लहर, मंथरा का कुचक्र और कैकेयी का रूठकर कोप भवन में जाना, राम और कैकेयी का संवाद, अयोध्यावासियों का आक्रोश, राम का सीता और लक्ष्मण के साथ वन गमन, प्रजा का नगर की सीमा तक विदा देने जाना जैसी घटनाएँ आई हैं।

सत्येन्द्र कुमार तनेजा लिखते हैं, ''जगदीश चंद्र माथुर ने लीला–नाटक रघुकुलरीति में संघर्ष की नाटकीय स्थितियों पर ध्यान दिया है। वनवास की मांग और उसके आघात की वजह से दशरथ का संघर्ष आंतरिक है, मंथरा कैकेयी प्रकरण में कैकेयी के हृदय परिवर्तन को विश्वसनीय स्वरूप दिया गया है, भरत और लक्ष्मण जीवंत हैं, सारे कार्य व्यापार के केंद्र में राम का होना अपेक्षित था। प्रजा की उपस्थिति को भी उपयुक्त महत्त्व दिया गया है। जगदीश चंद्र माथुर ने अपने पात्रों को टाइप होने से बचाया है। दशरथनंदन की तुलना में रघुकुलरीति में पाठ का पुनर्गठन बेहतर और नाटकीय है।''

14.5 जगदीश चंद्र माथुर का अन्य लेखन

नाटकों के अलावा भी माथुर ने अन्य विधाओं में लिखना पसंद किया था। उन्होंने रेखाचित्र, निबंध और रंग चिंतन से संबंधी शोध लेखन भी किया। ललित गद्य के अंतर्गत उनकी कुछ पुस्तकें मिलती हैं – दस तस्वीरें (1962) और जिन्होंने जीना जाना (विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित और सम्पूर्ण रचनावली में संकलित) जो वस्तुतः रेखाचित्र हैं वहीं स्वतंत्र निबंध की भी एक पुस्तक है। उनके रंग चिंतन संबंधी लेखन की दो पुस्तकें हैं – परम्पराशील नाट्य (1969) और प्राचीन भाषा नाटक संग्रह (1972)।

14.5.1 ललित गद्य

यह सुखद आश्चर्य ही है कि लगभग बाल्यकाल में ही जगदीश चंद्र माथुर की रुचि चरित लेखन में हो गई थी। वे स्वयं 'दस तस्वीरें' की भूमिका में अपने रेखाचित्रों को चरित लेख कहते हैं, ''चरितलेख ललित और गया, बिहार साहित्य का अंग है, संस्मरण उत्कृष्ट पत्रकारिता की एक वैयक्तिक और मनोरंजक विधा है।'' आगे उन्होंने यह भी लिखा है, ''भारतीय साहित्य में चरित लेखों की परंपरा का जिक्र यहाँ नहीं करूँगा यद्यपि दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता अमूल्य निधि है हिन्दी के चरित साहित्य की। मेरे ऊपर प्रभाव पड़ा यूरोपीय साहित्य के चरितकारों का। जिन दिनों हेनरी फोर्ड की जीवनी लिखी, उसके एक वर्ष बाद एक वाद–विवाद प्रतियोगिता में पारितोषिक स्वरूप मुझे ए.जी. गार्डिनर की पुस्तक 'प्रोफेट्स, प्रीस्टस एंड प्रिंसेस' उपहारस्वरूप मिली। आद्योपांत पढ़ गया और उसके बाद गार्डिनर की अन्य रचनाओं के साथ लिटन स्ट्रेची, आन्द्रे मारवा, लुडविंग, प्रीस्टले इत्यादि के लिखे चरित निबंध पढे और सम्पूर्ण जीवनियाँ भी। दो विशेषताएँ मैंने इन रचनाओं में पायीं। चरित नायक के जीवन की घटनाओं का चुनाव और उसका गुंफन इस भाँति किया जाता है कि लगभग सारी जीवन कथा

का दिग्दर्शन होने पर भी पाठक को इतिवृत्तात्मकता का अनुभव नहीं होता। घटनाक्रम सन् के सिलसिले से नहीं किया जाता है बल्कि चरितनायक के व्यक्तित्व–विकास और उसके विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से। पाठ को जीवन क्रम नहीं जीवन कथानक पढ़ने को मिलता है। दूसरी विशेषता है कथा के उद्घाटन के साथ–साथ नायक की अंतरछवि का विश्लेषण। विश्लेषण, मात्र वर्णन नहीं। हिन्दी भाषा में पोर्ट्रेट के लिए कोई उपयुक्त पर्याय नहीं है। उर्दू में सबीह चालू है और मध्ययुगीन हिन्दी कवियों ने कहीं–कहीं इस शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन पेन पोर्ट्रेट यानी व्यक्ति–चित्रलेख के लिए उर्दू में भी सबीह शब्द का व्यवहार नहीं होता। इसीलिए मैंने चरितलेख की संज्ञा दी है, क्योंकि संस्मरण इन लेखों के लिए उतना ही अधूरा है, जितना रेखाचित्र।''

इस विवरण से पता चलता है कि केवल चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने हेनरी फोर्ड का जीवन चरित लिखा और बाद में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और फ्रांस की जॉन ऑफ आर्क के जीवन चरितों के साथ इन तीनों को एक छोटी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित भी करवाया। बिहार के शिक्षा सचिव और आकाशवाणी के महानिदेशक के रूप में कार्यरत रहते हुए यह स्वाभाविक ही था कि साहित्य–कला– संस्कृति के लोगों से उनका गहरा परिचय और संवाद हो। उनकी इन दोनों पुस्तकों में आए अधिकांश लोग इसी कार्यकाल की देन माने जाएँगे यद्यपि 'दस तस्वीरें' में उनके शिक्षक और परिजन भी आए हैं।

'दस तस्वीरें' में जिन विभूतियों के रेखाचित्र हैं उनके नाम पुस्तक के अध्यायों सहित इस प्रकार हैं:

1 जीवन निर्माता अध्यापक – अमरनाथ झा

2 मतवाला कलाकार – शिशिर भादुड़ी

3 अफसर जो विलक्षण अपवाद था –पुरुषोत्तम मंगेश लाड

4 आस्थावान अंग्रेज शिक्षक – एफ जी पीयर्स

5 विराट स्वर का विधायक – पन्नलाल घोष

6 व्यवहारकुशल और संवेदनशील पंडित – अनंत सदाशिव अलटेकर

7 किशोर जीवन की मुस्कान ही जिसकी साधना थी – श्रीराम वाजपेयी

8 एक जन्मजात चक्रवर्ती – सच्चिदानंद सिन्हा

9 द्रष्टा, करता और कवि – सुधींद्रनाथ दत्त

10 मेरे पिता – लक्ष्मीनारायण माथुर

'जिन्होंने जीना जाना' के अंतर्गत लिखे गए चरित लेख निम्न हैं:

1 हिन्दी साहित्य के चिरकुमार – बेनीपुरी

2 अमृत के स्रोत– जवाहरलाल नेहरू

3 सदाबहार साया – मामा वरेरकर

4 कुछ तरुण स्मृतियाँ – सुमित्रानंदन पंत

5 ग्रामीण हृदयों के सम्राट – राजेन्द्र प्रसाद

6 प्रज्ञा के शिल्पी विराट के दर्शक – वासुदेवशरण अग्रवाल

7 निराले आश्रयदाता – बनारसीदास चतुर्वेदी

8 तपस्वी साहित्यकार – शिवपूजन सहाय

9 पंडित और सूत्रधार – वेंकट राघवन

10 जो झंकार की पगडंडियाँ छोड़ गए हैं – राधिकारमण प्रसाद सिंह

11 भरत मुनि की परंपरा में ग्रामीण कलाकार – भिखारी ठाकुर

12 जादू की कली –देविका रानी

उनके ये चरित लेख जो अपने रूप और प्रकृति में रेखाचित्र ही हैं, इन विभूतियों के उज्ज्वल और प्रभावशाली छवियों का निर्माण करते हैं। अपने स्वभाव के अनुसार माथुर एक नये बन रहे राष्ट्र में साहित्य–संस्कृति की इन विभूतियों की ऐसी छवियाँ केवल आत्मतोष के लिए नहीं चित्रित करते बल्कि वे इनके निर्माण से भारत में भी अपने ढंग की नई सांस्कृतिक पर्मपराओं का सूत्रपात कर रहे थे। उन्होंने लिखा था, ''मेरा उद्देश्य महापुरुषों की गाथाएँ गाना नहीं है। इन लेखों के नायक इतिहास के पृष्ठों में अमर रहें या नहीं, पर उनके जीवन में मानव जाति का अस्तित्व सार्थक होकर मुखरित हुआ था – इसमें कोई संदेह नहीं।''

उनके ललित निबंधों की भी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी 'बोलते क्षण' (1972), अलग–अलग समय पर लिखे गए इन निबंधों के विषय भिन्न और आस्वादपरक हैं। इनमें से कुछ के शीर्षक हैं, चाँद तुम देर से उगे, चातुर्वर्णीय, संस्कृति की तरंगिनी, बेसुरा राग, ओ सदानीरा, मसूरी में बादल, पीठ पीछे की कला, वे साढ़े तीन दिन, हमारी गली, अशोक रेडियो पर, आटे के दीए, बोलते क्षण, काले आसमान में चाँद, संतों की जूठन, द्वारकाधीश की डायरी, अब आप ही चुनिए, आखिरी गूंज, कोहरा छँट गया।

कहना न होगा कि अपने इस गद्य लेखन में माथुर साहब के मौजी मन के अनेक रंग दिखाई देते हैं जिसमें उनकी प्रवाही भाषा और मोहक भावों का सुंदर संयोजन हुआ है।

14.5.2 रंग चिन्तन

एकांकी और नाटक लेखन के साथ ही जगदीश चंद्र माथुर ने इस बात पर भी सतत् विचार किया कि पुराने सामंतवादी दौर से निकलकर हमारा नाटक और रंगमंच किस दिशा में विकास करे। इसके लिए आवश्यक था कि हमारी रंग परंपरा का समुचित अध्ययन हो और फिर नई परिस्थितियों में रंगमंच के लिए सही राह विकसित की जाए। माथुर की रंगविषयक दोनों पुस्तकें 'परम्पराशील नाट्य' (1969) और 'प्राचीन भाषा नाटक संग्रह' (1972) इन्हीं संकल्पों से उपजी हैं। 'परम्पराशील नाट्य' (1969) का प्रकाशन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से हुआ था जिसे 2006 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने दुबारा प्रकाशित कर नई पीढ़ी के लिए भी सुलभ किया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के तत्कालीन निदेशक देवेन्द्र राज अंकुर ने लिखा, ''परम्पराशील नाट्य एक ऐसी ही कृति है, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, वह एक साहित्यिक कृति के रूप में भी अपनी ओर पर्याप्त ध्यान आकर्षित करने की क्षमता रखती है।''

'परम्पराशील नाट्य' तीन भागों में लिखी गई पुस्तक है जिसके पहले भाग में नाटक की परंपरागत ऐतिहासिकता पर दो अध्यायों में विचार किया गया है। दूसरे अध्याय में नाटकों की सामान्य विशेषताओं पर कुल चार अध्याय हैं और अंतिम भाग में दो अध्याय हैं जिनमें कुछ रंग प्रदर्शनों की झाँकियाँ तथा परंपराशील नाट्य साहित्य के नमूने हैं। भारतीय नाट्य परंपरा का आधुनिक दृष्टि से किया गया यह नया अध्ययन और महत्त्वांकन एक तरफ हमारी प्राचीन नाट्य परंपराओं से परिचित करवाता है वहीं नये परिप्रेक्ष्य में आधुनिक रंग– दृष्टि के निर्माण में भी इसका योगदान है।

'प्राचीन भाषा नाटक संग्रह' (1972) में मुख्यतः तीन खंडों के अंतर्गत विषय विवेचन हुआ है– (1) भाषा नाटक और रंगमंच का उदय (2) भाषा रंगमंच के वर्तमान स्वरूप, तथा (3) भाषा नाटकों का साहित्यिक वैभव। यह पुस्तक उन्होंने नाटक साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक डॉ दशरथ ओझा के साथ संयुक्त रूप से लिखी थी।

सत्येन्द्र कुमार तनेजा का निष्कर्ष है कि ''हिन्दी नाटक साहित्य में जगदीश चंद्र माथुर संभवतः ऐसे अकेले नाटककार हैं जो जितने समर्थ नाट्य–लेखक हैं, उतने प्रभावी रंग चिंतक भी हैं।''

इन के अतिरिक्त माथुर ने मास मीडिया पर भी एक पुस्तक लिखी और विभिन्न विषयों पर छिटपुट लेखन भी किया। उनके जन्मशताब्दी वर्ष में उनके इसी असंकलित और छिट–पुट लेखन से एक नयी किताब 'साहित्य, संस्कृति और भाषा' का प्रकाशन हुआ। उनकी रचनावली पहले ही प्रकाशित होकर आ चुकी है।

14.6 जगदीश चंद्र माथुर के नाटकों एवं एकांकी की विशेषताएँ

14.6.1 प्रयोगशीलता

जगदीश चंद्र माथुर के नाट्य लेखन की पहली विशेषता प्रयोगशीलता है। वे भारतीय इतिहास और संस्कृति के गहरे अध्येता हैं और भारतीय जन–जीवन में मिथकों की उपस्थिति के महत्त्व को समझते हैं। अकारण नहीं कि भारतीय वांङ्मय के अनेक प्रसंग उन्हें नाट्य लेखन के लिए प्रेरित करते हैं और इतिहास तथा पौराणिक भावभूमि का उपयोग करते हए वे वर्तमान की विसंगतियों को दर्शाते हैं। अपने युगबोध से जुड़ी आत्माभिव्यक्ति उनके नाटकों में बहुधा प्रकट होती है। कोणार्क का एक पात्र धर्मपद कहता है, ''जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है –जीवन का पुरुषार्थ।'' पुरुषार्थ का यह भाव केवल एक व्यक्ति का मनोभाव नहीं है अपितु भारतीय समाज की तत्कालीन मनोवांछा भी है। एक नये बन रहे देश में पुरुषार्थ की महत्ता को राजनेता ही नहीं कलाकार और साहित्यकार भी समझ रहे हैं।

14.6.2 आधुनिक चेतना

डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है, ''परवर्ती नाट्य सृजन में कई धरातलों पर विविध प्रयोग होने पर भी कोणार्क संकेतात्मक समकालीनता का प्रारम्भिक बिन्दु का एक उदाहरण सिद्ध होता है।'' डॉ इंद्रनाथ मदान ने और स्पष्ट लिखा है, 'गर्ग, अत्रि, शुक्राचार्य, सूत, भागध, पृथु, कवच, सुनीता, दासी, अर्चना और डर्वी और हर पात्र एक अन्योक्ति है। एक संकेत है जिसके माध्यम से नेहरू युग की आधुनिकता या आधुनिकता का पहला दौर उजागर होने लगता है।'' नयी पीढ़ी के इस नाटककार ने अपने नाटकों में आधुनिकता से उपजी उदात्तता और यथार्थवाद को अपनाया है। सांप्रदायिकता का निषेध और स्वस्थ सामाजिक चेतना माथुर जी के नाट्य लेखन को महत्त्वपूर्ण बनाती है।

14.6.3 प्रकृति और सौन्दर्य की सहज अभिव्यक्ति

इलाहाबाद के वातावरण में पले बढ़े माथुर के नाट्य लेखन में प्रकृति के प्रति असीम अनुराग मिलता है और सौन्दर्य की उनकी चाह भी अकुंठ है। 'भोर का तारा' जैसे एकांकी में भी इन उपादानों का सहज प्रयोग हुआ है। अपने निबंध संग्रह 'बोलते क्षण' में एक स्थान पर उनकी टिप्पणी है, ''कला स्थूल प्रकृति और मानव के आंतरिक जीवन को समीप लाने की कोशिश करती है। कलाकार प्रकृति के विभिन्न अंगों में–चाँद, बादल, वृक्ष, फूल, पत्तियों में वही लयताल खोज पाता है जो व्यक्ति के अंतस्तल को स्पंदित कर दे।'' इस दृष्टि से उनके नाटक 'कोणार्क', 'पहला राजा' और 'शारदीया' में अनेक वर्णन उल्लेखनीय बन पड़े हैं।

14.6.4 लोक संस्कृति

जगदीश चंद्र माथुर भारतीय लोक संस्कृति से गहरे प्रभावित थे। उनके नाट्य लेखन में लोक जीवन और कला के प्रति गहरा आग्रह देखने को मिलता है। नाटकों के संवादों में लोक जीवन से जुड़ी शब्द संपदा हो या लोक गीतों और संस्कृति की छाप, उनके

लेखन को खास रंग देती है। आधुनिकता के मुखपेक्षी होकर भी माथुर का लोक जीवन के प्रति अनुराग उन्हें विशिष्ट नाटककार बनाता है।

14.6.5 भारतीयता

सत्येन्द्र कुमार तनेजा का जगदीश चंद्र माथुर की रचना– दृष्टि के संदर्भ में मत है कि ''अपने जीवन काल के उत्तरार्ध में माथुर के जीवन–दर्शन को लेकर भारतीयता के आग्रह बढ़ते गए। उनकी भारतीयता का तात्पर्य भारतीय संस्कृति और उसकी वे परम्पराएँ हैं जिनका अगर आधुनिक आलोक में परिसंस्कार होता रहे तो आधुनिकता का निर्वाह होता रहेगा।' तनेजा ने आगे लिखा है, ''जगदीश चंद्र माथुर की अंतर्दृष्टि में कोई ऊहापोह नहीं था, अब अवधारणा के स्तर पर रामचरितमानस उनके जीवन–दर्शन का मूल स्रोत और भारतीयता का पर्याय होता गया।'' वस्तुतः जीवन के अंतिम दिनों में लिखे गए नाटकों 'रघुकुलरीति' और 'दशरथनंदन' में भले ही नाट्य कला के आधार पर माथुर कोई नई सिद्धि प्राप्त नहीं करते तथापि उनके समस्त नाट्य लेखन में भारतीय जीवन, दर्शन और मूल्यों के प्रति आग्रह स्पष्ट देखा जा सकता है। इस आग्रह में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता से परहेज उन्हें खरा आधुनिक भी बनाता है।

14.6.6 नई रंगदृष्टि

बच्चन सिंह ने अपनी पुस्तक हिन्दी नाटक में लिखा है, ''नये रंगमंच और प्रयोग की दृष्टि से जगदीश चंद्र माथुर का भोर का तारा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके व्यंग्य और विचार गहरे हैं।'' माथुर को पुरुषार्थ साधना का नाटककर भी कहा गया। उनके निधन के प्रायः पचास वर्ष बाद भी कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटक के क्षेत्र में एक संक्रमण काल में माथुर जैसी प्रतिभा मिली जो न केवल रचना के स्तर पर अपितु रंगमंच के धरातल पर भी बेहद सक्रिय बनी रही। उनका योगदान इस बात से भी समझा जा सकता है कि हिन्दी नाटकों की कोई चर्चा उनकी कृतियों के उल्लेख के बिना अधूरी ही है।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित दिए गए प्रश्नों में से सही विकल्प का चयन कीजिए :

1. जगदीश चंद्र माथुर का जन्म कब हुआ था ?

   क) 1915

   ख) 1917

   ग) 1922

   घ) 1924

2. जगदीश चंद्र माथुर का निधन कब हुआ था?

   क) 1978

   ख) 1979

   ग) 1985

   घ) 1990

3. 'खिड़की की राह' है

   क) उपन्यास

   ख) एकांकी

   ग) रेखाचित्र

   घ) कहानी

4. 'दशरथनंदन' है
   - क) एकांकी
   - ख) कहानी
   - ग) नाटक
   - घ) रेखाचित्र
5. परम्पराशील नाट्य का प्रकाशन कब हुआ ?
   - क) 1969
   - ख) 1970
   - ग) 1972
   - घ) 1980
6. 'प्राचीन भाषा नाटक' के सहलेखक हैं?
   - क) डॉ. नगेन्द्र
   - ख) डॉ. दशरथ ओझा
   - ग) डॉ. रामकुमार वर्मा
   - घ) डॉ. बच्चन सिंह
7. 'दस तस्वीरें' किस विधा की रचना है ?
   - क) रेखाचित्र
   - ख) संस्मरण
   - ग) जीवनी
   - घ) आत्मकथा
8. 'कोर्णाक' की विशेषताएँ बताइए। (लगभग 7 पंक्तियों मे)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

14.7 सारांश

आपने इस इकाई को ध्यान से पढ़ा होगा और प्रसिद्ध नाटककार जगदीश चंद्र माथुर के जीवन और साहित्य के संबंध में भी गंभीरता से अध्ययन किया होगा।

- जगदीश चंद्र माथुर स्वतंत्रता के आसपास उभरे प्रमुख लेखकों में हैं और स्वतंत्रता के बाद के सबसे पहले प्रमुख नाटककार।
- जगदीश चंद्र माथुर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, उन्होंने नाटकों, रेखाचित्रों और रंग चिंतन के अलावा सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया

है। हमारे देश में सक्रिय अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं के निर्माण में उनकी महती भूमिका अविस्मरणीय है।

- जगदीश चंद्र माथुर एकांकी लेखन के लिए भी बेहद प्रसिद्ध रहे हैं। उनके एकांकी 'भोर का तारा', 'कलिंग विजय' और 'रीढ़ की हड्डी' अभी भी पाठ्यक्रमों में पढ़ाए जाते हैं।
- 'कोणार्क' और 'पहला राजा' जैसे नाटकों ने हिन्दी में नये नाटकों का सूत्रपात किया। वे मिथकों और पौराणिकता के कलेवर में आधुनिक जीवन की समस्याओं–विसंगतियों को उभारने में कुशल नाटककार हैं।
- शारदीया जैसे नाटक के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक विविधता के बावजूद एकता पर बाल देना माथुर के लेखन की शैली का खास ढंग है।
- 'दस तस्वीरें' जैसी पुस्तक से रेखाचित्र विधा और परंपराशील नाट्य से रंग चिंतन को गति प्रदान करने वाले माथुर सच्चे अर्थों में चिंतक–विचारक लेखक के रूप में सामने आते हैं। भारतीय साहित्य को उनका योगदान सदैव याद किया जाएगा।

14.8 उपयोगी पुस्तकें

1. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास –दशरथ ओझा – राजपाल एंड संज, दिल्ली
2. समीक्षा शास्त्र : दशरथ ओझा – राजपाल एंड संज, दिल्ली
3. हिन्दी नाटक : बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. नये एकांकी : अज्ञेय – राजपाल एंड संज, दिल्ली
5. भारतीय साहित्य के निर्माता : जगदीश चंद्र माथुर –सत्येन्द्र कुमार तनेजा, साहित्य अकादेमी, दिल्ली
6. नयी रंग चेतना और हिन्दी नाटककार – जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

14.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)
7. (क)
8. उत्तर के लिए देखिए 14.4

इकाई 15: 'भोर का तारा' का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 एकांकी का अभिप्राय

15.3 'भोर का तारा' का कथासार

15.4 कथानक

15.5 चरित्र विधान

- 15.5.1 शेखर
- 15.5.2 छाया
- 15.5.3 माधव
- 15.5.4 अन्य पात्र

15.6 परिवेश

15.7 शीर्षक

15.8 संवाद योजना

15.9 भाषा

15.10 रंगमंचीयता

15.11 प्रतिपाद्य

15.12 सारांश

15.13 उपयोगी पुस्तकें

15.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार जगदीश चंद्र माथुर की एकांकी 'भोर का तारा' का अध्ययन करना है। आप इकाई में एकांकी के विभिन्न पक्षों के द्वारा इस कृति का महत्त्व भी जान सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- एकांकी की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- एकांकी की अंतर्वस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे और एकांकी की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- एकांकी के मुख्य चरित्रों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भाषा और शैली की दृष्टि से एकांकी पर विचार कर सकेंगे; और
- एकांकी की रंगमंचीयता पर विचार कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप नाटककार जगदीश चंद्र माथुर के प्रसिद्ध एकांकी नाटक 'भोर का तारा' का अध्ययन करेंगे। जगदीश चंद्र माथुर (16 जुलाई 1917 – 14 मई 1978) हिन्दी

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

के प्रमुख नाटककार हैं जिन्होंने बहुत अच्छे एकांकी भी लिखे हैं। 1936 में उनका पहला एकांकी 'मेरी बाँसुरी' प्रकाशित हुआ था। पहला एकांकी संग्रह 'भोर का तारा' शीर्षक से 1946 में आया। ध्यान देने की बात है कि यह समय भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के चरम का दौर है। भारत छोड़ो आंदोलन और नौ सेना विद्रोह की घटनाओं ने समूचे देश में एक हलचल पैदा कर दी थी। युवा जगदीश चंद्र माथुर उन दिनों सिविल सेवा की तैयारी में लगे हुए थे। आजीविका के लिए सरकारी नौकरी का वरण करने के साथ उनके मन में देश प्रेम और देश के लिए कुछ करने का उत्साह तनिक भी कम न था। इस परिवेश में लिखे गए 'भोर का तारा' की प्रशंसा आज भी होती है। वस्तुतः कवि या कलाकार के वास्तविक कर्तव्य की पहचान के सवाल पर लिखे गए इस एकांकी की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है।

15.2 एकांकी का अभिप्राय

आधुनिक दृश्य साहित्य में नाटकों के अंतर्गत एकांकी का बड़ा महत्त्व है। नाटक की तुलना में यहाँ एक ही अंक या विधान किया जाता है। इसे अंग्रेजी के One Act Play का पर्याय भी माना जाता है और इसकी संरचना में नाटक के तत्त्वों को ही दर्शाया जाता है। इसके बावजूद साहित्य में इसे नाटक से पृथक विधा की तरह सम्मान मिला है तो इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ एक ही अंक, एक ही घटना, मूल भाव, एक ही दृश्य, जीवन का एक ही भाग, कार्य, उद्देश्य रहता है, जिसके चलते प्रस्तुतीकरण की भिन्नता इसे नया आयाम देती है। जिस प्रकार कहानी और उपन्यास में प्रकृत्या भिन्नता होती है उसी प्रकार एकांकी और नाटक में भी भिन्नता के कारण इन्हें पृथक विधा माना जाता है।

भारतीय वांग्मय में एकांकी का इतिहास बहुत पुराना माना जा सकता है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में नायक के चरित, इतिवृत्त, रस आदि के आधार पर रूपकों और उपरूपकों के कई भेदों को एकांकी नाटक माना गया है। अतः दशरूपक और साहित्यदर्पण आदि में वर्णित व्यायोग, प्रहसन, भाग, वीथी, नाटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रकाशिका, उल्लाप्य, काव्य प्रेंखण, श्रीगदित, विलासिका, प्रकरणिका, हल्लीश आदि रूपकों और उपरूपकों को एकांकी के समकक्ष रखा जाने का आग्रह अनुचित नहीं माना जा सकता। साहित्य दर्पण में एकांक शब्द का उल्लेख भी मिलता है।

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार एकांकी नाटक, साहित्य का वह नाट्य प्रधान रूप है, जिसके माध्यम से मानव–जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य, एक परिपार्श्व, एक भाव की ऐसी कलात्मक व्यंजना की जाती है कि ये एक अविकल भाव से अनेक की सहानुभूति और आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं।

एकांकी हिंदी गद्य–साहित्य के क्षेत्र में अपेक्षाकृत एक नयी विधा है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार भारतेन्दु हरिश्चंद्र की रचना 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' को हिंदी का प्रथम एकांकी माना गया है किन्तु अनेक विद्वानों ने इसका आरंभ जयशंकर प्रसाद की रचना 'एक घूँट' से माना गया है। भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी आदि ने इस विधा को चर्चा में लाने वाली रचनाएँ लिखीं तदुपरांत जगदीश चंद्र माथुर, विनोद रस्तोगी, विष्णु प्रभाकर जैसे लेखकों ने इस विधा के उन्नयन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोक नाट्यों को आधार बनाकर एकांकी में अनेक विधागत प्रयोग हुए हैं वहीं दूसरी तरफ अस्सी के दशक में आए नए जनवादी उभार ने जिस नुक्कड़ नाटक विधा को लोकप्रिय बनाया उसे भी एकांकी का ही एक रूप माना जाना अनुचित न होगा।

15.3 'भोर का तारा' का कथासार

लगभग पाँचवी शताब्दी में उज्जयिनी साम्राज्य के राजकवि शेखर की कथा इस एकांकी में आई है। शेखर कोमल भावनाओं की प्रेम कविताएँ लिखने वाला नवयुवक है जिसका एक मित्र माधव, राज दरबार के निकट है। शेखर उज्जयिनी की एक युवती छाया से प्रेम करता है और उसके लिए गीत भी लिखता है। एक दिन माधव बताता है कि सम्राट शेखर को राजकवि बनाने वाले हैं क्योंकि उसका एक गीत सम्राट को बहुत पसंद आ गया है। इधर सूचना यह भी है कि छाया के भाई देवदत्त को सम्राट ने तक्षशिला का क्षत्रप बना दिया है।

अब छाया का भाई देवदत्त अपने नए दायित्व के लिए उज्जयिनी से बाहर है और माधव भी उसके साथ चला गया है। छाया और शेखर को निकट आने का अवसर मिलता है। शेखर छाया को बताता है कि उसे आकस्मिक उपहार देने के लिए उससे छिप छिपकर एक काव्य 'भोर का तारा' की रचना भी की है। छाया भी इस काव्य को देखकर रोमांचित है।

मनोरम कल्पनाओं के इस सुंदर संसार में अचानक एक तूफान आ जाता है। माधव आकर सूचना देता है कि भारत के पश्चिम प्रांतों पर हूणों का आक्रमण हो गया है और पंचनद (पंजाब) हूणों के आतंक व हिंसा से पीड़ित है। उसके इस समाचार से उज्जयिनी की जनता में भी हलचल मच जाती है। माधव इन्हें यह भी बताता है कि छाया का भाई देवदत्त युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गया है।

शेखर इस परिस्थिति में कल्पना और प्रणय की मनोभूमि से बाहर निकलता है। वह अपने मानसिक अवरोध को दूर करने के लिए बिना एक पल गँवाए 'भोर का तारा' की पांडुलिपि को आग के हवाले कर देता है और जनता के साथ युद्ध के गीत गाने लगता है।

उसकी प्रेयसी छाया पांडुलिपि नष्ट हो जाने से व्यथित है और उसे लग रहा है कि उसका प्रभात समाप्त हो गया तब माधव कहता है, ''छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नहीं किया। प्रभात तो अब होगा। शेखर तो अब तक भोर का तारा था। अब वह प्रभात का सूर्य होगा।''

15.4 कथानक

जिस घटना क्रम का निर्वाह कार्य कारण के तर्क का अनुपालन करते हुए, रचनाकार की मूल दृष्टि या उद्देश्य के लिए किया जाए, उसे कथानक कहा जाता है। अंग्रेजी में कथा साहित्य की विवेचना में जिसे प्लॉट कहा जाता है वह वस्तुतः कथानक ही है। एकांकी में कथानक घटना को उस बिन्दु अथवा क्षण पर पकड़ता है जहाँ घटना अपने सम्पूर्ण विकास को प्राप्त कर पहुँच चुकी है और जहाँ से कोई बड़ा मोड़ उसे लेना है।

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार, एकांकी के कथानक चयन में एकांकीकार की अन्तःप्रेरणा ही प्रमुख है। वह अपने स्वभाव, रुचि, अरुचि और जीवन दर्शन के अनुसार किसी भी क्षेत्र के कथानक के विषय और उपादान चुनने के लिए स्वतंत्र है। वह मनुष्य की युग–युगीन अपराजेय शक्ति की ऐतिहासिक यात्रा के गौरवपूर्ण कार्यों, घटनाओं, दृश्यों, धर्म प्रवर्तकों, उनके सिद्धांतों, राजाओं और वीरों के चरित्रों, लोकगाथाओं, उत्सवों, संस्कारों, ऋतुओं, सांस्कृतिक उत्थान–पतनों, अतीत या वर्तमान समाज की रूढ़ प्रथाओं, कुरीतियों, दुष्प्रवृत्तियों, व्यक्ति या समाज के संघर्षों, यौन आकर्षणों, राज्य–व्यवस्थाओं, दैनं दिन जीवन के हृदय–द्रावक चित्रों, घृणा–प्रेम, राग–द्वेष, आशा–निराशा, हर्ष–विषाद,

त्याग–भोग, राग–विराग, मोह–निर्मोह, हास्य–औदासीन्य, श्रेय–हेय के द्वंद्वों में से किसी से भी अपने कथानक का आधार निर्मित कर सकता है। अनुभव या अनुभूति में जितनी अधिक सत्यता और घटनाओं में विस्मय की जितनी अधिक तीव्रता होगी, एकांकी उतना ही अधिक खिल जाएगा। कुरुचिपूर्ण यथार्थ के परित्याग और व्यावहारिक आदर्श के परिग्रहण उसके सौंदर्य–वर्धक गुण हैं।

इस दृष्टि से 'भोर का तारा' का कथानक एकदम चुस्त मालूम होता है। नए लेखक की आरंभिक कृति होने पर भी कार्य–कारण संबंध की तार्किक अन्विति इसे रोचक बनाती है। यदि परिवेश और समय को ध्यान में रख कर बात करें तो माथुर जी की कला प्रभावशाली दिखाई देती है। भारत में स्वतंत्रता आंदोलन का चरम क्षण का दौर है, भारत छोड़ो आंदोलन हो चुका है और अंग्रेजी दासता से मुक्ति का संघर्ष अब अपने आखिरी पड़ाव पर है। ऐसे परिवेश और समय में 'भोर का तारा' का कथानक न केवल प्रसंगानुकूल है अपितु लेखक के रचना विवेक की भी पुष्टि करता है। अरस्तू ने नाटक के संबंध में कार्य–अन्विति (यूनिटी ऑफ एक्शन) का सिद्धांत प्रस्तुत किया था आगे जाकर इसमें समय और स्थान के आयामों को जोड़कर अध्येताओं ने इसे 'संकलन–त्रय' का नाम दिया। माना जाता है कि एकांकी में इन तीनों अन्वितियों का पालन अनिवार्य है। इस दृष्टि से एकांकी होते हुए भी 'भोर का तारा' में स्थान और समय की एकता खंडित हो रही है और इससे एकांकी का वास्तविक प्रभाव भी खंडित होता है। लेकिन कार्य की एकता को ध्यान में रखें तो माना जा सकता है कि यह अपने प्रभाव को प्राप्त करने में सफल एकांकी है।

एकांकी के चरम बिन्दु पर जब माधव शेखर से कहता है कि ''आज साम्राज्य को सैनिकों की आवश्यकता है। ओजमयी कविता द्वारा तुम गाँव–गाँव में जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारों और लाखों भुजाएँ अपने सम्राट और देश की रक्षा के लिए शस्त्र हाथ में ले लें।'' आखिर में उसका आह्वान, ''कवि, देश तुमसे बलिदान माँगता है।'' कथानक को गौरव देता है और इस ऊँचाई पर स्थान और समय की एकता का खंडन भी अप्रासंगिक हो जाता है। राष्ट्र की सुरक्षा और सेवा के लिए बलिदान किसी भी नागरिक के लिए देशभक्ति का सर्वोच्च मूल्य है जो संकट के समय और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कि यह एकांकी अपनी इस अंतर्वस्तु और संदेश के कारण आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

15.5 चरित्र विधान

एकांकी होने से यहाँ बहुत अधिक चरित्रों की गुंजाइश नहीं होती बल्कि नाटककार पर दबाव होता है कि एकांकी में जो भी थोड़े से चरित्र हों वे बेहद प्रभावशाली और दर्शकों पर स्थायी छाप छोड़ने में समर्थ हों। इस दृष्टि से 'भोर का तारा' में आए तीनों पात्र बेहद प्रभावशाली हैं। यह कला की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है कि एकांकी के तीनों पात्र क्रमशः अपने चरित्र का भारी विकास करते हैं और नाटककार की कला यह है कि उनका विकास अत्यंत स्वाभाविक और कार्य–कारण संबंध की मर्यादाओं के अनुसार हुआ है। गोविन्द चातक ने लिखा है, ''जगदीश चंद्र माथुर की चरित्र सृष्टि का आधार यथार्थ है। यथार्थ इसलिए कि उन्होंने अपने पात्रों के लिए जो नाट्य–संसार निर्मित किया है वह सर्वथा उसके अनुरूप है। उनके नाटकों का मनोमय जगत इतिहास, जनश्रुति, मिथक और कल्पना पर आधारित है। उसके अनुरूप ही उनके पात्र एक प्रकार की वस्तुगत और भावगत विश्वसनीयता को उजागर करते हैं।'' इस संदर्भ में 'भोर का तारा' एकांकी के चरित्र यादगार एवं अपने वर्गों के प्रतिनिधि भी कहे जा सकते हैं। इस एकांकी के चरित्र इस प्रकार हैं–

15.5.1 शेखर

पहले एकांकी का नायक कवि शेखर को देखा जाना उचित होगा जिसके चरित्र को लगातार ऊँचाई की तरफ बढ़ते देखना सुखद है। एकांकी के प्रारंभ में हम देखते हैं कि शेखर **रोमांटिक भावनाओं में डूबा शृंगारिक कवि** सरीखा है जिसकी कविताओं में काल्पनिक नायिका का यौवन मात्र है – 'अंगुलियाँ आतुर तुरत पसार, खींचते नीले पट का छोर, टँका जिसमें जाने किस ओर, स्वर्ण कण...स्वर्ण कण'। एकांकी के प्रारंभ में अपने मित्र माधव से उसके संवाद उसके भावबोध का ठीक पता देते हैं। वह माधव से कहता है, ''तुम राजनीतिज्ञ और मन्त्री लोग बड़ी संजीदगी के साथ अमीरी–गरीबी, युद्ध और सन्धि की समस्याओं को हल करने का अभिनय करते हो परन्तु मनुष्य को इन उलझनों के बाहर कभी नहीं लाते।'' तब माधव का जवाब था, ''कवि तुम उलझनों से बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते, तुम उन्हें भूलने का प्रयास करते हो। तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है, हम जागते रहते हैं और देखते हैं कि जीवन कर्तव्य है।'' लेकिन शेखर अभी भी यह स्वीकार करने को राजी नहीं है और भावुकता के साथ कहता है, ''मुझे तो सौन्दर्य ही कर्तव्य जान पड़ता है। मुझे तो जहाँ सौन्दर्य दीख पड़ता है, वहाँ कविता दीख पड़ती है, वहीं जीवन दीख पड़ता है।'' स्पष्ट है शेखर की सौन्दर्य चेतना वायवीय है और जीवन को व्यापक दृष्टि से देखने समझने से वह अभी दूर है।

उसका सौभाग्य है कि उसे राजकवि का पद मिल जाता है और उसकी प्रेयसी छाया के निकट आने का एक दुर्लभ अवसर भी इसी के साथ मिलता है। छाया के भाई देवदत्त को सम्राट तक्षशिला का क्षत्रप बनाकर भेज देते हैं और शेखर को छाया के महल में रहने का अवसर मिल गया है। इधर अचानक तक्षशिला पर हूणों का आक्रमण हो जाने से तक्षशिला का पतन हो गया है और देवदत्त युद्ध में काम आ जाते हैं। वे मरते मरते अपना संदेश उज्जयिनी पहुँचाने का आदेश माधव को देते हैं जो यहाँ आकर शेखर से कहता है, ''पश्चिमोत्तर सीमा पर आग लग चुकी है। हूणों का सरदार तोरमाण भारतवर्ष पर चढ़ आया है। उसने सिन्धु नदी को पार कर लिया है, उसने अम्भी राज्य को नष्ट कर दिया है। उसकी सेना तक्षशिला को पैरों तले रौंद रही है सारा पंचनद आज उसके भय से काँप रहा है। एक के बाद एक गाँव जल रहे हैं, हत्याएँ हो रही हैं, अत्याचार हो रहा है। शीघ्र ही सारा आर्यावर्त पीड़ितों की हाहाकार से गूँजने लगेगा। शेखर, छाया – मैं तुमसे भीख माँगता हूँ – नई भीख माँगता हूँ – सम्राट स्कन्दगुप्त की, देश की इस संकट में मदद करो।'' इस संकट के समय कवि शेखर के समक्ष चुनौती है कि वह सौन्दर्य और प्रणय की कविता भूल जाए। माधव उससे स्पष्ट कहता है, ''शेखर तुम्हारी वाणी में ओज है, तुम्हारे स्वर में प्रभाव। तुम अपने शब्दों के बल पर सोई हुई आत्माओं को जगा सकते हो, युवकों में जान फूँक सकते हो। आज साम्राज्य को सैनिकों की आवश्यकता है। शेखर, ओजमयी कविता द्वारा तुम गाँव–गाँव में जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारों और लाखों भुजाएँ अपने सम्राट और देश की रक्षा के लिए शस्त्र हाथ में ले लें। कवि, देश तुमसे बलिदान माँगता है।'' इसके बाद शेखर अपना कर्त्तव्य समझ जाता है और दर्शक पाठक शेखर और उसके साथ पूरे जन–समूह के गाने का स्वर सुनते हैं

> अभय जाग जनता जनार्दन!
> कहाँ हैं भयंकर तरंगें, कहाँ सो रहा क्रुद्ध गर्जन?
> महोदधि तनिक तो उमड़ तू, बुलाता तुझे मैं प्रभंजन।
> अभय जग जनता जनार्दन।

शेखर अपने कर्त्तव्य पथ का चुनाव कर चुका है। वह प्रेमानुभूतियों से भरे अपने काव्य 'भोर का तारा' को आग के हवाले कर देता है। इस नए शेखर के लिए माधव की टिप्पणी है, ''शेखर तो अब तक भोर का तारा था। अब वह प्रभात का सूर्य होगा।''

यहाँ इस एकांकी की सफलता और चरित्रों की सार्थकता का चरम बिन्दु यही है कि वे अपने व्यक्तित्व का ऊँचा विकास करते हुए व्यक्तिगत आग्रहों से मुक्त होकर देश और समाज के लिए त्याग करते हैं। युवा और नये लेखक की प्रारम्भिक कृति 'भोर का तारा' में यह बात कहीं से भी आरोपित नहीं लगती और पात्रों विशेष रूप से शेखर का विकास भी अत्यंत सहज और स्वाभाविक लगता है जो नाटककार की बड़ी सफलता है।

15.5.2 छाया

नाटक की दूसरी मुख्य पात्र छाया है जो **शेखर के प्रति अनुरक्त** है और उसके गीत गाती है। उसके गायन से ही शेखर राजकवि की पदवी तक पहुँच पाया है। वह शेखर को अपने पति के रूप में वरण करती है तब भी उसका व्यक्तित्व अपने प्रेमी कवि की छाया में दब नहीं गया है। शेखर के कहने पर कि ''तुम्हारे गान, तुम्हारी प्रेरणा, तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी कविता क्या होती ? तुम तो मेरी कविता हो!'' उसका उत्तर है, ''प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक कविता है।'' शेखर इस टिप्पणी का आशय पूछता है तब उसका जवाब है, ''कविता तुम्हारे सूने दिलों में संगीत भरती है। स्त्री भी तुम्हारे ऊबे हुए मन को बहलाती है। पुरुष जब जीवन की सूखी चट्टानों पर चढ़ता–चढ़ता थक जाता है तो सोचता है, 'चलो थोड़ा मनबहलाव ही कर लें।' स्त्री पर अपना सारा प्यार, अपने सारे अरमान निछावर कर देता है, मानो दुनिया में और कुछ हो ही न। और उसके बाद जब चाँदनी बीत जाती है, जब कविता भी नीरव हो जाती है, तब पुरुष को चट्टानें फिर बुलाती हैं और वह ऐसे भागता है मानो पिंजड़े से छूटा हुआ पंछी। और स्त्री के लिए फिर वही अँधेरा, फिर वही सूनापन !'' प्रेम में अनुरक्त होने पर भी उसे अपने अस्तित्व का बोध है यह महत्त्वपूर्ण बात है जो उसके व्यक्तित्व की गंभीरता को दर्शाती है।

शेखर अपनी कविता के प्रति बेहद संवेदनशील और अनुरक्त है। वह सचमुच एक बड़ा कवि है और कविता के प्रति उसकी गंभीरता केवल रोमानी नहीं है। छाया से उसका प्रेम भी उसके लिए रचना का स्रोत है तभी वह कहता है, ''सुनो तो, मेरे लिए जीवन में ऐसी सूखी चट्टानें थोड़े ही हैं। मेरी कविता ही मेरी हरी–भरी वाटिका है। मैं उसे प्यार करता हूँ क्योंकि मुझे तुम्हारे हृदय में सौन्दर्य दीखता है। जिस रोज मैं तुमसे दूर हो जाऊँगा, उस रोज मैं सौन्दर्य से दूर हो जाऊँगा, अपनी कविता से दूर हो जाऊँगा.... (कुछ रुककर) मेरी कविता मर जाएगी।'' छाया भी अपने प्रेमी और पति की भावनाओं को समझती है। शेखर के राजा वाली कहानी सुनाने पर उसकी टिप्पणी है, ''राजा को मालूम हो गया कि उस गायिका के स्वर में ही कवि की कविता थी।'' वस्तुतः दोनों प्रेमी एक दूसरे के प्रति गहरे सन्नद्ध हैं। जगदीश चंद्र माथुर प्रेम की व्यक्तिगत भावना का उभार दर्शाने के बाद राष्ट्र पर आ गए संकट से इन्हें जोड़ देते हैं। यह संकट इनके प्रेम की भी कड़ी परीक्षा है और दोनों यानी छाया और शेखर, इस परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं।

छाया के प्रेम के प्रतीक के रूप में ही 'भोर का तारा' जैसा काव्य शेखर ने रच दिया है जिससे छाया बेहद प्रसन्न है किन्तु जब शेखर माधव द्वारा प्रेरित करने पर प्रणय काव्य का मार्ग छोड़कर जागरण काव्य की तरफ मुड़ जाता है और बाधा के रूप में पिछले अतीत से भी अपने को अलग करने के लिए 'भोर का तारा' की पांडुलिपि आग में झोंक देता है तब छाया उदास हो जाती है। उसकी उदासी पाठक को प्रतिकूल सोचने का अवकाश दे इससे पहले ही माधव छाया को बताता है कि तुम्हारा भोर का तारा अब प्रभात का सूर्य है। इस टिप्पणी पर छाया की प्रतिक्रिया का संकेत एकाँकी में आया है। लेखक ने लिखा है, ''छाया धीरे–धीरे अपना मस्तक उठाती है।'' छाया का मस्तक उठाना असल में आ रहे संकट के समक्ष अपने पति के साथ खड़े हो जाने और अपने कर्त्तव्य को पहचानने का संकेत है। यहीं एकांकी का समाप्त हो जाना भी छाया के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाता है जिसका संदेश स्पष्ट, सामाजिक और दूरगामी है।

15.5.3 माधव

एकांकी का तीसरा पात्र माधव गौण पात्र प्रतीत होता है और माना गया है कि एकांकी में गौण पात्रों का कोई महत्त्व नहीं। विचारणीय है कि क्या माधव की भूमिका केवल संदेश देने वाले हरकारे की ही है? ऐसा नहीं है क्योंकि वही ऐसा पात्र है जो छाया और शेखर को उनके कर्त्तव्य का बोध करवाता है, जो युद्ध क्षेत्र में भी अपने क्षत्रप देवदत्त के साथ अपना कर्त्तव्य निभाता है। वह सम्राट स्कन्दगुप्त का दरबारी है और उसे सम्राट, देवदत्त के साथ तक्षशिला का विद्रोह दबाने भेज देते हैं। वह कवि शेखर का मित्र और शुभचिंतक भी है। एकांकी के प्रारंभ में आए संवादों में माधव की यथार्थवादी समझ का प्रमाण मिलता है। दोनों के मध्य हुए संवाद की एक झलक प्रस्तुत है –

''माधव : क्या कर रहे हो शेखर ?

शेखर : यहाँ आओ माधव, यहाँ। (उसके कन्धों को पकड़कर तख्त पर बिठाता हुआ) यहाँ बैठो। (स्वयं खड़ा है।) माधव, तुमने भोर का तारा देखा है कभी ?

माधव : (मुस्कराते हुए) हाँ! क्यों ?

शेखर : (बड़ी गम्भीरतापूर्वक) कैसा अकेला–सा, एकटक देखता रहता है ? जानते हो क्यों ?....नहीं जानते ? (तख्त के दूसरे भाग पर बैठता हुआ) बात यह है कि एक बार रजनीबाला अपने प्रियतम प्रभात से मिलने चली, गहरे नीले कपड़े पहनकर, जिसमें सोने के तारे टंके थे। ज्योंही निकट पहुँची, त्योंही लाज की आँधी आई और बेचारी रजनी को उड़ा ले चली। (रुककर) फिर क्या हुआ....

माधव : (कुछ उद्योग के बाद) प्रभात अकेला रह गया ?

शेखर : नहीं। उसने अपनी अंगुलियाँ पसारकर उसके नीले पट का छोर खींच लिया। – जानते हो, यह भोर का तारा है न, उसी छोर में टंका हुआ सोने का कण है, एकटक प्रियतम प्रभात को निहार रहा है। ... क्यों ?

माधव : बहुत ऊँची कल्पना है! लिख चुके क्या ?

शेखर : अभी तो और लिखूँगा। बैठा ही था कि तुम आ गए....

माधव : (हँसते हुए) और अब तुम्हें ध्यान हुआ कि तुम धरती पर ही बैठे थे, आकाश में नहीं। (रुककर) मुझे कोस तो नहीं रहे हो शेखर ?

शेखर : (भोलेपन से) क्यों ?

माधव : तुम्हारी परियों और तारों की दुनिया में मैं मनुष्यों की दुनिया लेकर आ गया।''

माधव भलीभाँति जान रहा है कि शेखर किस भावलोक में है। वह किंचित व्यंग्य में कहता है, प्रभात अकेला रह गया ? किन्तु वह अपने मित्र की कविता के गहराई को सम्मान देना भी जानता है और उसका कथन है, ''बहुत ऊँची कल्पना है!'' सचमुच माधव एक सहृदय रसिक और सच्चा मित्र है। वह शेखर को आगाह भी करता है और उसके हित में सम्राट के यहाँ हुई घटना का साक्षी भी रहा है। शेखर से उसका कहना कि ''तुम उलझनों से बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते, तुम उन्हें भूलने का प्रयास करते हो। तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है, हम जागते रहते हैं और देखते हैं कि जीवन कर्तव्य है।'' उसे भावलोक से निकालकर यथार्थ के वास्तविक धरातल पर लाने का प्रयास ही है। जीवन को कर्त्तव्य मानने वाला माधव ही अंत में शेखर को प्रेम कविता के रास्ते से जागरण काव्य के लिए प्रेरित करता है। वह शेखर को याद दिलाता है, ''शेखर तुम्हारी वाणी में ओज है, तुम्हारे स्वर में प्रभाव। तुम अपने शब्दों के बल पर सोई हुई आत्माओं को जगा सकते हो, युवकों में जान फूँक सकते हो। आज साम्राज्य को सैनिकों की आवश्यकता है। शेखर, ओजमयी कविता द्वारा तुम गाँव–गाँव

में जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारों और लाखों भुजाएँ अपने सम्राट और देश की रक्षा के लिए शस्त्र हाथ में ले लें। कवि, देश तुमसे बलिदान माँगता है।'' हम देख सकते हैं कि एकांकी के समस्त क्रिया व्यापार को गति दे रहा पात्र माधव गौण पात्र जैसा दिखाई देकर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और वह मुख्य पात्रों को जीवन के व्यापक उद्देश्यों से जोड़ने का महान कार्य करता है।

15.5.4 अन्य पात्र

नाटक में सम्राट, आर्य देवदत्त, विद्रोही वीरभद्र और हूण आक्रमणकारी तोरमाण का उल्लेख आया है किन्तु एकांकी में इनकी भूमिका केवल मुख्य पात्रों के संदर्भ में ही है।

15.6 परिवेश

परिवेश का आशय है वह वातावरण, स्थान और समय जिसमें एकांकी के कथानक का निर्माण किया गया है। नाटककार द्वारा कल्पित कथानक की विश्वसनीयता और स्वाभाविकता परिवेश से ही उपजती है। इसके निर्माण के लिए नाटककार दृश्य विधान, पात्रों की वेश–भूषा, भाषा और आचरण का सहारा लेता है। प्राचीन भारत का नाटक है तो उसके परिवेश को जीवंत बनाने के लिए तत्समप्रधान हिन्दी, पात्रों के ठेठ पुराने ढंग के वस्त्र और नाटक के क्रिया व्यापार में प्राचीन भारत में प्रचलित रीति रिवाजों का उपयोग किया जाएगा। नाटककार मोहन राकेश ने नाटक में परिवेश के महत्त्व पर विचार करते हुए लिखा है, ''इतिहास स्थान, समय और व्यक्ति निरपेक्ष नहीं होता। हालाँकि सार्वकालिकता का नारा लगाने वाले लोग ऐसा ही कहते हैं लेकिन मैं उनके मत से सहमत नहीं हूं।'' इस कथन के आलोक में विचारणीय है कि रचना चाहे ऐतिहासिक संदर्भ वाली हो अथवा समकालीन रचना के लिए देशकाल और सामाजिक वातावरण को प्रभावशाली बनाने में लेखक द्वारा निर्मित परिवेश की बड़ी भूमिका है। 'भोर का तारा' में नाटककार जगदीश चंद्र माथुर ने इन बातों का पूरा ध्यान रखा है। माथुर जी ने इस एकांकी के लिए दिए निर्देशों में इंगित किया है कि पात्रों की वेशभूषा हेतु अजंता आदि के चित्रों में आए वस्त्र विधान को अपनाया जा सकता है। यह एकांकी पाँचवी शताब्दी के देशकाल पर है तो गुप्त साम्राज्य का वैभव और तत्युगीन वातावरण नाटक के परिवेश को वास्तविकता देगा। लेखन ने एकांकी में ऐसे शब्दों जैसे 'भोजपत्र' और 'दीपदान' का उपयोग भी इसीलिए किया है। एकांकी के आलोचक सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है, ''नाट्य शिल्प की दृष्टि से जगदीश चंद्र माथुर ने विशेष कौशल का परिचय दिया है। इनकी विशेषता इनके काव्यात्मक दृष्टिकोण में है। जिस नाटककार का दृष्टिकोण काव्यात्मक होता है, वह जीवन के विस्तार में नहीं जाता, उसकी गहराई में उतरता है।''

एकांकी के पात्र अपनी भाषा, वेशभूषा और व्यवहार से गुप्त साम्राज्यकालीन परिवेश को जीवंत करने में सफल हुए हैं।

15.7 शीर्षक

एकांकी का शीर्षक जगदीश चंद्र माथुर ने 'भोर का तारा' रखा है। यह वह काव्य है जो कवि शेखर अपनी पत्नी छाया से प्रथम भेंट के बाद लिखना प्रारंभ करता है और इसे नियमित लिख रहा है। एकांकी के अंत में यह काव्य सम्पूर्ण हो गया है और कवि की अभिलाषा है कि वह सम्राट के समक्ष इसका पाठ करे। छाया से वह कहता है, 'भोर का तारा'! छाया, यह काव्य बड़ी लगन का फल है। कल मैं इसे सम्राट की सेवा में ले जाऊँगा। और फिर, फिर जब मैं उस सभा में इसे सुनाना आरम्भ करूँगा, तब, तब, सारे उज्जयिनी की आँखें मेरे ऊपर होंगी। महाकाव्य, महाकाव्य! उस समय सम्राट गद्गद हो जाएँगे और मैं कवियों का सिरमौर हो जाऊँगा। छाया, बरसों बाद दुनिया

पढ़ेगी कवि–कुल–शिरोमणि–शेखर–कृत 'भोर का तारा।' ''अब कथानक का चरम बिन्दु यह है कि इस कोमल प्रणय काव्य के पूरा होने के समय ही भारतवर्ष पर हूणों का आक्रमण हो गया है। तक्षशिला के समीप युद्ध हो रहा है जिसमें छाया का भाई आर्य देवदत्त वीरगति को प्राप्त हुआ है। शेखर का मित्र माधव, शेखर का आह्वान कर रहा है कि वह अपनी काव्य प्रतिभा का सही प्रयोग करे और लोगों को इस संकट के समय शस्त्र उठाकर राष्ट्र की रक्षा में आगे आने की प्रेरणा दे। शेखर को अपने कर्त्तव्य का भान होता है और वह 'भोर का तारा' को आग के हवाले कर जागरण गीत गाता हुआ जनता के बीच चला जाता है।

वस्तुतः समूचा कथानक शेखर और छाया के प्रणय के प्रतीक इस काव्य के आसपास गढ़ा गया है। दोनों की प्रथम भेंट के बाद कवि इसे लिखना प्रारंभ करता है और उसकी अभिलाषा है कि अपनी प्रेयसी के लिए लिखे गए इस काव्य के माध्यम से उसे भी उज्जयिनी के श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठा मिले। छाया भी इस आकस्मिक उपहार को प्राप्त कर रोमांचित है। किन्तु निजी भावनाओं के सामने जब राष्ट्र की रक्षा का प्रश्न आता है तो दोनों अपना मोह छोड़ देते हैं। नाटककार जगदीश चंद्र माथुर ने यहाँ एक और संकेत किया है– जब माधव 'भोर का तारा' को 'प्रभात के सूर्य' से प्रतिस्थापित करता है। समय की मांग है कि प्रणय की कल्पनाओं से निकल कर राष्ट्र पर आ रही काली विपत्ति से युद्ध के लिए तैयार हों। इस दृष्टि से इस एकांकी का शीर्षक समीचीन है जो अपनी कोमलकांत पदावली में पाठक या दर्शक को आकृष्ट तो कर रहा है किन्तु जिसे अर्थात् 'भोर का तारा' को प्रभात का सूर्य प्रतिस्थापित करने वाला है और इसके लिए कवि के मन में स्वागत भाव है।

15.8 संवाद योजना

जगदीश चंद्र माथुर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई के दिनों से ही नाटक और रंगमंच के संपर्क में आ गए थे। उन्होंने अनेक अंग्रेजी नाटकों का भी अध्ययन किया था। वहीं आगे जाकर भारतीय पारंपरिक नाट्य शैलियों पर भी उन्होंने पुस्तक लिखी। इससे ज्ञात होता है कि रंगमंच के बुनियादी तत्त्वों के प्रति उनका गहरा आकर्षण था। 'भोर का तारा' उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में है और नाट्य रचना के संबंध में उनकी तैयारी इससे ज्ञात होती है कि 'भोर का तारा' के बाद उनका सम्पूर्ण नाटक 'कोणार्क' आया जिसे हिन्दी का पहला नया नाटक माना गया।

'भोर का तारा' के संवाद चुस्त और प्रवाही हैं। इन संवादों से न केवल एकांकी के क्रिया व्यापार को गति मिलती है बल्कि चरित्रों के व्यक्तित्व की गहराई और उनके विकास का भी पता चलता है। एकांकी की सफलता इसी तथ्य में है कि एकांकी के ये पात्र– सम्राट स्कन्दगुप्त, हूण आक्रमणकारी तोरमाण, विद्रोही वीरभद्र और आर्य देवदत्त सिर्फ संवादों में आए हैं तब भी इनकी उपस्थिति महसूस की जाती है और ये नाटक को गति देते हैं। एकांकी के प्रारंभ में माधव और शेखर का संवाद जहाँ माधव के सांसारिक और यथार्थवादी होने का आभास देता है वहीं शेखर के कल्पनाशील और रोमानी स्वभाव की झलक भी इसी से मिलती है–

''माधव : तुम्हारी परियों और तारों की दुनिया में मैं मनुष्यों की दुनिया लेकर आ गया।

शेखर : (सच्चेपन से) कभी–कभी तो मुझे तुममें भी कविता दीख पड़ती है।

माधव : मुझमें ?....(जोर से हँसकर) तुम अठखेलियाँ करना भी जानते हो ?....(गम्भीर होते हुए) शेखर, कविता तो कोमल हृदय की चीज है। मुझ जैसे कामकाजी राजनीतिज्ञों और सैनिकों के तो छूने–भर से मुरझा जाएगी। हम लोगों के लिए तो दुनिया की और ही उलझनें बहुत हैं।

शेखर : माधव, तुमने कभी यह भी सोचा है कि इन उलझनों से बाहर निकलने का मार्ग भी हो सकता है ?

माधव : और हम लोग करते ही क्या हैं ? रात–दिन मनुष्यों की नई–नई उलझनें सुलझाने का ही तो उद्योग करते रहते हैं।

माधव : यही तो नहीं करते। तुम राजनीतिज्ञ और मन्त्री लोग बड़ी संजीदगी के साथ अमीरी–गरीबी, युद्ध और सन्धि की समस्याओं को हल करने का अभिनय करते हो परन्तु मनुष्य को इन उलझनों के बाहर कभी नहीं लाते। कवि इसका प्रयत्न करते हैं पर तुम उन्हें पागल....''

शेखर और छाया के मध्य हुए संवाद से छाया के चरित्र का प्रमाण मिलता है कि वह पुरुष के पीछे चलकर स्वयं को धन्य समझने वाली अनुगामिनी मात्र नहीं है वरन वह स्वतंत्र व्यक्तित्व की धनी है। देखिए –

''शेखर : (थोड़ी देर बाद गम्भीर होते हुए) लेकिन छाया, तुम्हीं बताओ तुम्हारे गान, तुम्हारी प्रेरणा, तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी कविता क्या होती ? तुम तो मेरी कविता हो!

छाया : (बड़े गम्भीर, उलाहना–भरे स्वर में) प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक कविता है।

शेखर : क्या मतलब तुम्हारा ?

छाया : कविता तुम्हारे सूने दिलों में संगीत भरती है; स्त्री भी तुम्हारे ऊबे हुए मन को बहलाती है। पुरुष जब जीवन की सूखी चट्टानों पर चढ़ता–चढ़ता थक जाता है तो सोचता है, 'चलो थोड़ा मनबहलाव ही कर लें।' स्त्री पर अपना सारा प्यार, अपने सारे अरमान निछावर कर देता है, मानो दुनिया में और कुछ हो ही न। और उसके बाद जब चाँदनी बीत जाती है, जब कविता भी नीरव हो जाती है, तब पुरुष को चट्टानें फिर बुलाती हैं और वह ऐसे भागता है मानो पिंजड़े से छूटा हुआ पंछी। और स्त्री के लिए फिर वही अँधेरा, फिर वही सूनापन!''

एकांकी के अंत में आया छाया और माधव का यह संवाद समस्त रोमानी भावबोध को समाप्त कर यथार्थ के वास्तविक धरातल पर ले आता है –

छाया : (अत्यन्त पीड़ित स्वर में) माधव तुमने तो मेरा प्रभात नष्ट कर दिया।

माधव : छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नहीं किया। प्रभात तो अब होगा। शेखर तो अब तक भोर का तारा था। अब वह प्रभात का सूर्य होगा।

एकांकी के अंतिम भाग में माधव और छाया के मध्य हुए इस संवाद में भाषा की तीव्रता, उत्तेजना और आवेग देखते ही बनता है क्योंकि यहाँ न केवल राष्ट्र की सुरक्षा का संवेदनशील प्रसंग आया है बल्कि यह छाया के लिए व्यक्तिगत प्रसंग भी बन गया है जब उसका अपना भाई तक्षशिला का क्षत्रप नियुक्त हो चुका है। इस युद्ध में उसके अनिष्ट की आशंका छाया को बेचैन कर देती है –

''माधव : (संजीदगी के साथ) शेखर, पश्चिमोत्तर सीमा पर आग लग चुकी है। हूणों का सरदार तोरमाण भारतवर्ष पर चढ़ आया है।

छाया : (भयाक्रान्त होकर) तोरमाण!

माधव : उसने सिन्धु नदी को पार कर लिया है, उसने अम्भी राज्य को नष्ट कर दिया है। उसकी सेना तक्षशिला को पैरों तले रौंद रही है....

छाया : (सहसा माधव के निकट जाकर, भय से कातर हो उसकी भुजा पकड़ती हुई) तक्षशिला ?

माधव : (उसी स्वर में) सारा पंचनद आज उसके भय से काँप रहा है। एक के बाद एक गाँव जल रहे हैं, हत्याएँ हो रही हैं, अत्याचार हो रहा है। शीघ्र ही सारा

आर्यावर्त पीड़ितों की हाहाकार से गूँजने लगेगा। शेखर, छाया – मैं तुमसे भीख माँगता हूँ – नई भीख माँगता हूँ – सम्राट स्कन्दगुप्त की, देश की इस संकट में मदद करो।''

कहा गया है कि एकांकी की सफलता में संवाद सबसे अधिक कारक तत्त्व है और 'भोर का तारा' में यह बात प्रमाणित होती है कि संक्षिप्त कथानक और कलेवर के बावजूद यह एक सफल नाट्य कृति है तो इसमें संवादों की भूमिका का बड़ा महत्त्व है।

15.9 भाषा

किसी भी कृति का आधार भाषा ही होती है और भाषा के द्वारा ही कृति का निर्माण होता है। एकांकी में भी भाषा का पक्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और ध्यान देने की बात यह है कि अपने कलेवर में संक्षिप्त होने के कारण यहाँ एकांकीकार पर यह दबाव होता है कि वह संक्षेप में समस्त क्रिया व्यापार सम्पन्न करे और दर्शक पर प्रभाव उत्पन्न करे। 'भोर का तारा' की भाषा अत्यंत विषयानुकूल और प्रभावशाली बन पड़ी है। जहाँ कवि शेखर की भाषा में कोमल और रोमानी भावबोध की झलक है वहीं छाया की भाषा में कोमलता के साथ अपने व्यक्तित्व की स्थापना का आग्रह भी बलवती है। शेखर के मित्र और दरबारी कर्मचारी माधव की भाषा ठोस और व्यावहारिक है क्योंकि वह किसी कल्पनालोक में नहीं जीता। छाया अपने प्रेम और समर्पण के बाद भी भावुकता में बह नहीं जाती इसलिए उसकी भाषा में व्यंग्य भी आ गया है वह शेखर से कहती है, ''प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक कविता है।'' ऊपर से सीधा दिखाई दे रहा उसका यह वाक्य गहरे व्यंग्य की सृष्टि करता है। इसी तरह माधव भी शेखर से बात करते हुए मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करता है जिसमें किंचित व्यंग्य आ गया है। वह शेखर से कहता है, ''टाट में रेशम का पैबन्द क्यों लगाते हो ?''

एकांकी में आई काव्य पंक्तियों की भाषा भी ध्यान देने योग्य है। प्रारंभ में जब शेखर कवि सुलभ कल्पना में विलसित है तब उसकी काव्य भाषा और अंत में जब युद्ध का तूर्यनाद हो गया है तब उसकी काव्य भाषा में आया बदलाव उसके मनोलोक से यथार्थ की यात्रा का प्रमाण भी देता है।

एकांकी में आई काव्य पंक्तियाँ हैं –

प्यार की है क्या यह पहचान ?

चाँदनी का पाकर नव स्पर्श, चमक उठते पत्ते नादान,
पवन को परस सलिल की लहर, नृत्य में हो जाती लयमान,
सूर्य का सुन कोमल पद–चाप, फूट उठता चिड़ियों का गान;
तुम्हारी तो प्रिय केवल याद, जगाती मेरे सोये प्राण।

प्यार की है क्या यह पहचान ?

यहाँ शेखर के कोमल और रोमानी मनोभावों की अभिव्यक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। वहीं एकांकी के अंत में आई इन पंक्तियों को देखें तो सर्वथा नयी मनोभूमि के दर्शन होते हैं जहाँ शेखर अब जागरण के आह्वान गीत गा रहा है।

अभय जाग जनता जनार्दन!
कहाँ हैं भयंकर तरंगें, कहाँ सो रहा क्रुद्ध गर्जन?
महोदधि तनिक तो उमड़ तू, बुलाता तुझे मैं प्रभंजन।
अभय जग जनता जनार्दन।

एकांकीकार की सफलता ही कहना चाहिए कि वह दोनों स्थलों पर सर्वथा अनुकूल भाषा का सुंदर प्रयोग कर सका है।

सिद्धनाथ कुमार के अनुसार, ''माथुर भाषा शैली और संलाप के प्रति भी बहुत जागरूक हैं। इनके नाटकों की भाषा वातावरण एवं पात्रों के अनुरूप है – सहज, बोधगम्य और स्थान–स्थान पर काव्यत्व लिए हुए।''

कहा जा सकता है कि 'भोर का तारा' की भाषा पात्रानुकूल और प्रसंगानुकूल है। यह भाषा अत्यंत प्रवाहमयी है और दर्शकों–पाठकों तक भाव सम्प्रेषण में पूर्णतः सफल है।

15.10 रंगमंचीयता

रंगमंचीयता का आशय है नाटक अथवा एकांकी में रंगमंच पर खेले जाने के गुण होना। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि नाटक पढ़ने की कला नहीं है बल्कि उसका मंचन ही उसकी सर्वोच्च सिद्धि है। नाटक भी लिखे जाने पर ही पूरा नहीं हो जाता बल्कि मंच पर अभिनय के बाद उस नाटक का वास्तविक मूल्यांकन हो पाता है कि यह ऐसा नाटक बना है? यदि किसी नाटक के मंचन में व्यावहारिक समस्याएँ हों, उदाहरणार्थ नाटक के मुख्य पात्रों में कुछ ऐसे दृश्य विधान हों जिनका मंचन करना असंभव या बेहद कठिन हो तब यह कहा जाएगा कि इस नाटक में रंगमंचीयता के गुणों का अभाव है। हमारे देश में रंगमंच अभी भी बहुत संसाधन सम्पन्न नहीं हो पाया है और अच्छे प्रेक्षागृहों की सुलभता भी विरल है ऐसे में नाटककार के समक्ष चुनौती होती है कि वह अपना नाटक इस प्रकार लिखे कि अल्प साधनों में भी उसका सफल मंचन हो सके। यही नहीं कई बार नाटककार मंचन के लिए नाटक की भूमिका में निर्देशक और अभिनेताओं के लिए आवश्यक निर्देश भी देते हैं ताकि उन्हें मंचन के समय सुविधा रहे और सम्प्रेषण में किसी प्रकार का अवरोध न हो।

इस कसौटी पर 'भोर का तारा' के मंचन में कोई अवरोध नहीं है अपितु यह विद्यालय स्तर से व्यावसायिक रंगमंच तक सफल माना गया है। नाटककार जगदीश चंद्र माथुर ने अपनी कला का श्रेष्ठ प्रदर्शन इसके संवादों में किया है। संवादों के माध्यम से ही दर्शकों को अनेक सूचनाएँ मिल जाती हैं और एकांकी का समस्त क्रिया व्यापार आगे बढ़ता है। शेखर को राजकवि बना दिया गया है लेकिन इसके लिए मंच पर सम्राट की सभा का दृश्य आवश्यक नहीं है, आर्य देवदत्त और माधव को तक्षशिला भेज दिया गया है जहाँ से आगे हूणों के आक्रमण की सूचना मिलती है लेकिन इसके लिए भी मंच पर किसी दृश्य विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती।

एकांकीकार ने केवल दो दृश्यों के माध्यम से समस्त एकांकी को सम्पन्न कर दिया है। जहाँ पहले दृश्य से कथा का सूत्रपात होता है और भावी पात्रों तथा घटनाओं की सूचना मिलती है वहीं दूसरे दृश्य में समस्त नाटक संपादित हो गया है। युद्ध की सूचना के बाद जनता में हलचल के लिए खिड़की के बाहर से आ रहे शोर मात्र से नाटक का प्रभाव सिद्ध हो जाता है। 'भोर का तारा' रंगमंचीय दृष्टि से सफल एकांकी है जिसमें नाटककार ने अपने कौशल से संवाद योजना के माध्यम से समस्त क्रिया व्यापार सम्पन्न कर दिया है। सिद्धनाथ कुमार का इस संदर्भ में मत है, ''जगदीश चंद्र माथुर के एकांकी नाटकों के संबंध में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही जा सकती है, वह यह कि ये रंगमंच के लिए लिखे गए हैं, और अनेक बार रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। लेखक को रंगमंच का अनुभव है, उसने उसका अध्ययन किया है, उस पर अभिनय किया है। इसलिए सभी एकांकी रंगमंच की कसौटी पर खरे उतरते हैं।'' खुद जगदीश चंद्र माथुर ने लिखा है, ''हमारा राष्ट्रीय रंगमंच एकमुखी नहीं हो सकता और न होना ही चाहिए। इसलिए हमारा नाट्य–साहित्य भी कई विभिन्न शैलियों का संग्रह होगा, एक ही परिपाटी का उत्थान मात्र नहीं। लेकिन मुझे लगता है, मानो हम आधुनिक

हिंदी के नाटककार बरबस ही एक ही शैली की तलाश में भटक रहें हों। जो नए प्रयोग हो रहे हैं, उनके पीछे रंगमंच की सामर्थ्य नहीं। इसलिए हमें रंगमंच की पद्धतियाँ भी निर्धारित करनी हैं और उसके साथ ही साथ नाट्य–साहित्य की शैलियाँ भी। दोनों कार्य सामानांतर रेखाओं की तरह चलें। यह सोचना कि पहले रंगमंच तैयार हो जाये तब नाटक लिखें जाएँ, या नाटकों की रचना कराकर रंगमंच को तदनुसार तैयार कर लें, भारी प्रवंचना होगी।''

15.11 प्रतिपाद्य

विषय वस्तु, प्रभावशीलता और रंगमंचीयता की दृष्टि से इस एकांकी का महत्त्व स्वीकार किया गया है। राष्ट्र के समक्ष संकट उपस्थित होने पर किसी भी कलाकार के सामने यही चुनौती है कि वह अपनी कला का उपयोग संकट से मुक्ति के लिए करे। कुछ आलोचकों ने इसे रचना की राजनीति से जोड़ा है और एकांकी को सोद्देश्यतापरक बताया है। तब भी विचारणीय है कि संकट के समय किसी भी कला का सर्वोच्च मूल्य मनुष्य, समाज और राष्ट्र के लिए ही है चाहे कला स्वयं में कितना भी बड़ा मूल्य क्यों न हो। यह एकांकी कलाकार के अंतर्द्वंद्व के साथ कला के सर्वोच्च मूल्य का सवाल भी उठाता है। 'भोर का तारा' के 'प्रभात का सूर्य' बन जाने में राष्ट्र और कला का हित है। यदि युद्ध में राष्ट्र ही नहीं बचा तो किसी कलाकार की कला का क्या अर्थ होगा? यहाँ रोमानी भावबोध में जी रहे कवि शेखर को अंततः जागरण के गीत गाते हुए देखना कला की भी सिद्धि है। नाट्यालोचक गोविंद चातक ने लिखा है कि ''जगदीश चंद्र माथुर की एकांकी संरचना में घटना, राग, व्यंग्य, विचार आदि का समन्वय मिलता है। काव्य और व्यंग्य के समावेश के कारण उनके एकांकियों में विस्तार की अपेक्षा गहराई है।'' इस कथन की रोशनी में देखा जाए तो 'भोर का तारा' श्रेष्ठ एकांकी के रूप में हमारे सामने आता है।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित दिए गए प्रश्नों में से सही विकल्प का चयन कीजिए :

1. भोर का तारा का प्रकाशन कब हुआ था ?
   - क) 1919
   - ख) 1920
   - ग) 1922
   - घ) 1946
2. जगदीश चंद्र माथुर का पहला एकांकी कौन–सा था?
   - क) मेरी बाँसुरी
   - ख) भोर का तारा
   - ग) कलिंग विजय
   - घ) रीढ़ की हड्डी
3. छाया के भाई का नाम है –
   - क) शेखर
   - ख) तोरमाण
   - ग) देवदत्त
   - घ) वीरभद्र

4. उज्जयिनी के सम्राट कौन हैं –
   क) स्कन्दगुप्त
   ख) चन्द्रगुप्त
   ग) विक्रमादित्य
   घ) बिंबसार
5. आर्य देवदत्त कहाँ के क्षत्रप हैं ?
   क) पंचनद
   ख) पाटलीपुत्र
   ग) तक्षशिला
   घ) उज्जयिनी
6. कवि शेखर के महाकाव्य का नाम क्या है ?
   क) तुम्हारे गीत
   ख) भोर का तारा
   ग) मोर बाँसुरी
   घ) उर्वशी
7. युद्ध में वीरगति किसी मिली है ?
   क) आर्य देवदत्त
   ख) माधव
   ग) स्कन्दगुप्त
   घ) शेखर
8. 'भोर का तारा' एकांकी के संवादों की विशेषता बताइए। (लगभग 5–6 पंक्तियों में)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

15.12 सारांश

आपने इस इकाई को ध्यान से पढ़ा होगा और प्रसिद्ध नाटककार जगदीश चंद्र माथुर के एकांकी 'भोर का तारा' का गंभीरता से अध्ययन किया होगा।

- जगदीश चंद्र माथुर स्वतंत्रता के आसपास आए हिन्दी के प्रारम्भिक नाटककार हैं जिनके नाटकों से नये नाटक की चर्चा हुई।
- उन्हें एकांकी लेखन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त है क्योंकि एकांकी लेखन में जिस कौशल और कला की आवश्यकता होती है वह माथुर के एकांकी नाटकों में परिलक्षित हुई है।

- एकांकी भोर का तारा कवि शेखर के समक्ष युद्ध के संकट में आ गई चुनौती को निभाने का सुंदर उदाहरण है जिसमें कवि कल्पना लोक से निकलकर जागरण के गीत गाता है।
- 'भोर का तारा' रंगमंचीयता की दृष्टि से सफल एकांकी है जिसमें संवाद योजना, पात्र और परिवेश का सुंदर संयोजन एकांकी को सफल कृति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।
- एकांकी की भाषा अत्यंत प्रवाहमयी और पात्रानुकूल है जिसमें तत्समप्रधानता और रोमानी भावबोध का भी प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं व्यंग्य और मुहावरों के प्रयोग से पात्रों के व्यक्तित्व की गहराई उजागर होती है।

15.13 उपयोगी पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 और 2 – सं धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य – ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल– नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
3. हिन्दी नाटक – उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, राजपाल एंड संज, दिल्ली
4. नये एकांकी –अज्ञेय, राजपाल एंड संज, दिल्ली
5. रंग कोलाज – देवेन्द्र राज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास – सिद्धनाथ कुमार, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
7. नाटककार जगदीश चंद्र माथुर – गोविंद चातक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

15.14 बोध/अभ्यास प्रश्न तथा उनके उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (ग)
6. (ख)
7. (क)
8. उत्तर के लिए देखिए 15.8

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 16: रामकुमार वर्मा और उनका साहित्य

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 रामकुमार वर्मा का परिचय

16.3 रामकुमार वर्मा का साहित्य

16.3.1 नाटक

16.3.2 एकांकी

16.3.3 अन्य साहित्य

16.4 रामकुमार वर्मा की रचना दृष्टि

16.5 रामकुमार वर्मा के साहित्य की विशेषताएँ

16.6 सारांश

16.7 उपयोगी पुस्तकें

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको राजकुमार वर्मा और उनके साहित्य से परिचित कराया जाएगा। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- रामकुमार वर्मा के साहित्यिक व्यक्तित्व और अवदान से परिचित हो सकेंगे;
- रामकुमार वर्मा के साहित्य को बता सकेंगे;
- रामकुमार वर्मा की रचना दृष्टि की विवेचना कर सकेंगे; और
- रामकुमार वर्मा के साहित्य, विशेषरूप से नाटक और एकांकी की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

रामकुमार वर्मा के नाटक और एकांकी बहुत महत्वपूर्ण हैं। नाटकों की परंपरा में रामकुमार वर्मा का अवदान अत्यंत उल्लेखनीय है। रामकुमार वर्मा ने जब नाटक और एकांकी लिखना शुरू किया था, तब तक इन विधाओं में लिखने वालों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण लाल, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती जैसे नाट्यकारों की समृद्ध परंपरा मौजूद थी।

इनको पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि रामकुमार वर्मा के समय में हिंदी के नाटक और एकांकियों की क्या स्थिति थी? रामकुमार वर्मा का निजी व्यक्तित्व कैसा था? उन्हें कौन सी नाट्य परंपराएँ मिली और उन परंपराओं से उन्होंने क्या लिया और क्या स्वयं नया रचा? यह सब जानने के लिए आप रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य को अच्छी तरह समझने की ओर अग्रसर हो सकेंगे और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन कर सकेंगे।

हिंदी नाटक का इतिहास बहुत पुराना है। हमारे यहाँ भारतीय नाट्यकला की बहुत लंबी और समृद्ध परंपरा मिलती है—संस्कृत नाटक और लोक नाटक की, लेकिन हिंदी

में आधुनिक युग से पूर्व नाटक की परंपरा लगभग अनुपस्थित थी। हिंदी नाटक का जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चंद्र को ही माना जाता है। भारतेन्दु से ही हिंदी के आधुनिक युग की शुरूआत होती है। आधुनिक हिंदी गद्य के वही जन्मदाता हैं। वह हिंदी के प्रथम समर्थ नाटककार हैं। यद्यपि उनके पूर्व भी कुछ छिटपुट नाटक लिखे गए हैं लेकिन वे बहुत कम चर्चित रहे हैं। भारतेंदु युग के बाद हिंदी में नाटकों के लेखन की परंपरा चल निकली।

प्रसाद ने हिंदी के लिए काव्य गरिमा युक्त आदर्शोन्मुख स्वच्छंदतावादी नाट्य परंपरा दी थी। डॉ. रामकुमार वर्मा भी न्यूनाधिक रूप में इन्हीं आदर्शों से प्रेरित हैं। प्रसाद–शैली का सरलीकृत रूप ही उनके नाटकों में मिलता है। डॉ. वर्मा वस्तुतः ऐतिहासिक नाटककार हैं–स्वाधीनता के बाद लिखित उनके ऐतिहासिक नाटक जहाँ किसी प्राचीन भारतीय विचार या चरित्र को समाधान या आदर्श के रूप में उपस्थित करते हैं वहाँ गहरे अंतर्द्वंद्व, अलगाव और भटकाव में से सत्य को तलाशते हैं। कोई बना–बनाया सा समाधान वे प्रस्तुत नहीं करते वरन् प्रश्न देते हैं। अपने समय की प्रबल आकांक्षाओं को व्यक्त करने का, गहरी शंकाओं या चुनौतियों से जूझने का सर्जनात्मक प्रयास इनमें स्पष्ट परिलक्षित होता है। डॉ. वर्मा के नाटकों पर उनके कवि हृदय का विशेष प्रभाव है। ऐतिहासिक नाटकों के वस्तु चयन में कवि–सुलभ दृष्टि के कारण ही उन्होंने संवेदनात्मक वस्तु का चयन किया है। संवादों पर भी काव्य का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।

नाटककार और कवि के साथ–साथ उन्होंने समीक्षक, अध्यापक तथा हिंदी साहित्य के इतिहास–लेखक के रूप में भी हिंदी साहित्य–सृजन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। नाटककार के रूप में उन्होंने मनोविज्ञान के अनेकानेक स्तरों पर मानव–जीवन की विविध संवेदनाओं को स्वर दिया तो छायावादी कवियों की कतार में खड़े होकर रहस्य और अध्यात्म की पृष्ठभूमि में अपने काव्यात्मक संस्कारों को विकसित कर रहस्यमय जगत् के स्वप्नों में सहृदय को प्रवेश कराया।

16.2 रामकुमार वर्मा का परिचय

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न अभिनव साहित्यकार डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म 14 सितंबर, 1905 को मध्य प्रदेश के सागर जिले में हुआ था। वर्मा जी के पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा डिप्टी कलेक्टर थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा नरसिंहपुर, जबलपुर, जगदलपुर आदि स्थानों पर हुई। रामकुमार वर्मा का विद्यार्थी जीवन पूर्णतया सफल रहा। उन्होंने अपनी सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. हिंदी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। तदुपरांत नागपुर विश्वविद्यालय से 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पर पी–एच. डी. की उपाधि अर्जित की। रामकुमार वर्मा को 'हालैण्ड मैडेल' प्रदान कर सम्मानित किया गया। यह मैडेल उस छात्र को दिया जाता है जो सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ रहता था। वे रूस में भी कुछ दिन रहे। वहाँ पर 'लेनिनग्राड विश्वविद्यालय' में हिंदी का सफल अध्यापन कार्य भी किया है। दीर्घकाल तक प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष भी रहे। कुछ समय तक आप मध्यप्रदेश में शिक्षा विभाग के सहायक संचालक भी रहे। बाद में इलाहाबाद में रहते हुए साहित्य–साधना में संलग्न रहे।

डॉ. वर्मा व्यक्तित्व से सरल और उदार रहे हैं। विद्यार्थियों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहे। कोई भी उनके व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। वह लिखते भी हैं कि ''मैं जीवन रूप आकर्षण को कम नहीं समझता, उसके जीवन में जागरण आता है। प्रकृति में कुछ भी आकर्षण है, उसकी ओर आँखें उठ जाना स्वाभाविक है लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि रूप आदर्श और मिशन केवल इंद्रियों के बाहरी धरातल तक न रहे वरन् इंद्रियों को पार करके वह आत्मा का तार हिला दे। रूप की सार्थकता भी यही है। ऊपरी रूप तो केवल एक वार्निश या पालिश है।''

डॉ. रामकुमार वर्मा की लेखनी हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर अत्यंत सफलतापूर्वक प्रवाहित हुई है। उन्होंने कविता, निबंध, आलोचना और नाटक, एकांकी सभी कुछ लिखा है। वर्मा जी को, उनकी रचनाओं पर पर्याप्त सम्मान भी मिला है। भारत सरकार द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय की विशेषज्ञ समिति के भी वे सम्मानित सदस्य रहे। अखिल भारतीय हिंदी परिषद् के आप प्रमुख संस्थापक सदस्य के साथ ही उसके प्रधानमंत्री तथा उपसभापति प्रभृति पदों पर रहे। रामकुमार वर्मा की साहित्यिक सेवाओं को दृष्टिगत रखकर राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्म–भूषण' की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। इन्हें अपने 'चित्ररेखा' काव्य पर पुरस्कार मिला है। साथ ही, 'विजय पर्व' नाटक पर मध्य प्रदेश सरकार से 'महाकवि कालिदास पुरस्कार मिला।

वर्मा जी को साहित्य की दो विधाओं–कविता और नाटक– में विशेष सफलता मिली है। उन्हें काव्य–प्रेरणा बुंदेलखंड के पर्वतीय प्रदेश के सौंदर्य से मिली। जिज्ञासु वृत्ति सजग हो उठी। अपनी माँ से उन्हें भारत की नारियों की महानता का परिचय मिला। फलतः 18 वर्ष की अल्पायु में उनका पहला काव्य–ग्रंथ प्रकाशित हुआ। यह ग्रंथ गंगा पुस्तक माला से प्रकाशित हुआ है। कालांतर में अध्ययन–मनन–चिंतन कवि–हृदय बनकर प्रस्फुटित होने लगा। नाटक–एकांकी भी उन्हें कम प्रिय नहीं है। वह लिखते हैं कि ''यों तो आत्मा का संतोष कविता लिखने से ही होता है क्योंकि कवि ने ही पूर्ण बनाया। काव्यगत दृष्टिकोण को सूझ दी या यों कहिए कि कविता यदि एक लता है तो नाटक उसमें खिले फूल हैं। लता से अधिक महत्व फूल को दिया जाता है। मेरे नाटकों को वैसा ही महत्व प्राप्त है। अध्यापक होने के नाते मुझमें आलोचना भी के तंतु आए। इस प्रकार मैं अपने को पहले कवि और फिर नाटककार के रूप में सफल मानता हूँ।''

16.3 रामकुमार वर्मा का साहित्य

जैसाकि हमने पूर्व में भी बताया कि रामकुमार वर्मा जी की प्रतिभा बहुमुखी है और उन्होंने कविता, नाटक निबंध, आलोचना आदि विविध क्षेत्रों को सफलतापूर्वक अपनाया है। वह हिंदी में एकांकी कला के जन्मदाता भी कहे जाते हैं। उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ निम्नलिखित हैं:–

काव्य–वीर हम्मीर, कुल ललना, चित्तौड़ की चिता, रूपराशि, निशीथ चितवन, अभिशाप, चित्ररेखा, चंद्रकिरण, जौहर, अंजलि, आधुनिक कवि (भाग तीन) और एकलव्य (महाकाव्य)।

नाटक–सत्य का स्वप्न, विजय पर्व।

उपन्यास–हिम–हास

एकांकी संग्रह–पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चारुमित्रा, शिवाजी विभूति, सप्त किरण, कौमुदी महोत्सव, चार ऐतिहासिक एकांकी, ध्रुवतारिका, विक्रमार्चन, रम्यरास, सरस एकांकी, रजतरश्मि, ऋतुराज, दीपदान, इंद्रधनुष, रिमझिम।

निबंध और आलोचना–विचार–दर्शन, साहित्यशास्त्र, कबीर का रहस्यवाद, साहित्य समालोचना, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, हिंदी–साहित्य की रूपरेखा, एकांकी कला, हिंदी साहित्य का इतिहास।

संपादित–हिंदी गीति काव्य, कबीर–पदावली, आठ एकांकी नाटक, आधुनिक हिंदी काव्य, संक्षिप्त कबीर।

आधुनिक हिंदी साहित्य में वर्मा जी का उल्लेखनीय स्थान है और उनका रचनाकाल छायावाद युग के अंतिम चरण अर्थात् सं. 1976 से प्रारंभ होता है। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'वीर हम्मीर', 'चित्तौड़ की चिता' और 'अभिशाप' वर्णनात्मक व इतिवृत्तात्मक है, पर बाद की रचनाओं जैसे 'अंजलि', रूपराशि और 'निशीथ' में भाव व कल्पना की विभवता एक साथ दृष्टिगोचर होती है। ऐसा जान पड़ता है कि वे सौंदर्य, प्रेम और यौवन के कवि हैं तथा उनकी दृष्टि में सौंदर्यामृत का रसास्वादन ही दिव्य जीवन हैः

''दिव्य जीवन है छवि का पान, यही आत्मा की तृषित पुकार।''

कालांतर में कबीर के अध्यात्म दर्शन का उन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जीवन के प्रति उनका अनुराग, विराग में परिवर्तित हो गया और आत्मनिष्ठ होकर एक ओर तो प्रकृति के रूप सौंदर्य से उद्दीप्त रहस्यानुभूति को अंकित करने लगे तथा दूसरी ओर सांसारिक क्षणभंगुरता की भावभूमि पर करुणा और निराशा के चित्र अंकित किए। 'चंद्रकिरण' और 'चित्ररेखा' में हृदयगत निराशा, वेदना और करुणा का यथेष्ठ चित्रण हुआ है तथा करुण रस की अभिव्यक्ति में ही उनका व्यथित हृदय विश्राम पाता है। जीवन के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करते हए वह कहते हैं–

क्या शरीर है? शुष्क धूल का थोड़ा–सा छवि जाल।
उस छवि में ही छिपा हुआ है वह भीषण कंकाल।।

बोध प्रश्न–1

1. पाँच पंक्तियों में रामकुमार वर्मा के साहित्यिक योगदान के बारे में लिखिए।

....

....

....

....

....

2. रामकुमार वर्मा ने किस प्रकार की एकांकियाँ लिखी हैं?

....

....

....

....

....

3. निम्नलिखित वाक्यों में सही या गलत पर उपयुक्त निशान लगाइएः
   1. रामकुमार वर्मा मूलतः राजस्थान के रहने वाले हैं।
   2. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के लेखक रामकुमार वर्मा हैं।
   3. 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखी है।
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   1. रामकुमार वर्मा हिंदी में एकांकी कला के..........कहे जाते हैं।
   2. वर्मा जी को साहित्य की दो विधाओं...................... में विशेष सफलता मिली है।
   3. ''इस प्रकार मैं अपने को पहले कवि और फिर ....के रूप में सफल मानता हूँ।''

16.3.1 नाटक

हिंदी की लघु नाट्य परंपरा को नया मोड़ देनेवाले डॉ. रामकुमार वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य में 'नाट्य–एकांकी सम्राट' के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने हिंदी नाटक को एक नया संरचनात्मक आदर्श सौंपा। नाट्य कला के विकास की संभावनाओं के नये पाट खोलते हुए नाट्य साहित्य को जन–जीवन के निकट पहुँचा दिया। नाटककार और कवि के साथ–साथ उन्होंने समीक्षक, अध्यापक तथा हिंदी साहित्येतिहास–लेखक के रूप में भी हिंदी साहित्य–सृजन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाटककार के रूप में उन्होंने मनोविज्ञान के अनेकानेक स्तरों पर मानव–जीवन की विविध संवेदनाओं को स्वर दिया तो छायावादी कवियों की कतार में खड़े होकर रहस्य और अध्यात्म की पृष्ठभूमि में अपने काव्यात्मक संस्कारों को विकसित कर रहस्यमय जगत् के स्वप्नों में सहृदय को प्रवेश कराया।

'कला और कृपाण' नाटक सम्राट उदयन के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के कारणों पर प्रकाश डालता है। नाटककार ने स्वयं स्वीकार किया है कि इस नाटक की सृष्टि में भास के दो नाटकों का प्रभाव है– ''नाटक की कथावस्तु के सूत्रों का निर्माण करते समय मेरे मस्तिष्क में भास के दो अमर नाटकों की भी स्मृति थी। प्रतिज्ञायोगंधरायण में वासवदत्ता के विवाह की कथा है। उसमें उदयन के चरित्र की दो विशेषताएँ उभरी हैं। पहली उनकी आखेटप्रियता दूसरी वीणावादन की कला। इन विशेषताओं को मैंने भी उदयन के चरित्र में प्रतिष्ठित किया है।'' (कला और कृपाण : भूमिका भाग)

नाटक के प्रथम अंक में उदयन आखेट के बहाने सेनापति विजयसेन के साथ विंध्याटवी में जाते हैं उनका मार्गदर्शन शेखरक और शंखरक करते हैं। ये दोनों पात्र कल्पित हैं। उनमें एक उदयन की भाँति भावुक है और दूसरा शुष्क नीतिज्ञ। उन्हें मार्ग में मंजुघोषा नामक किरात कन्या मिलती है जिसकी पालिता सारिका सम्राट उदयन के शब्दवेधी वाण से आहत हो गई है। उसे जब यह ज्ञात होता है कि ये दोनों अमात्य के सेवक हैं तो वह उनके सम्मुख अपना अभियोग स्पष्ट करती है। वह नहीं जानती कि छद्म वेश में सम्राट उदयन ही सामने हैं। उदयन की बातों से वह प्रभावित होती है। अंत में उसे न्याय के लिए कौशाम्बी बुलाया जाता है। प्रथम अंक की समाप्ति पर दर्शक के मन में जिज्ञासा होती है कि उदयन किस प्रकार अपने ऊपर लगाये अभियोग का न्याय करेंगे।

दूसरा अंक कौशाम्बी के राजप्रासाद में प्रारंभ होता है। सम्राट उदयन की प्रतीक्षा में महारानी वासवदत्ता उन्मना है और अपनी वीणा पर स्वर साधना के लिए प्रयत्नशील है। उन्हें उदयन के आगमन की सूचना मिलती है। उदयन स्वयं समस्त घटना वासवदत्ता को बताते हैं और उनसे निर्णय करने का अनुरोध करते हैं। वे मंजुघोषा के प्रति आकृष्ट हैं यह बात स्पष्ट हो जाती है। वासवदत्ता मंजुघोषा का अभियोग सुनती है और जब मंजुघोषा को ज्ञात होता है कि बाण चलाने वाले स्वयं सम्राट उदयन हैं तब वह उदयन से क्षमा माँगती है। निर्णय होता है कि वह महारानी की सहचरी बन कर रहे। इसी समय उदयन को कनकावती पर आक्रमण करना होता है।

तीसरे अंक की कथा बौद्ध इतिहास के आधार पर है। जब उदयन कनकावती पर आक्रमण करने की तैयारी में अपनी सेना का निरीक्षण करने के लिए प्रस्तुत हैं उसी समय उन्हें राज्य में गौतम के आने की सूचना मिलती है। वे इस सूचना से क्रोधित हो उठते हैं। गौतम का प्रवचन राजप्रासाद के पास होता है। मंजुघोषा गौतम को पहनाने के लिए पुष्पहार ले जाती है। इधर उदयन गौतम पर शब्दवेधी बाण चलाते हैं। बाण गौतम को न लगकर मंजुघोषा को शांत करते हैं। यही घटना उदयन के धर्म परिवर्तन का कारण बनती है।

'कला और कृपाण' नाटक में हिंसा पर अहिंसा की विजय सूचित की गई है। नाटक ऐतिहासिक होने पर भी वर्तमान का संदेशवाहक है। इसमें दर्शक के मन पर यह विश्वास स्थायी हो जाता है कि एक न एक दिन पाशविक प्रवृत्तियों पर करुणा, दया, समता आदि मानवीय वृत्तियाँ अवश्य सफल होंगी। देखा जाए तो यह नाटक एक विशिष्ट आदर्श की स्थापना करता है और प्रसाद की परंपरा का निर्वाह भी करता है।

'नाना फड़नवीस' नाटक नाना फड़नवीस के महान चरित्र पर आधारित है। 18वीं शती के दक्षिण भारत की राजनीति तथा तत्कालीन पेशवा वंश के गौरव की अमर गाथा ही इस नाटक की मूल गाथा है। व्यक्ति और परिस्थिति का वास्तविक निरूपण करने के निमित्त नाटककार ने अनेक प्रामाणिक ग्रंथों से सामग्री का संकलन किया है।

नाटक का कथानक पानीपत के युद्ध की प्रतिक्रिया से होता है। वातावरण के अंतर्गत बालाजी बाजीराव की मनःस्थिति एवं अनेक परिस्थितियों का वर्णन है। पानीपत के युद्ध के परिणाम जानने की उत्सुकता में ही नाटक की जिज्ञासा बढ़ती है। धीरे–धीरे पांडुरंगराव की मृत्यु और युद्ध की भयानकता पेशवा के हृदय को आंदोलित करती है परंतु विश्वासराव की मृत्यु से धैर्य टूटता है। नाना फड़नवीस का वार्तालाप साहस का संचार करता है। दूसरे अंक में नाना फड़नवीस की राजनीति और अंतर्दृष्टि पूरे उभार पर चित्रित की गई है। तीसरे अंक में कथासूत्रों की संधि है। तीसरा अंक गंगाबाई के करुणापूरित मनोविज्ञान से प्रारंभ होता है। रघुनाथराव ने गंगाबाई की भी हत्या के अनेक षड्यंत्र रचे किंतु नाना फड़नवीस की सूक्ष्म दृष्टि से उनका विघटन हुआ और स्वयं रघुनाथराव बंदी हुए। षड्यंत्रकारी को दण्ड देकर नाना ने गंगाबाई के पुत्र को ही पूर्ण रूप से पेशवा पद पर बिठाया। यहीं नाटक समाप्त हो जाता है।

डॉ. वर्मा के नाटक एक ओर ऐतिहासिक संवेदना को प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर रंगमंच के शिल्प का भी उपयोग उनमें है। ऐतिहासिक नाटक रंगमंच पर भी खरा उतरे, यह एक विशेष महत्ता डॉ. वर्मा के नाटकों की है।

मात्र सोलह वर्ष की आयु में महात्मा गाँधी के राष्ट्रव्यापी असहयोग आंदोलन का उनपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शैक्षिक प्रांगण से बाहर निकलकर खादी पीठ पर लादकर बेची तथा प्रभात फेरी में राष्ट्रीय चेतना से संपन्न स्वरचित गीत गाए और ओजस्वी भाषण दिए। जीवन की विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य और संतुलन तथा निराशा और अवसाद के क्षणों में भी स्मित मुस्कान एवं गंभीरता के साथ विनम्रता उनके व्यक्तित्व के कुछ खास रंग है, जिन्होंने उनके कलात्मक स्वरूप को भी एक विशिष्ट सज्जा दी।

वस्तुतः डॉ वर्मा के उनके प्रमुख नाटक हैं–'विजय पर्व', 'कला और कृपाण', 'नाना फड़नवीस', 'सत्य का स्वप्न' आदि। डॉ. वर्मा के साहित्यिक व्यक्तित्व को नाटककार और कवि के रूप में अधिक प्रमुखता मिली। सन् 1930 में रचित '**बादल की मृत्यु**' उनका पहला एकांकी है, जो फैण्टेसी के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। भारतीय आत्मा और पाश्चात्य टेकनीक के समन्वय से उन्होंने हिंदी नाटक व एकांकी कला को निखार दिया। उन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक दो तरह के नाटक और एकांकी की सृष्टि की। ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों से नाटकों की विषय–वस्तु को ग्रहण कर चरित्रों की ऐसी सुदृढ़ रूपरेखा प्रस्तुत की जो पाठकों में उच्च चारित्रिक संस्कार भर सके और सामयिक जीवन की समस्याओं को समाधान की दिशा दे सके। उनके नाटक भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय उद्‌बोध के स्वर बखूबी समेटे हुए हैं। गर्व के साथ वे कहते हैं, ''ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय संस्कृति का मेरुदंड–नैतिक मूल्यों में आस्था और विश्वास का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।'' उनके सामाजिक नाटक व एकांकी प्रेम और सेक्स की समस्याओं से संबंधित हैं। ये

नाटक और एकांकी मानसिक अंतर्द्वन्द्व की आधारभूति पर यथार्थवादी कलेवर में समाज और जीवन की वस्तुस्थिति तक पहुँचते हैं। पर इन कृतियों में लेखक की आदर्शवादी सोच इतनी गहरी है कि वे आदर्शवादी झोंक में यथार्थ को मनमाना नाटकीय मोड़ दे बैठते हैं। इसीलिए उनके स्त्री पात्र शिक्षा और नए संस्कारों के बावजूद प्रेम और जीवन के संघर्ष में जीवन का मोह त्यागकर प्रेम के लिए उत्सर्ग कर बैठते हैं मानो उत्सर्ग या प्राणान्त ही सच्चे प्रेम की कसौटी हो। आधुनिक पात्रों पर भी लेखक ने अपनी आदर्शवादी सोच को थोप दिया है।

16.3.2 एकांकी

वैसे तो वर्मा जी ने कविता, नाटक और आलोचना सभी कुछ लिखा है किंतु हम यहाँ पर केवल उनके एकांकियों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। काल–क्रमुसार उनके प्रकाशित एकांकी–संग्रह की सूची अधोलिखित है–

पृथ्वीराज की आँखें (1936), रेशमी टाई (1941), चारुमित्रा (1942), रूपरंग (1942), विभूति (1945), सप्तकिरण (1947), रजत रश्मि (1950), ऋतुराज (1951), दीपदान (1953), रिमझिम (1955), इंद्रधनुष (1956), पांचजन्य (1957) इत्यादि।

उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि ''मैंने लगभग सौ एकांकी लिखे होंगे।'' इस प्रकार वर्मा जी ने विपुल परिणाम में एकांकी लिखे हैं। उनके महत्वपूर्ण एकांकी नाटकों के नाम इस प्रकार हैं–

बादल की मृत्यु, चम्पक, नहीं का रहस्य, दस मिनट, पृथ्वीराज की आँखें, परीक्षा, रूप की बीमारी, 18 जुलाई की एक शाम, एक तोला अफीम की कीमत, रेशमी टाई, चारुमित्रा, उत्सर्ग, रजनी की रात, अंधकार, समुद्रगुप्त पराक्रमांक, विक्रमादित्य, कादम्ब या विष, ध्रुवतारिका, कौमुदी महोत्सव, प्रतिशोध, तैमूर की हार, दुर्गावती, औरंगजेब की आखिरी रात, कलंक रेखा, राजरानी सीता, वासवदत्ता, राज्यश्री, वाजिदअली शाह, कलाकार का सत्य, आँखों का आकाश, पृथ्वी का स्वर्ग आदि। इनमें से 'कौमुदी महोत्सव' और 'ध्रुवतारिका' आदि एकांकी स्वतंत्र रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। वर्मा जी ने इस एकांकियों में विभिन्न विषयों का स्पर्श किया है। इनका कथानक विभिन्न क्षेत्रों से लिया गया है। वर्मा जी ने अपने एकांकियों में मनुष्य की सद्प्रवृत्तियों की अवतारणा सफलतापूर्वक की है।

विषय और शिल्प की दृष्टि से वर्मा जी के एकांकी नाटकों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है–यों तो उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं किंतु प्रमुखता इतिहास और समाज को ही मिली उनमें कहीं सत्यों की अभिव्यक्ति है तो कहीं सामाजिक असंगति पर व्यंग्य किया गया है और कहीं जीवन की हल्की–फुल्की स्थितियों के मनोरंजक चित्र उपस्थित किए गए हैं। अस्तु विषय की दृष्टि से उनके एकांकियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(1) **ऐतिहासिक एकांकी**–'कौमुदी महोत्सव, 'चारुमित्रा' 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'कृष्ण का बलिदान', 'अशोक', 'चंद्रगुप्त', 'दुर्गावती', 'सम्राट विक्रमादित्य' इत्यादि। वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों का महत्व अक्षुण्ण है। डॉ. पद्‌मसिंह शर्मा के शब्दों में–

''मध्यकालीन इतिहास अथवा पौराणिक तत्वों के आधार पर वे मानव मन की आज की गुत्थियों को सुलझाने में भी पटु हैं। ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने मौलिक अनुसंधान वृत्ति का वैसा ही परिचय दिया है जैसा कि 'प्रसाद' ने।''

ऐतिहासिक एकांकी लेखन की प्रेरणा का मूल स्रोत वर्मा जी ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–''मैंने ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक तो राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों का विशेष हाथ रहा है। दूसरे ऐतिहासिक जीवन के निरूपण से हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल प्राप्त होता है।''

(2) **सामाजिक एकांकी**–'बादल की मृत्यु' 'परीक्षा', 'अठारह जुलाई की एक शाम, 'एक तोले अफीम की कीमत', 'रूप की बीमारी', 'रेशमी टाई', 'एक्ट्रेस, 'कलाकार का सत्य', 'रजनी की रात', 'कहाँ से कहाँ, 'चम्पक', 'दस मिनट', 'राह का रहस्य', 'सही रास्ता', 'आँखों का आकाश', 'आशीर्वाद', 'इलेक्शन', 'उत्सर्ग', 'नहीं का रहस्य', 'प्रेम की आँखें' इत्यादि।

समाजिक एकांकियों के मूल में अपनी भावना को वर्मा जी ने इस शब्दों में अभिव्यंजित करते हैं–

''मेरी कला जीवन के यथार्थ से उद्‌भूत होकर सजीव आदर्श की सृष्टि करने में प्रगतिशील रही है। यों तो जीवन ही एक विशाल नाटक है और यदि हम कुछ शताब्दियों तक जीवित रहे तो विशाल नाटक की चरम सीमा देखने में समर्थ हो सकेंगे, किंतु न तो लेखक और न दर्शक या पाठक शताब्दियों क्या एक शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक जीवित रहने का विश्वास कर सकते हैं। यद्यपि उनके दीर्घ जीवन की मेरी बलवती कामनाएँ हैं। तब इस जीवन नाटक की अनुभूति तब तक नहीं हो सकती जब तक अपनी अंतर्दृष्टि या अनुभव से कुछ ऐसी घटनाओं की सृष्टि न कर दें, जो इस क्रम को निश्चित निष्कर्ष की ओर गतिशील कर सके। जीवन के स्वाभाविक गति–प्रवाह को एक बल देना, अपनी उसकी दिशा में झुकाव ला देना ही मेरी नाटक–रचना का प्रमुख उद्‌देश्य रहा है। अपनी इस कला के प्रयोग में सामाजिक नाटकों में विशेष विश्वास के साथ कर सका हूँ।''

शिल्प की दृष्टि से वर्मा जी के एकांकियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

रंगमंचीय एकांकी– पृथ्वीराज की आँखें, चारुमित्रा, विभूति, रेशमी टाई, चम्पक, एक्ट्रेस, नही का रहस्य, अठारह जुलाई की शाम, एक तोले अफीम की कीमत, विक्रमादित्य और रूप की बीमारी आदि। रंगमंचीय एकांकी लिखते समय वह रंगमंच सुविधा–असुविधा का पूर्ण ध्यान रखते हैं। उन्होंने एक स्थल पर लिखा भी है कि ''रंगमंच की सारी असुविधाओं से मैंने संघर्ष किया है। अतः जब कभी नाटक की कल्पना मेरे ह्रदय में आती है तो रंगमंच मेरे मानस–पटल पर पहले ही आ खड़ा होता है और पात्रों की अथवा कथावस्तु की माँग करता है। फल यह होता है कि मशीन के पुर्जों की भाँति मेरी कथावस्तु अथवा पात्र आपसे आप यथास्थान आ सिमटते हैं और फ्रेम में जड़े हुए चित्र की तरह मेरे नाटक की कल्पना पृष्ठों पर उतर आती है।''

रेडियो एकांकी– चारुमित्रा, औरंगजेब की आखिरी रात, कौमुदी महोत्सव, रजत रश्मि, ऋतुराज, दीपदान, कामकंदला, जैसे प्रमुख रेडियो एकांकी हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा का सर्वप्रथम एकांकी 'बादल की मृत्यु' सन् 1930 ई. के 'विश्वामित्र' में प्रकाशित हुआ था। यह एकांकी 'पृथ्वीराज की आँखें' संग्रह में संकलित है। 'पृथ्वीराज की आँखें' वर्मा जी का प्रथम एकांकी संग्रह है, जो सन् 1936 में प्रकाशित हुआ था। 'बादल की मृत्यु', दो पृष्ठों में लिखित अत्यंत संक्षिप्त नाटक है। इसमें कथानक और नाटकीयता का पूर्ण अभाव है। संध्याकालीन रंगीन बादलों के मिटने की कहानी संलापों के माध्यम से अभिव्यंजित है। विकास–क्रम की दृष्टि से इस एकांकी का महत्व अक्षुण्ण है। प्रो. अमरनाथ गुप्त के शब्दों में ''हिंदी साहित्य में सबसे पहला एकांकी नाटक श्री रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' तो कविता ही है। नाटक क्या? हिंदी साहित्य का सबसे छोटा नाटक और कितनी गूढ़ संवेदनायुक्त। ऐसे एकांकी हिंदी साहित्य में बहुत कम लिखे गए हैं।' प्रकाशचंद्र गुप्त भी इस संदर्भ में लिखते हैं कि ''बादल की मृत्यु' तो नाटक के रूप में कविता ही है।'' डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के शब्दों में –''कलात्मक एकांकी रचना का भी श्रीगणेश इसी नाटक में हुआ।'' 'चम्पक' में भावुक एवं संवेदनशील युवक किशोर के संपर्क में

आने वाले कठोर हृदय वृद्ध के हृदय परिवर्तन की कहानी है। एक दिन किशोर एक घायल कुत्ते को उठा लाता है। उसकी सेवा–सुश्रूषा करता है। कालांतर में वह उसे बेच देता है। एक बार उसके पास एक वृद्ध भिखारी रोटी माँगने आता है। वृद्ध लँगड़ा है। वृद्ध ने किशोर द्वारा पालित कुत्ते को घायल किया था। यह जानते हुए भी किशोर उसकी सहायता करता है। वृद्ध, किशोर की महानता से प्रभावित होकर कुत्ते की सेवा करने के लिए तत्पर हो जाता है। कथानक आद्यंत सुसंगठित एवं शृंखलाबद्ध है। कुत्ते के माथे का सफेद चिह्न भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उसी के साथ पूर्व की सभी घटनाएँ एक शृंखला से जुड़ती हैं। एकांकी का आदि और अंत प्रभावशाली बन पड़ा है।

'एक्ट्रेस' का कथानक भी कुछ इसी प्रकार का है। पतिपरायण प्रभात कुमारी अपने शराबी पति की इच्छापूर्ति न कर पाने के कारण परित्यक्त है। लोग उसे मृत समझ लेते हैं किंतु वह फिल्म एक्ट्रेस 'प्रभा' के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। उसका पति जो अब एक पत्र का संपादक है, कमल कुमारी (दूसरी पत्नी) के साथ 'प्रभा' का इंटरव्यू लेने आता है। पहले तो वह प्रभा को पहचान नहीं पाता है और जब तक पहचानता है तब तक 'प्रभा' कमल कुमारी के सुख के लिए अपना बलिदान कर देती है। इसका कथानक भी पूर्वघटित घटनाओं पर आधारित है और जैसे ही रहस्योद्घाटन होता है नाटक की परिसमाप्ति हो जाती है। कथोपकथन अत्यंत सफल है। रहस्योद्घाटन द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। सभी घटनाएँ सुसंगठित और सुबंबद्ध हैं। कुतूहल का भाव आद्यंत बना रहता है। इस प्रकार का संश्लिष्ट कथानक निर्माण इससे पहले नहीं मिलता है। 'नहीं का रहस्य' का कथानक भी पूर्व घटित घटनाओं पर आधारित है। इसमें 55 वर्ष की अवस्था के एक अविवाहित प्रोफेसर की वेदना को उभार कर प्रस्तुत किया गया है। यह सोद्देश्यपूर्ण होने के कारण घटना प्रधान नहीं होने पाया है। हरिनारायण, का विवाह के अवसर पर संकोचवर्श कहे गए 'नहीं' का अर्थ 'नहीं' समझा गया। कालांतर में इनके 'नहीं' का अर्थ 'हाँ' लगाया गया किंतु इन्होंने विवाह नहीं किया। इस प्रकार इस एकांकी में प्रो. हरिनारायण का सजीव मानसिक चित्र प्रस्तुत हुआ है। 'पृथ्वीराज की आँखें' में पृथ्वीराज चौहान का सुदृढ़ चरित्र सौंदर्य उद्घाटित हुआ है। 'दस मिनट' में महादेव नामक एक साधारण व्यक्ति महादेव का अपने मित्र और उसकी बहन के लिए आत्मबलिदान वर्णित है। इसमें वर्तमान में घटित घटनाएँ गतिशील प्रतीत होती हैं कुतूहल और जिज्ञासा का भाव भी सतत बना रहता है।

सारांशतः '**पृथ्वीराज की आँखें**' संग्रह के सभी एकांकी एक ही दृश्य वाले हैं। संकलन–त्रय का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। फलतः उसमें प्रभावात्मकता आ गई है। घटनाओं की अपेक्षा भावावेग अधिक है। पात्र अंतर्द्वंद्व और मनोवैज्ञानिक उलझनों से आपूरित हैं। परिवर्तनशील पात्रों की भी अवतारणा लेखक ने की है। कथोपकथन सुगठित न होते हुए भी प्रभावपूर्ण है। उनमें काव्यमयता देखी जा सकती है। भाषा परिस्थिति और पात्रानुकूल बदलती चलती है। अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है। रंग–संकेत भी विस्तार से मिलते हैं। 'बादल की मृत्यु' को छोड़कर सभी नाटक अभिनेय हैं। वह लिखते भी हैं कि ''मैंने इन नाटकों में आंतरिक संघर्ष की प्रधानता रखने की चेष्टा की है। 'चम्पक' में किशोर का अंतर्द्वंद्व, 'नहीं का रहस्य' में प्रो. हरिनारायण का मानसिक चित्र, 'पृथ्वीराज की आँखें' में पृथ्वीराज चौहान का सुदृढ़ चरित्र सौंदर्य, 'बादल की मृत्यु' में बादल का मनोवेग आदि आंतरिक संघर्ष के चित्र हैं। बाह्य संघर्ष का विनोद मुझे विशेष रुचिकर नहीं। अतएव जो व्यक्ति रंगमंच पर तमाशा देखना चाहते हैं, उन्हें संभवतः मेरे नाटकों से निराश हो। यदि हमारे रंगमंच पर जीवन अवतरित होना चाहता है, तो मैं नम्रतापूर्वक अपने नाटकों को उपस्थित करने का साहस करता हूँ।''

'रेशमी टाई' नामक एकांकी संग्रह का प्रकाशन सन् 1941 में हुआ। इस संग्रह में सन् 1937 और 1940 के बीच लिखित पाँच एकांकी संकलित हैं। 'परीक्षा' का कथानक

बीस वर्षीय शिक्षितानारी रत्ना, पचास वर्षीय वृद्ध विद्वान प्रोफेसर केदारनाथ और प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. रुद्र से संबंधित है। रत्ना ने वृद्ध प्रोफेसर केदार से स्वेच्छापूर्वक विवाह किया है। डॉ. रुद्र और प्रोफेसर केदार रत्ना के प्रेम की परीक्षा की योजना बनाते हैं। इस योजना से दर्शक या पाठक अपरिचित रहता है। फलतः कुतूहल का भाव अंत तक बना रहता है। इस घटना की प्रतिक्रिया रत्ना पर अध्ययन की जाती है। अन्ततः रहस्योद्‌घाटन द्वारा एक चमत्कार के साथ एकांकी की परिसमाप्ति होती है। यह एकांकी उद्‌देश्य की संप्राप्ति में सफल है। पात्रों के चरित्र–चित्रण की अपेक्षा नाटकीय चमत्कार पर विशेष ध्यान दिया गया है। तथापि नाटक की प्रभाव–क्षमता अप्रतिम है।

'रूप की बीमारी' की कहानी सेठ सोमेश्वर चंद्र के पुत्र रूपचंद्र से संबंधित है। रूपचंद्र को रूप की बीमारी है। वे एक लड़की कुसुम पर अनुरक्त हैं और बीमारी के बहाने बिस्तर पर पड़े रहते हैं। डॉ. चिकित्सा करते हैं। बीमारी ठीक न होने पर वे आपरेशन का निर्णय करते हैं। रूपचंद्र भयभीत होकर सच्चाई प्रकट कर देता है। इस एकांकी का उद्‌देश्य मात्र मनोरंजन है। यही कारण है कि रोचकता अंत तक बनी रहती है। कथोपकथन बड़ा ही रोचक और प्रभावपूर्ण है।

'18 जुलाई की शाम' में उषा के चरित्र परिवर्तन की कहानी वर्णित है। फैशन परस्त उषा का विवाह निर्धन किंतु उदार और सहृदय प्रमोद से होता है। उषा के लिए प्रमोद मनोरंजन और आराम के साधन नहीं जुटा पाता है। फलतः वह अपने मित्र अशोक के साथ देहरादून जाने का कार्यक्रम बनाती है। राजेश्वरी, उषा को प्रमोद की महानता की कहानी सुनाती है। उषा का हृदय परिवर्तन होता है। वह अपने निर्धन पति प्रमोद के साथ हर स्थिति में रहने के लिए तैयार हो जाती है। कथानक कुतूहलपूर्ण है। उसमें आकर्षण और गति है। कृत्रिम नाटकीय चमत्कार का इसमें लेश भी नहीं है। कहा जा सकता है कि यह एकांकी आद्यंत प्रभावशाली है।

'एक तोले अफीम की कीमत' एकांकी के कथानक का संगठन सामाजिक समस्या को लेकर हुआ है। इस एकांकी में मनोरंजन को प्रधानता मिली है। नए विचारों का युवक मुरारी मोहन और सेकेण्ड इयर की छात्रा विश्वमोहिनी आत्महत्या करना चाहते हैं। दोनों की आत्महत्या की स्थितियाँ समानान्तर हैं। मुरारी मोहन अनपढ़ लड़की से विवाह नहीं करना चाहता है और विश्वमोहिनी अपने पिता को दहेज के खर्च से बचाने के लिए आत्महत्या करना चाहती है। दोनों की आत्महत्या का संबंध एक तोले अफीम से है। अंततः दोनों आत्महत्या का निर्णय त्याग देते हैं। कथोपकथन और पात्रों के मनोविश्लेषण से कथानक सरल गति से आद्यंत विकसित रहता है। कुतूहल का भाव भी अंत तक बना रहता है। 'रेशमी टाई' चरित्र प्रधान एकांकी है। इसका कथानक भी चरित्र परिवर्तन से संबंधित है। नवीनचंद्र के शिक्षित होते हुए भी उसमें चोर की प्रवृत्ति समाहित हो गई है। टाई बाँधते समय दुकानदार दो टाई बाँध देता है किंतु पैसा एक का ही लेता है। पत्नी लीला के कहने पर भी वह पैसा वापस करने नहीं जाते हैं। स्वयंसेविका खादी बेचने जाती है, उसका एक थान गायब कर देते हैं। लीला उसका पैसा चुका देती है। नवीनचंद्र इस घटना से बहुत प्रभावित होते हैं और वह टाई भी वापस कर देते हैं। इस प्रकार उनकी असद् प्रवृत्तियाँ सद्प्रवृत्तियों के स्पर्श से भाग खड़ी होती हैं और उनका चरित्र परिवर्तित हो जाता है। वह एकांकी अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। 'रेशमी टाई' एकांकी संग्रह का शिल्पपक्ष अधिक विकसित है। कथानक में कुतूहल का भाव आद्यंत बना रहता है। कथोपकथन और भाषा शैली में अधिक प्रौढ़ता और प्रवाह आया है। रंगमंच और अभिनेयत्व की दृष्टि से भी ये एकांकी सफल है।

'चारुमित्रा' डॉ. रामकुमार वर्मा का प्रसिद्ध ऐतिहासिक एकांकी है। इसका कथानक सम्राट अशोक के जीवन से संबंधित है। कलिंग कन्या चारुमित्रा की स्वामिभक्ति और आत्म–बलिदान की प्रेरणा से अशोक का हृदय परिवर्तन होता है। अशोक कलिंग पर

आक्रमण करता है। तिष्यरक्षिता, कला प्रेमी और युद्ध विरोधी है जबकि अशोक युद्ध के पीछे पागल है। इस प्रकार दो विरोधी चरित्रों का उद्घाटन इस एकांकी में किया गया है। तिष्यरक्षिता को युद्ध से अरुचि तो है किंतु वह अपने पति अशोक की पराजय भी नहीं चाहती है। फलतः उसके चरित्र में अंतर्द्वंद्व अभिव्यंजित है। चारुमित्रा तिष्यरक्षिता के आदेश से नाचती है। कलिंग कन्या चारुमित्रा को नाचते देखकर वह उसे दंड देने की व्यवस्था करते हैं। तभी एक स्त्री गोद में मृत बच्चा लिए प्रवेश करती है। बच्चे को अशोक के सैनिकों ने मार डाला है। वह स्त्री अशोक के न्याय पर विश्वास न कर आत्महत्या कर लेती है। कलिंग के सैनिकों से अशोक की रक्षा करने के लिए अपना जीवन त्याग देती है। चारुमित्रा के बलिदान से अशोक का पत्थर हृदय पसीज उठता है। अशोक बौद्ध धर्म की शिक्षा लेते हैं। कथानक का विकास–क्रम सफल है। नाट्यकला की दृष्टि से यह एकांकी पूर्णरूपेण प्रभावशाली एवं सफल है।

'उत्सर्ग' का कथानक डॉ. शेखर के अप्रतिम वैज्ञानिक आविष्कार की पृष्ठभूमि पर आधारित है। डॉ. शेखर इस आविष्कार द्वारा मृत व्यक्तियों को सदेह सामने बुलाकर बात कर लेते हैं। डॉ. शेखर का अपनी प्रेयसी छाया से परिस्थितिवश विवाह नहीं होता है और वह मर जाती है। वह छाया को सदेह सामने बुलाता है। छाया उससे इस आविष्कार को नष्ट करने का निवेदन करती है। शेखर अपना आविष्कार नष्ट कर देता है। आविष्कार को नष्ट करने के मूल में शेखर के अपने मिल की विधवा पत्नी और उसकी पुत्री की सेवा–भावना भी है। इस कृति में डॉ. शेखर का चरित्र अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। कथानक–संगठन कुतूहलपूर्ण और आकर्षक है। संकलन–त्रय का निर्वाह भी सफलतापूर्वक हुआ है।

'रजनी की रात' समस्या प्रधान सामाजिक एकांकी है। इसमें स्त्री पुरुष संबंधों के परिप्रेक्ष्य में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की संभावना पर दृष्टिपात किया गया है। कथानक–संगठन एक निश्चित लक्ष्य को लेकर हुआ है। फलतः उसमें स्वाभाविक विकास हुआ है। रजनी का चरित्र मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत है। नारी के स्वतंत्र अस्तित्व पर उसे अविचल आस्था है। रजनी अकेली कश्मीर जाती है, वहाँ उसका संपर्क एक नवयुवक आनंद से होता है। आनंद से वह मन–ही–मन प्रेम करने लगती है, किंतु उसकी अभिव्यक्ति शब्दों में कभी नहीं करती है। आनंद के प्रति उसका आकर्षण–भाव उसके क्रिया–कलापों और मनोभावों से अभिव्यंजित हो जाता है। इस एकांकी में रजनी के मनःसंघर्ष का प्रभावपूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

'अंधकार' का कथानक पौराणिक कथा पर आधारित है। इसमें पाप–पुण्य और प्रेम वासना का चित्रण है और यह सिद्ध किया गया है कि वासना के अभाव में प्रेम असंभव है। डॉ. सत्येंद्र के शब्दों में–''एक आश्चर्य का, अद्भुत का भाव नाटक की भूमिका में निरंतर है और उसके अवाक् उत्फुल्ल पट पर प्रेम की रंगीनी और उसके अनुशासन का अवसाद, बुद्धि और मस्तिष्क की पराजय की खिन्नता, ये सब चित्र–विचित्र दिव्य पात्रों की अभिनेय भंगिमा में अत्यधिक खिल उठे हैं। नाटककार ने उस समस्त गंभीर गतिमय, वातावरण में संवादी स्वर की भाँति अश्विनी कुमारों की वार्ता गूँथ दी है, जिससे विषय की गंभीरता विचलित नहीं होती, स्मित हास्य से होठ अवश्य फड़क उठते हैं।''

'कौमुदी महोत्सव' में चंद्रगुप्त और चाणक्य से संबद्ध कौमुदी महोत्सव का प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रसंग नाटकीय रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसके अतिरिक्त समुद्रगुप्त, पराक्रमांक, वासवदत्ता, उदयन, वाजिद अली शाह, प्रतिशोध, दीपदान, भाग्य नक्षत्र, कृपाण की धार, रात का रहस्य, मर्यादा की वेदी पर, तैमूर की हार, दुर्गावती, औरंगजेब की आखिरी रात', कलंक रेखा, राजरानी सीता, प्रभृति प्रसिद्ध ऐतिहासिक–पौराणिक एकांकी लिखकर अपने हिंदी एकांकी साहित्य की अभिनव अभिवृद्धि की है। नाट्यकला की दृष्टि से ये एकांकी सफल हैं।

समग्रतः डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। इससे आधुनिक एकांकी की शिल्पविद्यि एवं उसके विकास में अतिशय बल मिला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी एकांकी की शिल्पविधि के विकास में डॉ. रामकुमार वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका साहित्य आज भी प्रासंगिक है और कल भी प्रासंगिक रहेगा।

16.3.3 अन्य साहित्य

कवि, नाटककार और आलोचक के रूप में डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने साहित्य–सृजन के लिए नए आयाम खोजे। कविता में वे साधक की भूमिका में आए। अपने जीवनानुभवों से नाटकों की विषय वस्तु तैयार की। चिंतन–मनन की तटस्थ अभिव्यक्ति ने उनके आलोचकीय व्यक्तित्व की मुद्राएँ तय कीं। इन सभी रूपों में उन्होंने हिंदी साहित्य की जो कृतियाँ सौंपी वे अन्यतम हैं।

16.4 रामकुमार वर्मा की रचना दृष्टि

हिंदी की लघु नाट्य परंपरा को नया मोड़ देनेवाले डॉ. रामकुमार वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य में 'एकांकी सम्राट' के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने हिंदी नाटक को एक नया संरचनात्मक आदर्श सौंपा। नाट्य कला के विकास की संभावनाओं के नए पाट खोलते हुए नाट्य साहित्य को जन–जीवन के निकट पहुँचा दिया। नाटककार और कवि के साथ–साथ उन्होंने समीक्षक, अध्यापक तथा हिंदी साहित्येतिहास–लेखक के रूप में भी हिंदी साहित्य–सृजन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी प्रारंभिक शिक्षा मध्यप्रदेश के विभिन्न स्थानों में हुई। विभिन्न स्थानों पर घूमते हुए उनकी अनुभव संपदा बढ़ती रही। शैक्षिक जीवन में ही उनके भीतर साहित्यिक और रंगमंचीय अभिरुचि पैदा हो गयी थी। साथ ही तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय सरोकारों ने भी उनके व्यक्तित्व को गढ़ने में सहयोग दिया। भारतीय आत्मा और पाश्चात्य टेकनीक के समन्वय से उन्होंने हिंदी एकांकी कला को निखार दिया। उन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक दो तरह के एकांकी नाटकों की सृष्टि की। ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों से नाटकों की विषय–वस्तु को ग्रहण कर चरित्रों की ऐसी सुदृढ़ रूपरेखा प्रस्तुत की जो पाठकों में उच्च चारित्रिक संस्कार भर सके और सामयिक जीवन की समस्याओं को समाधान की दिशा दे सके। उनके नाटक भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय उद्‌बोध के स्वर बखूबी समेटे हुए हैं। गर्व के साथ वे कहते हैं, 'ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय संस्कृति का मेरुदंड–नैतिक मूल्यों में आस्था और विश्वास का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।' उनके सामाजिक नाटक व एकांकी प्रेम और सेक्स की समस्याओं से संबंधित हैं। ये नाटक और एकांकी मानसिक अंतर्द्वन्द्व की आधारभूमि पर यथार्थवादी कलेवर में समाज और जीवन की वस्तुस्थिति तक पहुँचते हैं। पर इन कृतियों में लेखक की आदर्शवादी सोच इतनी गहरी है कि वे आदर्शवादी झोंक में यथार्थ को मनमाना नाटकीय मोड़ दे बैठते हैं।

'कला और कृपाण' नाटक में हिंसा पर अहिंसा की विजय सूचित की गई है। नाटक ऐतिहासिक होने पर भी वर्तमान का संदेशवाहक है। इसमें दर्शक के मन पर यह विश्वास स्थायी हो जाता है कि एक न एक दिन पाशविक प्रवृत्तियों पर करुणा, दया, समता आदि मानवीय वृत्तियाँ अवश्य सफल होंगी। यह नाटक एक विशिष्ट आदर्श की स्थापना करता है और प्रसाद की परंपरा का निर्वाह भी करता है।

16.5 रामकुमार वर्मा के साहित्य की विशेषताएँ

डॉ. वर्मा के साहित्यिक व्यक्तित्व को नाटककार और कवि के रूप में अधिक प्रमुखता मिली। कवि, नाटककार और आलोचक के रूप में डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने साहित्य

सृजन के लिए नए आयाम खोजे। कविता में वे साधक की भूमिका में आए। अपने जीवनानुभवों से नाटकों की विषय वस्तु तैयार की। चिंतन–मनन की तटस्थ अभिव्यक्ति ने उनके आलोचकीय व्यक्तित्व की मुद्राएँ तय कीं। नवीन खोजों के आधार पर तर्क की जटिल समस्याओं से सुलझकर जो सत्य आलोचना के माध्यम से उनकी रचनाओं में कलमबद्ध हुआ वह भी अपने आपमें महत्वपूर्ण है।

भाषा की दृष्टि से डॉ. वर्मा एक **कुशल और सजग शब्द शिल्पी** हैं। नाटकों में चित्रधर्मिता के समावेश ने भाषा में गहन प्रभावान्विति पैदा की तो काव्यात्मक स्तर पर उनकी भाषा ने अधिक कल्पनाशील, रमणीय और देशकाल की सीमाओं से परे काव्यानुभव को रचा, लेकिन भाषा की अतिरिक्त साज–सँवार के मोह में गढ़े गए दीर्घ संवादों ने प्रायः उनके नाटकों के स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध भी किया। डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपनी विचारधारा और दर्शन की अनुभूति से समग्र युग, जीवन और दर्शन को एकसूत्र में पिरोने की कोशिश की। एकांकी साहित्य के विकास और वृद्धि में उन्होंने जो योगदान दिया इसके लिए वे हमेशा याद किए जाएँगे।

हिंदी में पहले ऐसे नाटककार कम हुए हैं जो एक ओर सर्जनात्मक साहित्यकार हैं और दूसरी ओर समीक्षक भी। **नाटकों का सृजन और नाटक के सिद्धान्त पक्ष की समीक्षा**–दोनों ही क्षेत्र में डॉ. वर्मा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। नाटक और उसकी अन्य विधाओं पर डॉ. वर्मा ने अत्यंत मौलिकता से मनन किया है और इस दृष्टि से उनके नाटकों और एकांकी संकलन की भूमिकाओं का अपना महत्व है। हिंदी में इतनी गंभीरता से, इतनी मौलिकता से नाटकों के सृजन से लेकर उसकी प्रस्तुति तक की यात्रा का विशिष्ट विश्लेषण अन्य नाटककार नहीं कर सका है। 'रेशमी टाई' के उपरांत डॉ. वर्मा के कृतित्व में एक विशेष धारा ऐतिहासिक एकांकियों की विकसित हुई, जिसमें वे एक ऐसे आदर्शवादी कलाकार के रूप में हिंदी नाट्य जगत के सामने आए, जिनमें अनेक सांस्कृतिक और साहित्यिक मान्यताओं का सुंदरतम समन्वय स्थापित हुआ है। वे कलुष के भीतर से पवित्रता, दैन्य के भीतर से शालीनता, वासना के भीतर से आत्मसंयम एवं क्षुद्रता से महानता का अन्वेषण करने में सफल हुए हैं। यह उन्होंने पात्रों और परिस्थितियों के संघर्ष में स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया है। डॉ. वर्मा ने सामाजिक एकांकियों की अपेक्षा ऐतिहासिक एकांकियों का सृजन अधिक किया है। इसे वे स्वयं स्वीकारते हैं–

''यदि आप मेरे नाटकों पर दृष्टि डालें तो आपको ज्ञात होगा कि मैंने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक तो राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है, जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों का विशेष हाथ रहा है। हमारे ऐतिहासिक तथ्य निरूपण से हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल मिलता है।'' (दीपदान : भूमिका)

डॉ. वर्मा सफल कवि हैं और उनमें कवि सुलभ भावुकता और संवेदनशीलता विद्यमान है। उनकी कविताएँ इस कथन की यथार्थता भली–भाँति सिद्ध करती हैं। प्रकृति प्रेम, विरहजन्य व्यथा, सौंदर्य के प्रति आकर्षण की मधुर अभिव्यक्ति वर्मा जी के मुक्तकों में हुई है। यही **संवेदनशीलता** कम या अधिक मात्रा में उनकी एकांकियों में भी मिलती है। उनके यथार्थ निरूपण में भी रोमांस का पुट रहता है।

'दीपदान' एकांकी की भूमिका में वे लिखते हैं–''यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नाटक साहित्य का सगुण रूप है। जिस प्रकार निराकार ब्रह्म अपने वैभव का अभिज्ञान अवतार के माध्यम से भक्त को कराता है इसी प्रकार साहित्य का सौंदर्य रंगमंच पर अवतरित होकर नाटक के रूप में प्रकट होता है।'' इसी प्रकार डॉ. वर्मा अपने नाटक ''कला और कृपाण' की भूमिका में लिखते हैं–''रंगमंच का महत्व नाटक के प्रस्तुत करने

में बहुत अधिक है। रंगमंच के बिना नाटक में प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।'' उनका मानना है कि इस महान देश की गौरव गाथाएँ क्रांतिकारिणी हैं और उनका स्मरण कर मन में उत्साह की तरंगें आंदोलित होने लगती हैं। 'इतिहास के स्वर' में वे लिखते हैं–''जीवन के मनोविज्ञान पर दृष्टि डालने का अवकाश इतिहासकार के पास कहाँ है? उसके पास तो घटनाओं को 'रेडिमेड' बनाने का यंत्र है। परिस्थितियों के साँचे में घटनाएँ डालीं और उनसे गुड्डे की तरह कटा–छटा व्यक्ति निकल आया।''

डॉ. रामकुमार वर्मा की मान्यता रही है कि ऐतिहासिक नाटकों की भाषा का प्रभाव दर्शकों पर सबसे अधिक पड़ता है– ''यह सत्य है कि मौर्य या गुप्त काल की भाषा हिंदी नहीं थी, किंतु यदि हमें हिंदी में नाटक की रचना करनी है तो हमें उस समय की भाषा का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए संस्कृत–निष्ठ भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग हम उदयन या अशोक के मुख से नहीं करा सकते। उसी प्रकार औरंगजेब का व्यक्तित्व विदेशी भाषा की शैली में ही अधिक उभर सकता है।''

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी के लिए आदर्शोन्मुख स्वच्छंदतावादी नाट्य–परंपरा दी थी। डॉ. रामकुमार वर्मा भी न्यूनाधिक रूप में उनके आदर्शों से प्रेरित हैं। प्रसाद शैली का शैलीकृत रूप वर्मा जी के नाटकों में मिलता है। रामकुमार वर्मा वस्तुतः ऐतिहासिक नाटककार हैं। अपने समय की प्रबल आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम वे नाटक को बताते हैं। स्वाधीनता के बाद रचित उनके ऐतिहासिक नाटक प्राचीन भारतीय विचार या चरित्र को प्रस्तुत करते हैं। डॉ. वर्मा, जीवन की निराशा, अंतर्द्वंद्व, अलगाव एवं भटकाव के स्थान पर आशावादी सत्य का स्वर तलाशते हैं।

बोध प्रश्न

5. रामकुमार वर्मा ने कौन से ऐतिहासिक एकांकीयों की रचना की है?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

6. 'उत्सर्ग' एकांकी किस प्रकार की है, उसके मूल भाव को पाँच पंक्तियों में लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

7. निम्नलिखित वाक्यों पर सही या गलत का उचित निशान लगाइएः

   1. भाषा की दृष्टि से डॉ. वर्मा एक कुशल और सजग शब्द शिल्पी हैं।
   2. रामकुमार वर्मा ने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटक कम लिखे हैं।
   3. मौर्य या गुप्त काल की भाषा हिंदी नहीं थी।

8. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः
   1. हिंदी में पहले ऐसे ....कम हुए हैं जो एक ओर सर्जनात्मक साहित्यकार हैं और दूसरी ओर समीक्षक भी।
   2. डॉ. वर्मा सफल कवि हैं और उनमें कवि सुलभ भावुकता और .... विद्यमान है।
   3. जीवन के मनोविज्ञान पर दृष्टि डालने का......... इतिहासकार के पास कहाँ है? उसके पास तो घटनाओं को ....बनाने का यंत्र है।

16.6 सारांश

प्रसाद ने हिंदी के लिए काव्य गरिमायुक्त आदर्शोन्मुख स्वच्छन्दतावादी नाट्य परंपरा दी थी। डॉ. रामकुमार वर्मा भी न्यूनाधिक रूप में इन्हीं आदर्शों से प्रेरित हैं। प्रसाद शैली का सरलीकृत रूप ही उनके नाटकों में मिलता है। डॉ. वर्मा वस्तुतः ऐतिहासिक नाटककार हैं। डॉ. वर्मा के नाटक एक ओर ऐतिहासिक संवेदना को प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर रंगमंच के शिल्प का भी उपयोग उनमें है। ऐतिहासिक नाटक रंगमंच पर भी खरा उतरे, यह एक विशेष महत्ता डॉ. वर्मा के नाटकों की है। भाषा की दृष्टि से डॉ. वर्मा एक कुशल और सजग शब्द शिल्पी हैं। नाटकों में चित्रधर्मिता के समावेश ने भाषा में गहन प्रभावान्विति पैदा की तो काव्यात्मक स्तर पर उनकी भाषा ने अधिक कल्पनाशील, रमणीय और देशकाल की सीमाओं से परे काव्यानुभव को रचा, लेकिन भाषा की अतिरिक्त साज–सँवार के मोह में गढ़े गए दीर्घ संवादों ने प्रायः उनके नाटकों के स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध भी किया। डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपनी विचारधारा और दर्शन की अनुभूति से समग्र युग, जीवन और दर्शन को एकसूत्र में पिरोने की कोशिश की। एकांकी साहित्य के विकास और वृद्धि में उन्होंने जो योगदान दिया इसके लिए वे हमेशा याद किए जाएँगे।

16.7 उपयोगी पुस्तकें

1. नाट्य–समीक्षा–डॉ. दशरथ ओझा
2. आधुनिक हिंदी नाटक–डॉ. नगेंद्र
3. हिंदी नाटक : उद्‌भव और विकास : डॉ. दशरथ ओझा
4. हिंदी साहित्य कोष– दोनों भाग : संपादक डॉ. धीरेंद्र वर्मा
5. हिंदी नाटक सिद्धांत और विवेचन : डॉ. गिरीश रस्तोगी

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आधुनिक हिंदी साहित्य में वर्मा जी का उल्लेखनीय स्थान है और उनका रचनाकाल छायावाद युग के अंतिम चरण अर्थात् 1976 से प्रारंभ होता है। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'वीर हम्मीर', 'चित्तौड़ की चिता' और 'अभिशाप' वर्णनात्मक व इतिवृत्तात्मक है, पर बाद की रचनाओं जैसे 'अंजलि', 'रूपराशि' और 'निशीथ' में भाव व कल्पना का वैभव एक साथ दृष्टिगोचर होता है।
2. उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं किंतु प्रमुखता इतिहास और समाज को ही मिली उनमें कहीं सत्यों की अभिव्यक्ति है तो कहीं सामाजिक असंगति पर व्यंग्य किया गया है और कहीं जीवन की हल्की–फुल्की स्थितियों के मनोरंजक चित्र उपस्थित किए गए हैं।

3. 1. गलत
   2. सही
   3. गलत
4. 1. जन्मदाता
   2. कविता और नाटक
   3. नाटककार
5. ऐतिहासिक एकांकी–'कौमुदी महोत्सव, 'चारुमित्रा' 'औरंगजेब की आखिरी रात, कृष्ण का बलिदान, अशोक, चंद्रगुप्त, दुर्गावती, सम्राट विक्रमादित्य इत्यादि। वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों का महत्व अक्षुण्ण है।. ऐतिहासिक एकांकी लेखन की प्रेरणा का मूल स्रोत वर्मा जी के शब्दों में इस प्रकार है–''मैंने ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक तो राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों का विशेष हाथ रहा है। दूसरे ऐतिहासिक जीवन के निरूपण से हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल प्राप्त होता हैं।
6. **'उत्सर्ग'** का कथानक डॉ. शेखर के अप्रतिम वैज्ञानिक आविष्कार की पृष्ठभूमि पर आधारित है। डॉ. शेखर इस आविष्कार द्वारा मृत व्यक्तियों को सदेह सामने बुलाकर बात कर लेते हैं। डॉ. शेखर का अपनी प्रेयसी छाया से परिस्थितिवश विवाह नहीं होता है और वह मर जाती है। वह छाया को सदेह सामने बुलाता है। छाया उससे इस आविष्कार को नष्ट करने का निवेदन करती है। शेखर अपना आविष्कार नष्ट कर देता है। आविष्कार को नष्ट करने के मूल में शेखर के अपने मिल की विधवा पत्नी और उसकी पुत्री की सेवा–भावना भी है।
7. 1. सही,
   2. गलत
   3. सही
8. 1. नाटककार,
   2. संवेदनशीलता,
   3. अवकाश, रेडिमेड

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 17: 'दीपदान' का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 कथावस्तु

17.3 चरित्र

17.3.1 मुख्य पात्र

17.3.2 गौण पात्र

17.4 परिवेश

17.5 संरचना शिल्प

17.5.1 भाषा

17.5.2 शैली

17.5.3 संवाद

17.6 रंगमंचीयता

17.7 सारांश

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

यह इकाई 'दीपदान' एकांकी के विश्लेषण एवं मूल्यांकन से संबद्ध है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 'दीपदान' एकांकी के कथानक की विशेषता को समझ सकेंगे;
- एकांकी के प्रमुख चरित्रों को विश्लेषित कर सकेंगे;
- एकांकी का परिवेश समझा सकेंगे;
- एकांकी की भाषा–शैली और संवादों की विशेषता समझ सकेंगे; और
- रंगमंच की दृष्टि से एकांकी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में प्रसादोत्तर नाटक में एकांकी नाटक विधा के प्रसार का विशेष महत्व है। एकांकी की लोकप्रियता का कारण यह था कि सीमित साधन और समय में नाटक को सफलतापूर्वक मंचित किया जा सकता था। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रम में एकांकी प्रस्तुति अनिवार्य हिस्सा हुआ करता था। इससे युवा छात्रों के बीच रंगमंच का संपर्क बना रहा और रंग गतिविधि में सक्रिय रहे। ऐसे समय में 'दीपदान' एकांकी की रचना हुई थी। हिंदी का रंगमंच का आकार सुस्पष्ट और धुंधला था। पारसी थियेटर और पृथ्वी थियेटर लगभग बंद हो चुके थे, रंग संस्था का निर्माण अभी हुआ नहीं था। ऐसे में रंगमंचीय सक्रियता को एकांकी ने जीवित रखा। यह एकांकी का रंगमंच के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है। एकांकी के विकास का दूसरा कारण रेडियों से जुड़ा है। रेडियो का प्रचलन बढ़ने से उस पर अनेक कार्यक्रमों का प्रसारण होने लगा उसी क्रम में रेडियो पर नाटक प्रसारित किए जाने लगे। लंबे नाटक को उस में प्रसारित करना कठिन था। एकांकी को सुविधापूर्वक प्रसारित किया

जा सकता था। यदि रेडियो नाटक और एकांकी नाटक की तुलना करें तो उसमें अंतर अत्यंत क्षीण है। चूँकि एकांकी नाटक को रेडियो पर सुगमता प्रस्तुत किया जा सकता था। इसलिए भी एकांकी नाटक का प्रचलन बढ़ा।

हिंदी के एकांकीकार में डॉ. रामकुमार वर्मा का महत्व का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उनके जन्म दिन को एकांकी दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। उन्होंने 114 एकांकी की रचना की। दीपदान (1953) उनकी एक महत्वपूर्ण एकांकी है। 'दीपदान' एकांकी मध्यकालीन भारतीय इतिहास के एक विशेष कालखंड की घटना पर आधारित है। इसका संबंध चित्तौड़ के इतिहास से है। चित्तौड़ के इतिहास की अनेक घटनाएँ जनमानस में प्रतिष्ठित हैं। इसी क्रम में एक नाम पन्ना घाय का भी है। पन्ना ने महाराणा वंश को सुरक्षित रखने के लिए अपने पुत्र का बलिदान किया था। उसका नाम वहाँ जनश्रुति में अमिट है।

दीपदान एक यथार्थवादी शैली का एकांकी नाटक है। यह अवधारणा पश्चिमी नाटकों की देन है। हिंदी में इस शैली के नाटकों का प्रचलन चौथे दशक से माना जा सकता है। वास्तव में इस शैली के नाटकों में अन्विति को व्यापक महत्व दिया गया है। स्थान, समय और कार्य की अन्विति का संकलन उसकी संरचना का आधार है।

स्थान, समय और कार्य को एकांकी के माध्यम से समझने की जरूरत है। स्थान किसी भी प्रकार के नाटक की पहली और बुनियादी जरूरत है। चूँकि स्थान के मुताबिक नाटक की दृश्य योजना की रचना की जाती है। स्थान ऐसा निश्चित किया जाता है जिसे मंच पर दिखाया जा सके। उदाहरण के रूप में 'दीपदान' एकांकी में राजभवन का एक कक्ष रखा गया है। इस कक्ष को सहजता से दृश्य के रूप में दिखाया जा सकता है। इसी प्रकार समय रात्रि के दूसरे प्रहर का है। समय निश्चित हो जाने से प्रकाश व्यवस्था को निश्चित किया जा सकता है। क्योंकि दिन में प्रकाश और उजाला होता है। रात्रि में अंधेरा होता है। रात्रि के अंधकार में गुप्त कार्य को अंजाम देना आसान होता है। सिंहासन के लिए षड्यंत्र को प्रतिफलित करना इस एकांकी का कार्यकलाप है। ये तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी को अन्विति कहा गया है।

'दीपदान' एकांकी का कथानक ऐतिहासिक है। इतिहास में पन्ना धाय के त्याग की कहानी अंकित है। उसी घटना को आधार बनाकर एकांकीकार ने एकांकी का ताना बाना बुना है। इतिहास की घटना को एकांकी संरचना में प्रस्तुत करना चुनौतीपूर्ण होता है। एकांकी की संरचना खासकर यथार्थवादी शैली में समकालीनता का आग्रह अधिक होता होता है। इतिहास की कथावस्तु और समकालीनता को पिरोना और उसमें नाट्यानुभूति को सुरक्षित रखना इतना आसान नहीं होता है। 'दीपदान' एकांकी में एकांकीकार ने मध्यकालीन इतिहास की कथावस्तु में राष्ट्रप्रेम की भावना को सम्मिश्रित करके उसे प्रासंगिक बना दिया है।

17.2 कथावस्तु

एकांकी नाटक में कथावस्तु के आधार पौराणिक ऐतिहासिक और समकालीन जीवन से ग्रहण किए जाते रहे हैं। 'दीपदान' एकांकी की कथावस्तु मध्यकालीन चित्तौड़ के इतिहास से ली गई है। इतिहास में चित्तौड़ का स्मरण त्याग और बलिदान के लिए किया जाता रहा है। वहाँ के शासक की निष्ठा और देशभक्ति को आदर्श माना जाता रहा है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसी आदर्श को ध्यान में रखकर 'दीपदान' एकांकी के कथ्य को बुना है। इस एकांकी में जहाँ घटनाएँ इतिहास के द्वारा निर्देशित हैं वहीं पात्र के मनोभाव और वातावरण एकांकीकार की कल्पना से परिचालित हैं। इसलिए इस एकांकी में जीवन के उज्जवल पक्ष त्याग बलिदान गौरव के साथ–साथ षड्यंत्र कुचक्र, विश्वासघात और महत्वाकांक्षा से कथावृत्त मेरा पड़ा है। सामंती जीवन में सत्ता की भूख

में कोई कितना अंधा और विवेक शून्य हो सकता है। उसका जीता जागता उदाहरण इस एकांकी का पात्र बनवीर है।

कथा का आंरभ चित्तौड़ के महल के एक कक्ष में होता है। महाराणा साँगा का छोटा पुत्र कुँवर उदय सिंह अपनी धाय माँ पन्ना से बातचीत कर रहा है। सामंतशाही में शासन वंश परंपरा के अनुसार चलती थी। चित्तौड़ पर महाराणा वंश का शासन था। उन्हीं के उत्तराधिकारी को वहाँ शासन करने की वैधता प्राप्त थी। यह व्यवस्था उस स्थान की जनता के द्वारा समर्पित थी। वंश की परंपरा पर पन्ना की टिप्पणी है ''दिन में तो तुम चित्तौड़ के सूरज हो कुँवर और रात में तुम राजवंश के दीपक हो।'' चूँकि महाराणा वंश का एकमात्र चिराग कुँवर उदय सिंह जीवित है, वह अमीर बालक है, षड्यंत्रकारी उसकी हत्या करके राज हड़पने के लिए प्रयासरत है। कुचक्र रचने का अभियान कोई दूसरा नहीं अपनी वंश के एक दासी पुत्र बनवीर के द्वारा ही की जाती है। पन्ना धाय उस परिस्थिति को समझती है। वह अपनी योजना के अनुसार कार्य करती है।

राजवंश में दीपदान उत्सव का आयोजन है। उत्सव धार्मिक परंपरा के अनुसार और मनोरंजन के लिए होता है। लेकिन इस एकांकी में षड्यंत्र को सफल बनाने के लिए किया जा रहा है। दीपदान प्रकाश का उत्सव है लेकिन अँधेरी शक्तियों, रस, रंग और नृत्य का भुलावा देर कुटिल मनोभाव को प्रतिफलित करना चाहते हैं। मनोरंजन में जनता को यथार्थ से दूर रखने प्रयास चल रहा है। पन्ना धाय इस उत्सव से अलग है, उसके मन में अनहोनी घटना की आशंका है। विषम परिस्थिति आने की पूर्वसूचना उसके अन्तःकरण में गतिशील है। सोना के लाख कहने बाद भी पन्ना, कुँवर उदय सिंह को उसे मिलने नहीं देती। वह धाय माँ, संरक्षिका है इसलिए वह अपने कर्त्तव्य को भली भाँति समझती है।

कथा के विकास के क्रम में सामली जो अंतःपुर की परिचारिका है, उसका प्रवेश होता है। अंतःपुर की गतिविधि को सामली अच्छी तरह समझती है। उसकी सूचना से कथानक में गति आ जाती है। नाटक की कथावस्तु में कौतुहलता और जिज्ञासा का भाव पैदा हो जाता है। अब आगे नाटक में क्या होने वाला है– इस दिलचस्पी से दर्शक भर जाता है। सामली पन्ना को सूचित करती है कि बनवीर ने कुँवर उदयसिंह के बड़े भाई विक्रमादित्य की हत्या कर दी है। अब वह अपने मार्ग से कुँवर उदय सिंह को हटाकर चित्तौड़ का शासक बनना चाहता है। अब उदय सिंह का प्राण संकट में है। महल के चारों तरफ सैनिकों का पहरा है। सैनिक बनवीर के वफादार हैं। वास्तव में सामंती शासन में शक्तिशाली सरदार के पक्ष में ही सैनिक हो जाते थे। सैनिक सरदार ही सत्ता का संतुलन बनाते और बिगाड़ते थे। सत्ता की संरचना में विश्वासी गुट, असंतुष्ट गुट, नए और पुराने सभी का ताल मेल होता है। बनवीर असंतुष्ट गुट को अपने साथ लेता है, अपनी शक्ति बढ़ाता है और फिर सिंहासन के लिए चुनौती बन जाता है।

महल के रक्षक भी बनवीर के ही पक्ष में है। यहाँ कीरत नाम का एक पात्र का प्रवेश होता है। वह पन्ना धाय का विश्वास पात्र है। वह अपनी जान की बाजी लगाकर भी कुँवर उदय सिंह की रक्षा के लिए तत्पर होता है। इस कथानक में नाटकीयता यह है कि जिसने राज्य के संसाधनों का उपयोग किया और संपूर्ण सुख सुविधाओं का लाभ उठाया उसमें दायित्व बोध नहीं है। एक जूठी पत्तल उठाने वाला पात्र सत्य और न्याय के पक्ष में खड़ा होता है। पन्ना धाय कीरत को विश्वास में लेकर पत्तल की टोकरी में कुँवर उदय सिंह को लिटाकर महल से निकालने की योजना बनाती है। पन्ना धाय, दूसरी योजना कुँवर उदय सिंह की शैय्या पर अपने पुत्र चंदन को सुलाने की बनाती है। इस योजना के बिना कुँवर उदय सिंह को सुरक्षित नहीं किया जा सकता था। वह एक कठोर निर्णय लेती है। ह्रदय पर पत्थर रखकर अपने ही पुत्र चंदन का बलिदान देती है। वह अपने पुत्र के रक्त से महाराजा वंश को सींचती है। इस प्रसंग में माँ और बालक के वात्सल्यपूर्ण दृश्य अत्यंत मोहक हैं।

कथानक के अंत में एकांकी का खलनायक बनवीर मंच पर उपस्थित होता है। पन्ना के त्याग और बनवीर के स्वार्थ के बीच टकराहट उपस्थित होता है। पन्ना बनवीर को धिक्कारती है। उसे चित्तौड़ की वीरता और साहस का स्मरण कराती है। बनवीर सत्ता पाने की होड़ में सब कुछ भूल चुका है। वह पहले पन्ना से सौदा करना चाहता है। बात बिगड़ती देख उसे डराने की कोशिश करता है। एकांकी के अंत में वह सूचित करता है कि महाराणा विक्रमादित्य की हत्या कर चुका है और अब उदय सिंह की हत्या कर निष्कंटक राज्य भोगना उसके जीवन का लक्ष्य है। पन्ना अंत तक उसे महाराणा बनवीर नहीं हत्यारा बनवीर ही संबोधित करती है। इसी बिन्दु पर एकांकी का अंत होता है।

किसी भी एकांकी अथवा नाटक के कथानक को समझने के लिए कथाक्रम का प्रवाह और घटना की श्रृंखला के बीच के गत्यात्मक संबंध को परखना होता है। 'दीपदान' एकांकी में एक ही कथा का विकास दिखाया गया है– पन्ना धाय के द्वारा कुँवर उदय सिंह की रक्षा की जिम्मेदारी का। इसमें घटना से घटना के बीच की एकसूत्रता और संयोजन से कथा की गति में प्रवाह बना रहता है। दीपदान का उत्सव है उसमें महाराणा परिवार के सभी सदस्य शामिल होते हैं। दीपदान की इसी घटना से अन्य घटनाएँ यथा सोना का नृत्य, दीपदान के उत्सव में षड्यंत्र, सामली द्वारा बनवारी के षड्यंत्र को उद्घाटित करना, कीरत बारी के द्वारा कुँवर उदय सिंह की रक्षा की शपथ और पन्ना धाय के द्वारा स्थिति को नियंत्रित करना आदि जुड़े हुए हैं। कथानक में दूसरी बात जो ध्यान खींचती है, वह है पन्ना धाय और कीरत बारी का प्रसंग। कथानक में केवल इतिहास हो और उसका समकालीन जीवन से कुछ भी लेना देना न हो तो ऐसे एकांकी इतिहास की पुनरावृत्ति मात्र होते हैं। 'दीपदान' एकांकी में पन्ना धाय स्त्री पात्र है और कीरत बारी समाज में हाशिए पर जीने वाला सामान्य व्यक्ति है। इन दोनों के माध्यम से एकांकीकार ने कथानक को समकालीन प्रासंगिकता से जोड़ा है। स्त्री पात्र पन्ना धाय राजवंश की नहीं है। फिर भी उसमें साहस त्याग और समर्पण की कमी नहीं है। वह देवी बनने के प्रभोभन को ठुकरा देती है। वह चित्तौड़ के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन के सुख संतोष और प्रसन्नता को राष्ट्रधर्म पर समर्पित कर देती है। पन्ना का कथन है ''सुला दूँगी उसी को। उसी को सुला दूँगी जो मेरी आँखों का तारा है चंदन। चंदन को सुला दूँगी। सामली (सिसकियाँ) चंदन को सुला दूँगी। उस नन्हें से लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूँगी।' राष्ट्र धर्म को निभाने वाला यहाँ कोई अभिजातवर्गीय पात्र नहीं है। पन्ना धाय एक सामान्य सी पात्र है। एकांकीकार इस प्रसंग के माध्यम से यह स्थापित करना चाहता है कि राष्ट्र की रक्षा में भागीदारी सभी की होनी चाहिए। जहाँ यह भाव नहीं होता है, वहाँ समाज और जीवन सुरक्षित नहीं होते हैं।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 8–8 पंक्तियों में दीजिए :

(क) 'दीपदान' की कथा संक्षेप में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

(ख) 'दीपदान' के कथानक के अंत का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) .... पन्ना धाय का विश्वास पात्र है।

(ख) सामली, अंतःपुर को .... है।

(ग) 'दीपदान' एकांकी की कथावस्तु .... के इतिहास से ली गई है।

17.3 चरित्र

किसी भी एकांकी का ढाँचा कथानक, चरित्र और घटना की एक सूत्रता से निर्मित होता है। ये तीनों तत्व अलग–अलग नहीं होकर एकांकी के विन्यास में समाहित होते हैं। कथावस्तु से यह स्पष्ट ही है कि सारे पात्र ऐतिहासिक हैं। इसलिए कुछ पात्र तो इतिहास के द्वारा निश्चित कर दिए गए हैं। परंतु कुछ को एकांकीकार ने अपनी दृष्टि की नवीनता से रचा है। ऐतिहासिक एकांकी में कल्पना और इतिहास का तनावपूर्ण समीकरण उभरता है। कथा और घटना इतिहास पर आधारित होने के कारण मुख्य पात्र का चारित्रिक गठन सुनिश्चित होता है। एकांकीकार उसके मनोविज्ञान, भाव और द्वंद्व से उसमें नवीनता देता है। जिससे एकांकी का प्रभाव संक्षिप्त सघन और तीव्र हो पाता है। वर्मा जी की विशेषता रही है कि कथ्य के अनुरूप चरित्र की रूपरेखा को सजाते सँवारते हैं। अनावश्यक विस्तार, प्रस्तुति में नाटय प्रभाव को खंडित कर सकता है।

17.3.1 मुख्य पात्र

1. <u>पन्ना धाय</u>

दीपदान एकांकी के पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण किया जाए तो उस एकांकी की मुख्य पात्र पन्ना धाय है। पन्ना धाय के त्याग और बलिदान की कहानी जनमानस में रची–बसी है। ऐसे पात्र जिसका एक रूप स्थानीय जन में बसा होता है, उसे मंच पर साकार करना एकांकीकार के लिए चुनौती होता है। इतिहास में पन्ना धाय की छवि अतीत का हिस्सा है। एकांकी को समकालीन प्रेक्षक के सामने प्रस्तुत करना होता है। इसलिए पन्ना के चरित्र के मनोविज्ञान को नये रूप में प्रस्तुत करके वर्मा जी ने इतिहास को समकालीन वास्तविकता में मूर्त कर दिया है। पन्ना के चरित्र की कुछ विशेषताओं को समझने की जरूरत है। यदि पन्ना के चारित्रिक बुनावट पर नजर डालते हैं तो सबसे पहले उसके जीवन के बाह्य और आंतरिक संघर्ष को समझना अनिवार्य होगा।

परिस्थिति के साथ संघर्ष

सबसे पहले पन्ना धाय के जीवन के बाह्य पक्ष को देखा जा सकता है। पन्ना धाय को राज परिवार में चल रही उठा पटक की गहन जानकारी है। असमय दीपदान उत्सव

मनाया जा रहा है तो उसके पीछे के कारण को वह समझती है। उसका विश्लेषण करती है। अपने विवेक के अनुसार निर्णय लेती है। पन्ना कहती है ''आज कुछ समय नाच रंग की बात सुनकर मेरे मन में शंका हुई थी। इसलिए मैंने कुँवर को वहाँ जाने से रोक दिया था। पन्ना की यह सोच उसके चरित्र को आधुनिक बोध देता है। वह कार्य के पीछे के कारण के प्रति सजग है। यह जागरूकता उसके चरित्र को इतिहास से निकालकर बिल्कुल आधुनिक बना देता है। पन्ना का तर्क बोध प्रबल है। वह तर्क के आधार पर परिस्थिति का मूल्यांकन करती है और निष्कर्ष पर पहुँचती है। कुँवर उदय सिंह नाच देखने के लिए जाना चाहते हैं तो वह स्पष्ट रूप से मना कर देती है। सांकेतिक भाषा में उदय सिंह से कह देती है, ''नहीं कुँअर। तुम कभी रात में अकेले नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी भी समय भी तुम्हें डस सकते हैं।'' पात्र को पहचान कर उसके अनुसार व्यवहार और विचार पन्ना के बाह्य परिस्थिति की समझ को पुष्ट करता है। सोना के साथ उसके एक संवाद में यह अनुभव किया जा सकता है। पन्ना कहती है, ''आँधी में आग की लपट तेज होती है। सोना तुम भी उसी आँधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नुपूर बिखिर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे गीतों की लहर को निगल जाएगा। चित्तौड़ राग रंग की भूमि नहीं है जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपट नाचती है, सोना जैसी रावल लड़कियों नहीं।''

दूरदर्शिता

दूरदर्शिता से कोई भी पात्र आगे की परिस्थिति का मूल्यांकन कर पाता है। पन्ना में घटना के आगे बनने वाली परिस्थिति के अनुसार योजना बनाने की क्षमता है। इस एकांकी में नाच, राग और रंग के भीतर चलने वाले षड्यंत्र को वह परख लेती है। इसी तरह वह समझ जाती है कि बनवीर, उदय सिंह को खोजने के लिए महल जरूर आएगा। पन्ना यह भी समझती है कि कुँवर जी की शैय्या तक भी जरूर जायेगा। वह सामली से कहती है ''कुँअर जी की शैय्या पर किसी और को सुला दूँगी। वह क्रोध में अंधा रहेगा ही पहचान भी नहीं सकेगा कि यह कौन सोया है ?'' जब महल को बनवीर के सैनिक घेर लेते हैं, उदय सिंह के प्राण संकट में है। कोई सहायता करने वाला नहीं है, ऐसे कठिन क्षण में पन्ना अपनी बुद्धि से रास्ता ढूँढ़ लेती है। कीरत से कहती है वह ''कुँअर जी को टोकरी में लिटाकर उन पर गीली पत्तलें डालकर महल के बाहर निकल जाए।'' इस तरह से वह अपनी दूरदर्शिता के कारण बनवीर के षड्यंत्र को विफल कर देती है लेकिन इसके लिए अपने पुत्र चंदन का बलिदान देकर भारी कीमत भी चुकाती है।

कर्तव्य पालन

पन्ना धाय के चरित्र में एक खास प्रकार का अनुशासन है। वह अपने कर्तव्य को समझती है। वह धाय माँ है। धाय माँ की भूमिका संरक्षिका की हुआ करती थी। उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है– महाराणा वंश के चिराग उदय सिंह को सुरक्षित रखना। एकांकी के आरंभ से अंत तक के प्रसंग में उसकी उस भूमिका अनुभूत किया जा सकता है। पन्ना कहती है ''चले गए, कुँअर का रूठना भी मुझे अच्छा लगता है। मना लूँगी। नाच गान दीपदान उसी से चित्तौड़ की रक्षा होगी ? चित्तौड़ में यह बहुत हो चुका। बहुत हो चुका और अब तो बनवीर का राज्य है।'' अपने कर्तव्य का पालन करते हुए राजवंश के लिए सेवा और समर्पण ही में उसकी निष्ठा है। सोना से स्पष्ट कहती है ''सोना मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूँ अच्छी हूँ। राज सेवा में जीवन जा रहा है– यही मेरे भाग्य की बात है।'' उसे कर्तव्य मार्ग से विचलित करने के लिए तमाम तरह के प्रलोभन दिए गए। वह एक–एक को ठुकरा देती है। बनवीर पन्ना से कहता है, ''ठीक है धाय माँ तो मंगल कामनाओं की देवी है। वे दीपदान करे चित्तौड़ का कल्याण करेगी। मैं भी तो चित्तौड़ का कल्याण करूँगा। एक बात और कहूँ पन्ना। मैं तुम्हें मारवाड़ में

एक जागीर देना चाहता हूँ। यहाँ तुम्हारे पूजा के लिए तुलजा भवानी का मंदिर बनेगा। मंदिर। सारे लोग तुम्हें उतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी और तुममें कोई अंतर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मंदिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।'' बनवीर चित्तौड़ के सिंहासन से उसे देवी–बनाने का निमंत्रण देता है। लेकिन पन्ना को देवी बनना भी स्वीकार्य नहीं। वह कुँवर उदय सिंह के प्रति निष्ठावान है। यही निष्ठा उसके चरित्र को विराट और उच्च बनाता है।

परंपरा के प्रति विश्वास

पन्ना धाय में अपने देश राष्ट्र की परंपरा के प्रति गहरा विश्वास है। चित्तौड़ के इतिहास को वह बार–बार स्मरण ही नहीं करती है, दूसरे पात्रों को भी उस इतिहास की याद दिलाती है। सबसे पहले तो वह उदय सिंह से कहती है ''अभी समय नहीं आया कुँअर चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें तलवार के साथ सोना पड़ेगा।'' राजपूत किस तरह बलिदान देकर अपने मर्यादा की रक्षा करता है। चित्तौड़ उसका गवाह है। उस गौरवशाली परंपरा हिस्सा होना पन्ना लिए जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है। जीवन के कठिन क्षण में भी उसी के सहारे विजय प्राप्त करती है। परंपरा में उसका विश्वास वंश परंपरा के प्रति भी है और वहाँ के सिंहासन की मर्यादा के लिए भी है। वह सामली से कहती है ''कुँअर जी की रक्षा (खींचते हुए) कुँअर जी की रक्षा अवश्य होगी। अब मेवाड़ का उत्तराधिकारी एक यही तो राजपूत रक्त है। दासी पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा।''

निडर और साहसी व्यक्तित्व

पन्ना धाय विपरीत परिस्थिति होने पर भी साहस नहीं खोती। वह मध्यकालीन इतिहास में उन गिने–चुने स्त्री पात्रों में है जिसके साहस और जोखिम की कहानी लोगों के लिए आदर्श है। उसके हिम्मत की परीक्षा तब होती है जब महल में अकेली है। उसके सामने तलवार लेकर अधिकार मद में पागल होकर बनवीर सामने आता है। पन्ना यह जानती है कि बनवीर उसकी जान ले सकता है, उसकी हत्या की जा सकती है। परंतु वह बनवीर के सामने कमजोर नहीं पड़ती है। निर्भयता से उसे नीच पापी नराधम तक कहती है। वह बनवीर पर आक्रमण करते हुए कहती है ''नहीं ऐसा नहीं होगा। क्रूर नराधम नारकी। ले मेरी कटार का प्रसाद ले (आक्रमण करती है, उसकी चोट बनवीर की ढाल पर चढ़ती है)।' एकांकी में अंतिम तक वह बनवीर को महाराणा स्वीकार नहीं करती है। बनवीर उसकी जीभ काटने की धमकी देता है। पन्ना उससे कह देती है ''तो लो मेरी जीभ काट लो। और यहाँ से चले जाओ।''

आंतरिक व्यथा और पीड़ा

एकांकी के आरंभ में उसका वात्सल्य भाव कुँवर उदय सिंह के प्रति है। धाय माँ है लेकिन उदय सिंह के लिए अपनी माँ से भी बढ़कर है। अपनी ममता और स्नेह से उन्हें सींचती है। उनकी एक–एक बाल सुलभ गतिविधि पर पैनी दृष्टि रखती है। बालक के हठ को भी वह उसकी सुरक्षा के लिए नजरअंदाज कर देती है। जब उदय सिंह नाच देखने का हठ करते है तो उन्हें जाने से मना कर देती है। उनकी भोजन से लेकर शैय्या तक की वह देखभाल करती है। पन्ना के जीवन में नाटक यह है कि जितना वह उदय सिंह स्नेह रखती है उतना ही उसे अपने पुत्र की भी चिंता है। चंदन उसका अपना पुत्र है। चंदन और उदय सिंह दोनों बालक हैं। दोनों की चंचलता से पन्ना का मातृत्व सुखी और संतुष्ट होता है। एकांकी में वह ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ एक का बलिदान उसे करना पड़ेगा। उससे उसका हृदय टूट जाता है। एक तरफ राज परिवार के प्रति स्वामिभक्ति दूसरी तरफ अपने पुत्र का मोह। पन्ना के लिए यह चुनाव अत्यंत कठिन है। भीतर से उसका हृदय कराह उठता है। उसकी इस पीड़ा और वेदना को उसी के शब्दों में अनुभव किया जा सकता है। पन्ना कहती है ''चंदन मेरा लाल सो

गया। मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया है कि अब नहीं उठेगा (सिसकियाँ लेती हैं) ओह पन्ना। तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है। तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल से लाल को सुला दिया है। तू सर्पिणी सी अपने ही बच्चे को खा डालती है। जान बूझकर अपने पुत्र की हत्या करने जा रही है। हाय अभागिन माँ। संसार में तेरा ही जन्म होने को था। (सिसकियाँ लेती हैं फिर चंदन को संबोधित करते हुए) लाल तुम्हारी माला मैं नहीं गूंथ सकी। तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है और माला कैसे पूरी होगी। (सिसकियाँ) आज तुम भूखे ही रह गए मेरे लाल। आज अंतिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी।'' एकांकी के इस संवाद में पन्ना धाय की सिसकियों से मंच मर जाता है। उसके कचोटते हुए मातृत्व की पीड़ा से एकांकी में अवसाद का वातावरण बन जाता है जिसमें आँसू, वेदना, पीड़ा और व्यथा का अंतहीन दर्द छिपा है।

विराग

पन्ना धाय के मनोभाव में विराग का स्पर्श देखा जा सकता है। महल में रहते हुए राग और रंग के बीच होते हुए भी वह उससे दूर है। उसके विराग का कारण महल के बीच चलती कुटिल राजनीति है। व्यक्ति जीवन में पतन, नैतिक, ह्रास को देखकर उसमें विराग पैदा हुआ है। उत्सव की चकाचौंध उसे फीके लगते हैं क्योंकि वह उसके पीछे की भयानक सच्चाई को जान चुकी है। वह अपने जीवन में ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ उसे कुछ भी पाना नहीं है। उसे केवल त्याग ही करना है। ऐसे में विराग उसकी स्वाभाविक मनोदशा बन गई है। पुत्र को खोना नहीं है अपितु अपने हाथों में उसका बलिदान करने जैसी स्थिति उसके समक्ष पैदा हो गई है। ऐसे में उसके मन से करुण गीत फूट पड़ते हैं 'उड़ जा रे पंखेरुआ साँझ पड़ी''। इस गीत में उसके जीवन का दार्शनिक अंदाज प्रस्तुत हुआ है। उसके लिए जीवन की गति पक्षी के समान है जिसे ठहरना नहीं उड़ना है। 'साँझ' में पक्षी अपने घोंसले की ओर लौटता है। यह घोंसला एकांकी में संसार नहीं, परलोक बन जाता है। और डबडबे नेत्रों से निहारना ही शेष रह जाता है।

2. <u>बनवीर</u>

'दीपदान' एकांकी में बनवीर खलनायक है। वह एकांकी के अंतिम दृश्य में मंच पर आता हैं। उसके षड्यंत्र की योजना दूसरे पात्रों के माध्यम से मंच पर पहले ही पहुँच जाती है। शास्त्रीय नाटक में खलनायक का जो हाव–भाव बताया गया है, उसी तरह से वह दर्शक के सामने आता है। वह मदिरा पीकर लड़खड़ाते हुए और अट्टाहस करते हुए मंच पर प्रवेश करता है। मंच पर आते ही वह पन्ना से सौदा करना चाहता है। उसके व्यक्तित्व में दोहरी मानसिकता दिखाई देती है।

दोहरी मानसिकता

बनवीर की कथनी और करनी में बड़ा फर्क मिलता है। उसकी मानसिकता दोहरी है। उसके मन में कुटिलता और अंधविश्वास आघंत भरा है, लेकिन वह अपने को विनम्र रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। पन्ना को कहता है ''सारे राजपूताने में एक ही माँ है पन्ना। सबसे अच्छी। मैं ऐसे धाय माँ को प्रणाम करने आया हूँ। (रुककर) ऐ! धाय माँ की आँखों में आँसू।'' इस संवाद में वह अपनत्व दिखाने का प्रयत्न करता है, कि लगता है, वह पन्ना धाय के आँसू पोंछने आया है। लेकिन उसके मन में केवल चित्तौड़ का शासक बनने की इच्छा है। वह सत्ता के लिए बालक उदय सिंह का वध करना उचित समझता है लेकिन स्त्री के ऊपर हाथ उठाना नीति विरुद्ध मानता है। नीति और व्यक्तिगत स्वार्थ के बीच वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को ही सर्वोपरि मानता है।

क्रूर और महत्वाकांक्षी

बनवीर क्रूर है। उसकी क्रूरता महत्वाकांक्षा से प्रेरित है। राज सत्ता के लोभ में वह कुँवर सिंह उदय बड़े भाई महाराणा विक्रमादित्य की हत्या कर देता है। उसका कोई अफसोस अपितु इसे नहीं है। उसे वह अपनी वीरता समझ रहा है। पन्ना से वह कहता है ''वे अब इस संसार में नहीं हैं पन्ना। उन्होंने रक्त को नदी पार कर ली है। उसी रक्त की लहर मेरे तलवार पर है।'' उतने से भी वह चैन नहीं लेता। अब उसे उदय सिंह की तलाश है क्योंकि उसके जीवन का उद्देश्य महाराणा बनना है। उसे महाराणा के रूप में स्वीकृति तब तक नहीं मिलेगी, जब तक उदय सिंह जीवित है। वह किसी भी प्रकार से उदय सिंह हत्या कर अपना मार्ग प्रशस्त करना चाहता है। राजनीति और सत्ता पाने की लोभ में वह क्रूर बन जाता है और उसका चारित्रिक पतन होता है।

अविश्वासी और विलासी

बनवीर अविश्वासी पात्र है। उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। बनवीर उदय सिंह का संरक्षक था। उदय सिंह के सुरक्षा की जिम्मेदारी बनवीर की थी। परंतु वह उसके उदय सिंह को विपरीत कार्य करता है। वह अपदस्थ ही करना नहीं चाहता है अपितु उसके प्राणों का प्यासा भी है। पन्ना धाय कहती है ''ओह क्रूर बनवीर। तुम तो उदय सिंह के संरक्षक थे। रक्षा के बदले क्या तुम उनकी हत्या करोगे ? नहीं–नहीं यह नहीं हो सकता ? यह नहीं हो सकता महाराणा बनवीर। तुम राज्य करो, चित्तौड़ पर मेवाड़ पर सारे राजपूताने पर राज्य करो पर कुँअर उदय सिंह को छोड़ दो।'' अविश्वासी के कारण किस प्रकार का राजनीतिक संकट पैदा हो सकता है उसका जीता जागता उदाहरण बनवीर है। राजनीति विश्वास नीति न्याय और धर्म से बँधी होती है। जब इन मर्यादाओं को तोड़ा जाता है तो गहरा नैतिक संकट पैदा हो सकता है। ऐसा संदेश इस एकांकी के माध्यम से एकांकीकार का है। बनवीर विलासी भी है, सोना को वह रेशमी झूले का उपहार देता है। सोना नृत्यांगना है। दरबार में नृत्यांगना होना उस समय आम बात थी। नृत्यांगना को मनोरंजन के लिए रखा जाता था। बनवीर में राग रंग के प्रति आकर्षण है।

17.3.2 गौण पात्र

दीपदान एकांकी में **कुँवर उदय सिंह** की अत्यंत छोटी भूमिका है। उत्सव राग और रंग में उनकी रुचि है। बालक होते हुए भी वह अत्यंत साहसी है। पन्ना धाय के पुत्र **चंदन** में भी बाल सुलभ चंचलता भी दिखाई पड़ती है। गौण पात्र में कीरत बहुत महत्वपूर्ण है। वह पन्ना का विश्वासपात्र है। **कीरत** में सेवा और स्वामिभक्ति का भाव है। एकांकीकार उसके चरित्र की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। वह जूठन उठाने वाला अवश्य है परंतु चित्त से अत्यंत पवित्र है। वह साहसी है। वह ईमानदार है। अन्नदाता के लिए कोई भी जोखिम उठा सकता है। कीरत के माध्यम से वर्मा जी यह बताना चाहते हैं कि कुल और वंश बड़ा होने से कोई उच्च्य नहीं होता है अपितु भावना और ईमानदारी से व्यक्ति बड़ा होता है। व्यक्ति, भाव, सोच और कर्तव्य से बड़ा होता है। उसी तरह से दो स्त्री पात्रों **सोना** और **सामली** की महती भूमिका है। ये दोनों पात्र दो तरह के जीवनमूल्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। सोना का जीवन के प्रति दृष्टिकोण अत्यंत छिछला और उथला है। वह राजसी वैभव से आक्रांत है। सत्ता राग रंग नृत्य मनोरजंन और विलास ही उसका उद्देश्य है। वह पन्ना से कहती है, ''दीपकों के साथ उमंगें भी लौ देने लगी हैं, धाय माँ! माँ जीवन ही एक दीपावली का त्यौहार बन गया है।'' सोना के चरित्र के ठीक विपरीत सामली दासी का चरित्र है। सोना अभिजात्य वर्ग पात्रा है, उसमें वैभव और विलास का आकर्षण है। सामली अन्तःपुर की परिचारिका है। उसमें राजसी ठाट नहीं है। वह महल के भीतर की राजनीति और कूटनीति से परिचित है। अपनी उपस्थिति से घटना की स्थिरता को वह तरंगित कर देती है। बेचैन भाव सी

मंच पर प्रवेश करती है। पन्ना धाय को सूचना देती है कि कुँवर की जान खतरे में है। दूसरी सूचना देती है कि महाराणा विक्रमादित्य की हत्या हो चुकी है। तीसरी सूचना देती है कि संपूर्ण किले को घेर लिया गया है। एकांकीकार ने घटनाओं की सूचना प्रदान करने हेतु सामली की पात्र योजना की है।

17.4 परिवेश

एकांकी नाटक में परिवेश की भूमिका अमूर्त होती है। जिस प्रकार से मिट्टी, हवा, जल आदि से मिलकर हमारा प्राकृतिक परिवेश बनता है, उसी प्रकार इतिहास संस्कृति, राजनीति और धार्मिकता से एकांकी का परिवेश निर्मित होता है। 'दीपदान' का वातावरण सामंती है। इसी मध्ययुगीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर एकांकी लिखा गया है। सामंती वैभव दृश्यात्मक रूप से प्रस्तुत करने के लिए एकांकीकार ने कक्ष की सजावट के साथ नृत्य और संगीत की ध्वनि से वातावरण रचना की है। सामंतशाही में नाचगान, मनोरंजन और उत्सव रिवाज़ रहा है। दीपदान के उत्सव के साथ ही एकांकी शुरूआत होती है। तुलजा भवानी की पूजा के लिए कार्यक्रम रखा गया है। इस दीपदान कार्यक्रम में आध्यात्मिकता कम और मनोरंजन ज्यादा है।

'दीपदान' का राजनीतिक परिवेश बिल्कुल मध्यकालीन राजपूती शासन व्यवस्था से संबंधित है। तलवार की ताकत से शासन सुनिश्चित होता था। राजा के अधीन सामंत सरदार उनसे विश्वासघात भी करते थे। अवसर देखकर कोई राजा की हत्या भी कर देता था और शासन पर अधिकार जमा लेता था। बनवीर भी इसी रास्ते से सत्ता को पाना चाहता है। सत्ता की वैधता वंश परंपरा को प्राप्त थी। उसका प्रभाव जनमानस में काफी गहरा था। किसी भी अत्याचारी शासक के खिलाफ विरोध की चिन्गारी अंदर ही अंदर सुलगती रहती थी। राजनीति में अविश्वासी पात्र तो थे ही परंतु वफादार और विश्वासपात्र भी कम नहीं थे। जिनकी निष्ठा, सिंहासन की वंश परंपरा के प्रति होती थी। पन्ना धाय के शब्दों में "मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान है। नमक से रक्त बनता रक्त से नमक नहीं।"

समाजिक जीवन में जाति व्यवस्था के प्रचलन की सूचना 'दीपदान' एकांकी से मिलती है। उसमें राजपूतों की परंपरा का जिक्र है। 'कीरत बारी' का उल्लेख है सामाजिक जीवन में दास–दासी की प्रथा थी। उसके कारण जटिलताएँ भी पैदा होती थीं। बनवीर महाराणा सांगा के भाई पृथ्वीराज की दासी का पुत्र है। शायद इसी कारण वह सत्ता की दावेदारी रखता है। पन्ना धाय है। तत्कालीन व्यवस्था में अपनी माँ के अभाव में विश्वासी धाय द्वारा राजपुत्रों का लालन–पालन करने का चलन था। राजपुत्र की सेवा और सुरक्षा का संपूर्ण दायित्व उस पर होता था। पन्ना ने धाय की भूमिका ही नहीं निभाई अपितु समय आने पर अपनी परीक्षा भी दी। पन्ना सीधे शब्दों में कहती है "भवानी तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया? मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ। यह राजपूतनी का व्रत है। यह राजपूतनी की मर्यादा है। यही राजपूती का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो।" राजपूत का धर्म समाज में सुनिश्चित था। समाज और जन की रक्षा के लिए राजपूत अपने प्राण की भी बाजी लगा देते थे।

सामाजिक जीवन में और सामंतशाही में नाचने गानेवाली भी होती थी। जो सामंतों के मनोरंजन का साधन होती थी। सोना ऐसी ही चरित्र है। वह नाचकर कुँवर उदय सिंह को आकर्षित करना चाहती है। सोना के लिए रेशमी फूल की व्यवस्था बनवीर करता है। तात्पर्य स्पष्ट है कि ऐश्वर्य का साधन प्रस्तुत करना सामंत की जिम्मेदारी होती थी। उसी तरह महल में सेवा के लिए परिचारिकाएँ भी रखी जाती थीं। वह सेवा के साथ–साथ गुप्तचर का भी कार्य करती थीं। अंतःपुर में होने के कारण उसे महल की सारी गतिविधि का पता होता था। इस प्रकार 'दीपदान' एकांकी के परिवेश में उस

समाज की राजनीति, इतिहास और धार्मिक जीवन की गतिशीलता का अनुभव किया जा सकता है।

17.5 संरचना शिल्प

संरचना शिल्प की दृष्टि से यदि 'दीपदान' का विश्लेषण किया जाए तो यह ऐतिहासिक एकांकी का उदाहरण है। दूसरा इस एकांकी की शैली यथार्थवादी है। यथार्थवादी संरचना होने के साथ–साथ ही उसमें काव्यात्मकता, संक्षिप्तता, सघनता का स्थान–स्थान पर प्रमाण मिलता है। अमूर्त भाव और विचार की टकराहट से दृश्य में गतिशीलता पैदा होती है।

17.5.1 भाषा

'दीपदान' एकांकी की भाषा पर बात करते हुए सबसे पहले शीर्षक पर ही दृष्टि जाती है। शीर्षक में इस एकांकी के सारे सूत्र छिपे हुए हैं। शीर्षक अत्यंत संक्षिप्त, काव्यात्मक और बहुआयामी अर्थ से भरा है। उसमें एक दृश्य बिंब की कल्पना भी साकार हुई है। दीपदान एक उत्सव का प्रतीक है। हर पात्र के लिए उसका अर्थ अलग–अलग है। कुँवर उदय सिंह कुल का दीपक है। भविष्य का प्रकाश है। सोना के लिए यह राजसी उत्सव और त्योहार है। पन्ना धाय के लिए दीपदान, त्याग और मर्यादा की रक्षा है। पन्ना कहती है "आज मैंने भी दीपदान किया है। अपने जीवन का दान। मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है, ऐसा दीपदान भी किसी ने किया है?" बनवीर के लिए दीपदान उत्सव की ओट में धोखे से सिंहासन पाने के लिए रास्ता दिखाने का प्रतीक है। पात्र और संदर्भ के अनुसार एकांकीकार ने दीपदान दृश्य बिंब को गत्यात्मक अर्थ दिया है। इसी तरह टूटी माला का एक बिंब प्रस्तुत किया गया है। टूटी माला अधूरे और अपूर्ण जीवन का प्रतीक है। चंदन का जीवन ऐसा ही है। वह महल राजनीति की बलि वेदी पर अपना बलिदान करता है। नाटक और एकांकी में शब्द और अभिनय के साथ–साथ दृश्य भाषा की रचना भी अनिवार्य इकाई है। इसलिए भाषा का चित्रात्मक होना जरूरी है। इस एकांकी के संवाद में स्पष्ट रूप से इसे देखा जा सकता है यथा–

– वे दीपक छोटे से कुंड में कैसे नाचते हैं?

– मचलते हुए स्वर में चलो न धाय माँ।

एकांकी की भाषा में क्रियाकलाप की भाषा पर बल होता है। पात्र की परिस्थिति और मनःस्थिति के अनुकूल उसका गठन होता है। शब्द और भाव का संयोजन में होना आवश्यक है। 'दीपदान' एकांकी की भाषा ठहरी हुई नहीं है। वह पात्र के आक्रोश की पीड़ा, चिंता, उल्लास, घुटन और लाचारी के भाव को नाटकीय अंदाज में दर्शक के सामने प्रस्तुत करने में समर्थ है। प्रसंग के अनुसार भाषा की लय बदलती है। सोना की भाषा काव्यात्मकता भावुकता, कोमलता और आलंकारिक शब्दों से सजी हुई है। उसके एक संवाद को यहाँ उद्धृत किया जा सकता है।

''मेरा पागलपन? धाय माँ पागलपन कहीं कम होता है? पहाड़ चढ़कर कभी छोटे हुए हैं? नदियाँ आगे बढ़कर कभी लौटी हैं? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं? सब आगे बढ़ते हैं।''

नर्तकी के भाव में जैसा उल्लास है वैसा ही मचलती हुई भाषा उसके संवादों से निकली हैं। पन्ना की भाषा में चिंता, साहस, दूरदर्शिता और योजना की बात है। पन्ना के मानसिक द्वंद्व में करुणा और त्रास है। एक दृश्य में वह गीत गाती है। गीत में विराग है। पुत्र –को सेज पर सुलाती हुई करुण स्वर में गाती है

उड़ जा रे पंखेरुआ साँझ पड़ी।

चार पहन बाटडली जोही।

मेड़यों खड़ी एक खड़ी।

गीत में जीवन के अंत का बयान है। कविता में दर्शन को बयाँ किया गया है।

कीरत एकांकी का निम्न वर्ग का पात्र है। उसकी भाषा में राजस्थानी भाषा के स्थानीय शब्द है। लोकभाषा में वह अपनी बात कहता है। उसके भाव में समर्पण और साहस दृष्टिगत होता है। बनवीर की भाषा में घमंड और मदांधता है। अहंकार और आक्रोश के आवेग को उसके संवादों में देखा जा सकता है। चूँकि इस एकांकी की पृष्ठभूमि राजस्थानी है। इसलिए वहाँ के लोकजीवन की शब्दावली और मुहावरे का प्रयोग पाठ में सहज ही प्रस्तुत है।

17.5.2 शैली

'दीपदान' एकांकी की संरचना यथार्थवादी नाट्यशिल्प से प्रभावित है। लेकिन साथ–साथ भारतीय नाट्य रूढ़ियों का भी पालन एकांकीकार ने किया है। **यथार्थवादी शैली** में स्थान, समय और क्रिया के बीच एकान्वति होती है। एकांकी के आरंभ में ही यह सूचित कर दिया गया है। एकांकी का समय 1536 ई. है। समय रात्रि का दूसरा प्रहर है और स्थान चित्तौड़ के कुँवर उदय सिंह का कक्ष है। घटना और कथानक के बिखराव से अन्विति का क्रम टूटने न देने के लिए और मंचन में नाट्य प्रभाव तीव्र और संवेगात्मक बनाने के लिए इस शैली का प्रयोग 50 के दशक के एकांकीकारों ने किया है। यथार्थवादी शैली में इस एकांकी की रचना होने के कारण शिल्प सुगठित है। कथाक्रम के विकास, पात्र योजना, संवाद और दृश्य में पर्याप्त संतुलन है। दूसरा, ऐतिहासिक कथावस्तु को आधार बनाने के कारण इस एकांकी का स्वरूप चरित्र प्रधान हो जाता है। जैसा कि एकांकी पढ़ने से जाहिर हो जाता है कि इस एकांकी में पन्ना धाय का चरित्र प्रमुख है। कथानक शैली की दृष्टि से यदि इस एकांकी का मूल्यांकन किया जाए तो यह दुखान्त शैली का एकांकी है। एकांकी के अंत में पीड़ा और त्रासदी है। महाराज विक्रमादित्य की हत्या की सूचना मिलती है, पन्ना के पुत्र की हत्या होती है, चित्तौड़ का शासन असुरक्षित हो जाता है। त्रासदी के बिन्दु भारतीय शैली के नाटक में नहीं मिलते हैं। यह पश्चिमी नाटक के प्रभाव के रूप में ही समझा जाना चाहिए। पात्र का वध भारतीय नाट्य परंपरा में वर्जित माना गया है। यह एक भारतीय नाट्य रूढ़ि है जिसका पालन इस नाटक में भी करने का प्रयास किया गया है। इस एकांकी में हत्या तो होती है परन्तु मंच पर उसे दृश्य के रूप में नहीं रखा गया है।

17.5.3 संवाद

संवाद के माध्यम से ही एकांकी दर्शक तक पहुँचता है। संवाद में एक लय होती है। भावों का उतार चढ़ाव क्रिया–प्रतिक्रिया आवेग और स्वर से उसका निर्माण होता है। प्रस्तुति में वार्तालाप शैली का अधिक उपयोग किया जाता रहा है। संवाद में भाव ध्वनि स्वर और मौन छिपा होता है। एकांकी में यह कहीं वार्तालाप के रूप में, कहीं स्वगत के रूप में, कहीं गीत के रूप और कहीं क्रियाकलाप के रूप में सामने आता है। 'दीपदान' एकांकी में पात्र स्थिति के अनुसार संवाद बोलते हैं। यथार्थवादी शैली से प्रेरित होने के कारण इस एकांकी के संवाद में भाषा की बोझिलता नहीं है। अभिनय के लिए वाक्य गठन छोटे हैं और आवेगपूर्ण हैं। पन्ना के संवाद हैं ''अबोध सोते हुए बालक पर हाथ उठाते हुए तेरा हृदय तुझे नहीं धिक्कारता ? पापी।'' स्वगत में पात्र अपने आप से बात करता है। पात्र के अंतर्मन में उठने वाले भाव की वेदना और आनंद स्वयं ही अनुभव करता है। पन्ना का कथन है– ''तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया। मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ।'' इस एकांकी में एक दो संवाद स्वगत में है जो मन को मथने वाले हैं।

संवाद में प्रवाह का होना आवश्यक है। प्रवाह का टूटना और अवरुद्ध होना दर्शक में नाट्य प्रभाव को खंडित करता है। स्वाभाविक संवाद में और अधिक अभिनय की संभावना होनी चाहिए। 'दीपदान' एकांकी में एक दो स्थल पर संवाद का प्रवाह टूटता सा मालूम पड़ता है। सोना और पन्ना के संवाद में उपदेशात्मकता अधिक है और नाटकीयता का अभाव मिलता है। इसी तरह से कहीं–कहीं पुनरावृति भी हुई है। कुँवर उदय सिंह और बनवीर दोनों चित्तौड़ की तलवार की प्रशंसा करते हैं। उसमें संदर्भ का अंतर स्पष्ट नहीं हो पाता है। 'दीपदान' एकांकी के संवाद में कार्यकलाप की भाषा की अपेक्षा वाच्य भाषा पर अधिक बल दिया है।

17.6 रंगमंचीयता

नाटक अथवा एकांकी रचना की अनिवार्यता उसकी रंगमंचीयता है। रंगमंचीय व्याख्या के बिना एकांकी का पाठ पूरा नहीं होता है। 'दीपदान' एकांकी यथार्थवादी शैली का उदाहरण है। इसे सीमित साधन में छोटे अभिनेता समूह के द्वारा छोटे प्रेक्षागृह में मंचित किया जा सकता है। इसे कार्यक्रम में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस एकांकी की रंग परिकल्पना में अभिनय, दृश्य रचना, प्रकाश, रूप, सज्जा, वेशभूषा, ध्वनि, और संगीत के घटक जुड़े हुए हैं। चार पुरुष पात्र और तीन स्त्री पात्र अभिनय के लिए रखे गए हैं। उम्र वर्ग आयु के हिसाब से अभिनेता–अभिनेत्री को स्पष्ट कर दिया गया है। दृश्य रचना में स्थान और उसकी पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर दिया गया है। एकांकी के आरंभिक रंग संकेत में ही पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर दिया गया है। एकांकीकार ने लिखा है– "कक्ष में पूरी सजावट है, दरवाजे पर रेशमी पर्दे हैं। पास में उदय सिंह की शय्या है सिरहाने पन्ना के बैठने का स्थान है।" दृश्य रचना के साथ–साथ ध्वनि और संगीत का कल्पनाशील उपयोग किया गया है। यहाँ कोई भी निर्देशक अपने हिसाब से मंचन करने की प्रक्रिया में नृत्य संगीत और ध्वनि का रचनात्मक उपयोग कर सकता है। दृश्य सज्जा के लिए एकांकीकार ने पर्दे शैय्या आदि को बता दिया है। कक्ष में प्रस्तुति योजना के मुताबिक एकांकी में दृश्य रचना की गई है। वस्त्र सज्जा में राजपूती परिधान के साथ आभूषण नुपूर आदि को रखा गया है। प्रकाश सज्जा की व्यवस्था को दृश्य के अनुसार रखा जा सकता है।

एकांकी में पात्र प्रवेश और प्रस्थान की स्पष्ट सूचना दी गई है। कोष्ठक में प्रवेश और प्रस्थान के रंग संकेत को देखा जा सकता है। विशिष्टताओं के अनुसार प्रवेश रखे गए हैं। सोना का प्रवेश नुपूर की नाद करते हुए है। सामली चीख पुकारती हुई प्रवेश करती है। दृश्य में दो से अधिक पात्र का संभाषण नहीं है। निर्देशक अपनी कल्पना के अनुसार मंचन को जश्न भी बना सकता है और सादगी में भी प्रस्तुत कर सकता है। उसकी गुंजाइश पाठ में लेखक द्वारा रखी गई है। अभिनय द्वारा इस एकांकी को मंचित किया जा सकता है। यथार्थवादी कहने का अर्थ है कि रोजमर्रा के जीवन में हम जिस प्रकार कार्यकलाप करते हैं जिस तरह से बोलते हैं और भावावेग को प्रकट करते हैं उसी तरह के पैटर्न में इस एकांकी के संवाद, संभाषण, स्वगत और वार्तालाप को प्रस्तुत किया जा सकता है उसके लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। पन्ना धाय के चरित्र के अभिनय में थोड़ी संभावना है। भावों की जटिलता और द्वंद्वात्मक मनोभाव में पात्रों के अभिनय का कौशल खिलता है। बाकी के पात्रों के चरित्र का ग्राफ सरल और सीधा है।

बोध प्रश्न– 2

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 8–8 पंक्तियों में दीजिए :

   (क) 'दीपदान' की भाषिक विशेषताएँ बताइए।

   ....

   ....

....

....

....

....

....

....

(ख) 'दीपदान' के परिवेश की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

(ग) बलवीर की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

17.7 सारांश

'दीपदान' एकांकी में इतिहास और व्यक्ति के मनोविज्ञान का तनावपूर्ण संतुलन दीखता है। चित्तौड़ में त्याग और बलिदान की पीढ़ियों से चली आती परंपरा का जनमानस में एक विशेष प्रभाव है। उसके मनोभाव को नूतन रचना और समकालीन परिस्थिति अनुसार संयोजत करना वर्मा जी के नाट्य कौशल की विशेषता है सत्ता की संरचना में किस प्रकार से वैमनस्यता, प्रतिस्पर्द्धा, ईर्ष्या और कुटिलता शामिल रहती है, उसे एकांकी में अनुभव कर सकते हैं। हर समय के समाज के लिए यह बिन्दु प्रासंगिक है कि यदि शक्ति ही शासन का आधार हो तो जरूरी नहीं योग्य शासक ही शासन करेगा। बनवीर जैसे महत्वाकांक्षी स्वार्थी और क्रूर शासक के पास भी सत्ता जा सकती है। ऐसे में पन्ना धाय जैसे चरित्र का महत्व बढ़ जाता है। जिसके साहस और विवेक से विषम परिस्थिति का मुकाबला किया जा सकता है। सत्ता में कुचक्र चलता रहता है उसमें विश्वासी और ईमानदार व्यक्ति अपने त्याग से छाप छोड़ जाते हैं। ऐसी ही विशिष्ट पात्र पन्ना धाय

है। मध्यकालीन सामाजिक वास्तविकता के बहाने राजनीति पर एकांकीकार ने टिप्पणी की है। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा में सत्ता हस्तांतरण परंपरा और नियम को बदले जा सकते हैं और नैतिकता को भंग किया जा सकता है। इस एकांकी का महत्व मंचन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। शैकिया नाटक मंडली अल्प खर्च पर अभिनय के द्वारा एकांकी की मंचीय व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं। यथार्थवादी शैली की जो सीमाएँ होती हैं वही इस एकांकी की भी सीमाएँ हैं। उसके कथ्य में गंभीरता है परंतु शिल्प का ढाँचा ऐसा है कि इस एकांकी में बहुआयामी अर्थ की संभावना कम ही बनती है।

17.8 बोध प्रश्न के उत्तर

1. (क) उत्तर के लिए देखिए 17.2,
   (ख) उत्तर के लिए देखिए 17.2
2. (क) कीरत,
   (ख) परिचारिका,
   (ग) चित्तौड़
3. (क) उत्तर के लिए देखिए 17.5.1,
   (ख) उत्तर के लिए देखिए 17.4,
   (ग) उत्तर के लिए देखिए 17.3

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY